1947

13287

WE

13287

संगीत कला विहार

1947 traced from Vol. 2 (estimate)

प्रथम वर्ष] 1947 [अंक ८ वा.

अनुक्रमणिका

हिंदी विभाग

मुखपृष्ठ का फोटो — स्व. बाळकृष्णबुवा इचलकरंजीकर

१ शिवमत हनुमनमत का भेद — श्री. मृगेंद्रसिंहजी, पतियाला

२ हार्मोनियमका स्वीकार आवश्यक क्यों ? — श्री. सी. व्ही. पतंवध और श्री. चैतन्य प्र. देसाई

३ कुडकी — श्री. सिद्धेश्वर अवस्थी

मराठी विभाग

१ पं. बाळकृष्णबुवा इचलकरंजीकर — प्रो. बी. आर. देवधर

२ विन तरंग — पारधी

३ श्री. केसरबाई केरकर — एकलव्य

४ आग्रा घराण्याची परंपरा — प्रो. [illegible] गानू

५ राग मीन — श्री. गो. तु. [illegible]कर

६ रेडिओ केंद्र व कलावंत — श्री. स. कृ. जोशी

७ नासिक सम्मेलन का अहवाल

P.155 .11.63

निम्नलिखित पते पर पत्रव्यवहार कीजिये ।

परिक्षा और दुसरा काम

प्रो. व. य. राजोपाध्ये,
१४८, हिंदु कॉलनी,
दादर.

मासिक पत्रिका

प्रो. बी. आर. देवधर,
स्कूल ऑफ इंडियन म्युझिक,
केनेडी ब्रिज गिरगाम,
बम्बई.

विज्ञापन का शुल्क

कव्हर पेज नं. ४	रु. १००-०-०
,, नं. २ और ३	रु. ७५-०-०
संपूर्ण पृष्ठ	रु. ४०-०-०
अर्ध ,,	रु. २२-०-०
पाव ,,	रु. १२-०-०
अर्धपाव पृष्ठ	रु. ६-८-०

प्रतिसमय

मुद्रित पृष्ठ ६" × ८" दो कॉलममे,

कव्हर पेज विज्ञापन के लिए व्यवस्थापक को लिखिये विज्ञापन हमारे हाथ प्रतिमासके १५ तारीख के पहलेही मिलना चाहिये।

व्यवस्थापक:—**संगीत कला विहार कार्यालय**

स्कूल ऑफ इंडिअन म्युझिक,

केनेडी ब्रिज, **गिरगाम, मुंबई.**

लेखकों को सूचनाएँ

१ लेख कागजोंके एकही बाजूपर, और सुवाच्य अक्षरोंमें लिख भेजिए।

२ लेख की पसंदगी या नापसंदगी का जवाब पंदरह दिनके बाद लेखकों को मिलेगा।

३ पसंद किए हुए लेख यथावकाश प्रकाशित किये जायेंगे।

४ नापसंद लेख वापस मंगानेके लिये पोस्ट टिकिट भेजिये।

शिवमत तथा हनुमन् मतका भेद

(लेखक—महेन्द्रसिंहजी—पटियाला)

इससे पहिले लेखमे शिवमत और हनुमन् मतकी श्रुतियों के विषय मे लिखा गयाथा कि संगीत मे श्रुतियों का क्यां सम्बन्ध है और इनका प्रयोग कैसे होता है क्योंकि जो विषय लिखत मे आता है वह अभ्यास मे भी आसक्ताहै और जो अभ्यास मे आता है वह लिखत में भली प्रकार आसक्ता है।

इसलिये अब मूर्च्छना, ग्राम, स्वरव्याख्या और जनकमेला (थाट) का विस्तार तथा संगीत से इनका सम्बन्ध आदि विषय लिखते हैं क्योंकि इसके विना संगीत विद्या तथा राग का अस्तित्व ही नहीं रह सकता अतः ये अत्यावश्यकीय विषय हैं और इनका वर्णन भी अत्यावश्यक है।

हनुमन् मत मे तीन ग्राम तथा २१ मूर्च्छनाएं मानीजाती है इनका विस्तृत वर्णन इसप्रकार से हैं—

मूर्च्छना—सातों स्वरों की आरोह और अवरोह अवस्था का ही मूर्च्छना है.

यथा—सा. रे. ग. म. प. ध. नी. ।
नी. ध. प. म. ग. रे. सा.

ग्राम—तीन प्रकार के हैं—षड्ज, मध्यम, गान्धार; इन तीनों ग्रामों मे उपरोक्त २१ मूर्च्छनाएँ आजाती हैं. यथा षड्ज ग्राम मे षड्ज स्वरको ही प्रथम रखकर आरोह अवरोह करने से सात मूर्च्छनाएँ होती हैं। इसी प्रकार मध्यम और गान्धारमें ७, ७ मूर्छनाएँ होती हैं. ऐसे तीनो ग्रामों में ७ × ३ = २१ मूर्च्छनाएँ होजाती हैं (पुराने ग्रन्थों मे भरत और हनुमन् मत कें अनुसार गान्धार ग्राम इन मे से पहिलेही निकल गया तात्पर्य्य लोप होगया इसीलिये प्रयोग मे नहीं आता और यह भी माळूम नहीं कि प्रयुक्त भी किस प्रकार से होता था इसके विषय मे यह किंवदन्ती है कि गान्धार ग्राम तो पृथ्वी लोक से देवलोक को चलागया आगे चलकर मध्यम ग्रामका वर्णन और अभ्यास भी जाता रहा इसलिये केवल षडज ग्राम ही रहगया. हनुमन मत के अनुसार ग्रामों और मूर्च्छनाओ के चित्र इस प्रकार हैं—

षड्ज ग्राम—षड्ज शुद्ध छन्दोवती श्रुतिपर हो तथा पञ्चम अलापनी श्रुतिपर हो तो षड्ज ग्राम की सातों मूर्च्छनाओं का यह चित्र है—

	नं.	आरोह	अवरोह	मूर्च्छना	तात्पर्य्य	स्वभाव
	१	सा. रे. ग. म. प. ध. नी.	नी. ध. प. म. ग. रे. सा.	उत्तर मन्द्रा	नीचे से नीचा	शून्या
से	२	नी. सा. रे. ग. म. प. ध.	ध. प. म. ग. रे. सा. नी.	रञ्जनी	प्रसन्नता	लज्जा
प.	३	ध. नी. सा. रे. ग. म. प,	प. म. ग. रे. सा. नी. ध.	उत्तर याता	नीचे डोलना	ध्यान
प.	४	प. ध. नी. सा. रे. ग. म.	म. ग. रे. सा. नी. ध. प.	शुद्ध स्वरा.	पूर्ण स्वरा	सफाई
म.	५	म प. ध. नी. सा. रे. ग.	ग. रे. सा. नी. ध. प. म.	मत्स्यी कृता	मच्छी जैसी	क्रूरता
ग.	६	ग. म. प. ध. नी. सा. रे.	रे. सा. नी. ध. प. म. ग.	अश्वक्रान्ता	घोडा जैसी	क्षमा
रे.	७	रे. ग. म. प ध. नी. सा.	सा. नी. ध. प. म. ग. रे.	अभिरुद्धा	डरानेवाली	नम्रता

संगीत कला विहार

संपादक
प्रो. बी. आर. देव[...]

सहसंपादक
पं. विनयचंद्रजी मौ[...]
प्रो. प्राणलाल श[...]

व्यवस्थापक
प्रो. बसंतराव राजो[...]

* संपादकीय *

'संगीत कला–विहार' के नमूने के अंक सहित आजतक आठ अंक प्रकाशित हो चुके हैं। हमारे 'गां. म. वि. मं.' के सभासद महाराष्ट्र, गुजरात, एवं संयुक्तप्रान्त में क्रमश: मराठी, गुजराती तथा हिन्दी जाननेवाले अधिकत: होनेके कारण हमने यह मासिक–पत्रिका तीन भाषायों में प्रकाशित करना आरंभ किया था। पर, अव यह अनुभव हुआ हैं कि इन तीनों भाषा के जमघट में किसीको भरपूर सामग्री प्राप्त नहीं हो पाती और न इसका सन्मान ही अधिक लोगों में हो पाता है। गत मई मास में दिनांक, २२, २३, २४ को नासिक में हुई मंडल की सर्व साधारण सभा में यह प्रश्न उठा था, और वहीं यह सर्व–सम्मति से निश्चित हुआ कि इन तीनों भाषायों की अपेक्षा केवल एक राष्ट्र–भाषा (हिन्दी) में ही यह पत्रिका प्रकाशित की जाय। इस निर्णय के अनुसार 'सगीत–कला–विहार' का अंक आगामी अगस्त से पूर्णत: हिन्दी में ही प्रकाशित होगा। शनै: शनै; हिन्दी, राष्ट्र–भाषा का रूप धारण कर रही है, अत: वह हमारे 'संगीत–कला–विहार' के समस्त वाचकों की मातृभाषा न भी होते हुए वे इस परिवर्तन से प्रसन्न ही होंगे, ऐसी हमें पूर्ण आशा है। इस के पश्चात 'विहार' हमारे वाचकों की सेवा हिन्दी के द्वाराही करेगा।

लेखकों के प्रति

हम अपने लेखकों को यह पूर्ण–विश्वास (आश्वासन) दिलाते हैं कि इस परिवर्तन का उन के लेखों पर किसी भी प्रकार का आपत्ति–जनक प्रभाव न पडेगा, क्योंकि हमने निपुण–अनुवादकों का उचित–प्रयोजन कर रखा है, तथा वे ही हिन्दी भा[...] समस्त लेखों का उपयुक्त अनुवाद करेंगे। यदि लेखकों [...] इच्छा हुई, तो वे भाषान्तर उन के अवलोकनार्थ [...] भेजे भी जा सकते हैं। लेखकों को यह सूचना देना [...] कर्तव्य समझते हैं कि समस्त लेख केवल प्रचुर [...] अभ्यास के उपरान्त ही लिखे गये होना आवश्यक है।

नवीन–उपक्रम

एक और सूचना प्रकाशित करते हमें हर्ष हो[...] आजतक केवल संगीत–सम्बन्धी लेख ही 'विहार' में [...] हुए हैं। परन्तु अब बंबई–विश्वविद्यालय में भी [...] अभ्यास–क्रम में अन्तर्भाव होनेवाला है। अत: [...] कार्य–क्रम, चित्रपट–संगीत, नृत्य, नाट्य, तथा विद्यार्थि[...] उपयुक्त विषयों पर भी भविष्य में 'विहार' में लेख [...] करने का हमने निश्चय कर लिया है। ऐसे विषयों [...] रूप से लिखे गये लेख भेजने पर वे अवश्य हो [...] सकेंगे। इस नवीन विषय का अन्तर्भाव 'विहार' [...] की इच्छानुसार ही होगा। 'विहार' के अंकों, क[...] तथा प्रिय जनों को हमारे वाचक सच्चा-परिचय देकर, [...] प्रसार करने की कृपा करेंगे ऐसा हमारा अटल विश्वा[...]

वास्तव में, 'विहार' का समस्त कार्य–भ[...] हमारे मंडल के सभासदों ने ही अपने ऊपर ले र[...] इस के अधिकाधिक प्रसार में सहायता के द्वारा [...] सेवा भी है।

WEEDED.

मध्यम ग्राम—मध्यम शुद्ध वज्रिका श्रुतिपर हो और पञ्चम श्रुतिपर हो तो मध्यम ग्रामकी सात मूर्च्छनाओंका यह चित्र है—

	नं.	आरोह	अवरोह	मूर्च्छना	तात्पर्य्य	स्वभाव
	१	म. प. ध. नी. सा. रे. ग.	ग. रे. सा. नी. ध. प. म.	स्वो वीर्य्यी	तेज वीरताका स्वभाव	धारणता
तारसा	२	प. ध. नी. सा. रे. ग. म.	म. ग. रे. सा. नी. ध. प.	हरिणाश्वा	मृग और घोडे जैसी	आशा
	३	ध. नी. सा. रे. ग. म. प.	प. म. ग. रे. सा. नी. ध.	कलोपनती	कमीगरवाली	क्लेश
	४	नी. सा. रे. ग. म. प. ध.	ध. प. म. ग. रे. सा. नी.	शुद्धगध्या	पूर्ण स्वरा	व्रजना
	५	सा. रे. ग. म. प. ध. नी.	नीं. ध. प. म. ग. रे. सा.	मार्गी	रास्ता बताने वाली	काम त्याग
	६	रे. ग. म. प. ध. नी. सा.	सा. नी. ध. प. म. ग. रे.	पौर्वी	पराक्रम होने वाली	अमृततुल्य
	७	ग. म. प. ध. नी. सा. रे.	रे. सा. नी. ध. प. म. ग.	विषयका		मन विषय

गान्धार ग्राम—गान्धार शुद्ध क्रोधि श्रुति हो और पञ्चम अलापनी श्रुतिपर हो तो गान्धार ग्रामकी सात मूर्च्छनाओं का यह चित्र है—

	नं.	आरोह	अवरोह	मूर्च्छना	तात्पर्य	स्वभाव
	१	नी. ध. प. म. ग. रे. सा.	सा. रे. ग. म. प. ध. नी.	नन्दा	आनन्द	शीतलता
नी. मन्द	२	ध. प. म ग. रे. सा. नी.	नी. सा. रे. ग. म. प. ध.	विशाला	फैलनेवाली	दिछाया
	३	प. म. ग. रे. सा. नी. ध.	ध. नी. सा. रे. ग. म. प.	सुमुखी	सुन्दर-मुख	फैलना
	४	म. ग. रे. सा. नी. ध. प.	प. ध. नी. सा. रे. ग. म	विचित्रा	अनेक प्रकार	खुशी
	५	ग. रे. सा. नी. ध. प. म.	म. प. ध. नी. सा, रे. ग.	रोहणी	चलनेवाली	राजना
	६	रे. सा. नी. ध. प. म. ग.	ग. म. प. ध. नी. सा. रे.	सुखा	सुख दखनेवाली	प्रफुल्लता
	७	सा. नी. ध. प. म. ग. रे.	रे. ग. म. प. ध. नी. सा.	अलापी	उच्चारणवाली	मस्ती

निषाध-अन्तिम स्वर सप्तक का होने के कारण इसका आरोह विपरीत अवरोह ही होगा तथा अवरोह आरोह होगा अन्यथा तार सप्तक मे जाना अयुक्त हैं। इसलिये यह विपरीत गतिसे पीछे को ही जाएगी.

इस चित्रमें हनुमन् मतकी तीन ग्राम तथा इक्कीस मूर्च्छनाएँ पूर्ण हैं परन्तु इनका प्रयोग करना और काम मे लाना इस मतके प्रन्थों मे कहीं नहीं लिखाहै केवल इतना अवश्य है कि यदि अचल ठाठ रखकर या शुद्ध स्वर रखकर दूसरें छः स्वरों को शुद्ध माना जाए तो और और रागों के स्वरूप बनते हैं — यथा —

सा को सामानकर	सा रे ग म प ध नी सा	सा रे ग म प ध नी	राग विलावल —	ठाठ
रे को सामानकर	रे ग म प ध नी सा रे	सा रे ग म प ध नी	राग काफी —	ठाठ
गा ,, सा ,,	ग म प ध नी सा रे ग	सा रे ग म प ध नी	राग भैरवी —	ठाठ
मा ,, सा ,,	म प ध नी सा रे ग म	सा रे ग म प ध नी	राग ऐमन —	ठाठ
पा ,, सा ,,	प ध नी सा रे ग म प	सा रे ग म प ध नी	राग सारंग —	ठाठ
ध ,, सा ,,	ध नी सा रे ग म प ध	सा रे ग म प ध नी	राग आसावरी —	ठाठ
नी ,, सा ,,	नी सा रे ग म प ध नी	सा रे ग म प ध नी	राम भैरवो मध्यम पंचम वर्ज्य	

परन्तु इनचित्रों को देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि यह क्रम ऐसानहीं है जैसा कि जनकमेला (थाटों)का है और न इनमेसे सब राग बन सकते हैं. जैसा कि निषाध के चित्रमें दो मध्यम और पञ्चम वर्ज्य हैं सो ये रागतो अवश्य हैं परन्तु ब्यौहार में नहीं और न कोई इसमतके ग्रन्थों में दृष्टिगोचर हुआ है इस प्रकारका आरोह अवरोह भी कोई राग का है. दूसरा प्रश्न यहभी उठ सकता है कि यदि भैरव थाठ बनाना हो तो इस क्रमसे बनाना असम्भव नहीं है. इसलिये हनुमनमतका यह मूर्च्छनाओंका क्रम कुछ निर्बल है तथा विश्वास योग्य प्रतीत नहीं होता है और अभ्यासमें भी यह क्रम कुछ उपयुक्त नहीं है. इसलिये अब हम पहिले यही देखतेहैं कि शिवमत और इसमें क्या भेद हैं और कौन-कौनसी बातें उपयुक्त हैं।

आदिमत शिवमत में हनुमन मतकी तरह ही तीन ग्राम और इक्कीस मूर्च्छनाएँ मानी हैं परन्तु वर्त्ताव मे और विभाजन मे अन्तर है इसमत से जैसे पिछले अंक मे भी आचुकाहै कि संगीत शास्त्र मे जो नाम हैं सबका तात्पर्य हैं इसी प्रकार ग्रामका तात्पर्य स्थान हैं सो सप्तक मे तीनही स्थान हैं–आदि, मध्य. अन्त्य,–इन तीनोंमें षडज मध्यम निषाध तीन स्वर हैं इसलिये शिवमत में षडज और मध्यमग्राम हनुमन मतके सदृशही माने गएहैं बल्कि यह कहना उपयुक्त होगा कि हनुमन मत ने ये दोनों शिवमतसेही लिये हैं परन्तु शिवमत में जो तीसरा ग्राम है वह तो निषाघ ग्राम के नाम से हैं परन्तु यहाँ आकर हनुमन मत में गान्धार किस कारण से होगया सो यह अन्तर वास्तव में गुरुशिष्य प्रणाली के कारण से पडगया है-शिवमत में षडज ग्रामसे [सा. ॆरे. ग.] मध्यम में (म. प. ध.) निषाध में (नी) हैं. परन्तु हनुमन मत में षडज ग्राम में (सा. ॆरे. ग.) मध्यम मे (म. प. ध.) आन्धार से [नी] हैं

इसी कारणसे निषाधको गान्धार मानकर इस निषाध ग्रामको लोप करके कहदिया कि यह तो देव लोकमेही हैं और पृथ्वीपर नहीं क्योंकि हिसाब के किसी क्रमसे सिद्ध नहीं कर सकते थे जब क्रम अशुद्ध है तब तो उत्तर भी अशुद्ध होगा. परन्तु शिवमतका तो यह निषाधग्राम पृथ्वीपर हैं और उसका क्रम ठीक होनेसे उसका उत्तर भी ठीकही होनाचाहिये. यह गणित क्रमसे भी ठीक है जैसा कि पहिले लेख में था २+२=४ ही होते हैं. अब यहाँ ये ग्राम तथा मूर्च्छनाएँ शिव मतसे सिद्ध की जाती हैं जैसे पहिले आचुकाहै कि ग्राम स्थानको कहते हैं, तब शिवमतके अनुसार तीन ग्राम–षडज, मध्यम, निषाद हैं. ग्रामों में मूर्च्छनासें भी होती हैं सो शिवमत में मूर्च्छनाएँ दो प्रकार से मानीगई हैं. मूर्च्छनाओंका–तात्पर्य्य मूर्च्छासेही हैं–जो स्वर न तो अपनी असली दशा में हो और न आन्दोलन मेंहो और न बेसुरा हो. उदाहरण–जैसे किसी मनुष्य का मूर्च्छा हो जातीहै तो उस समय न तो वह जीवितही होताहै और न मृतही होताहै–इसीप्रकार ऐसी दशा में जब स्वर भी लगता है, न तो प्रत्यक्ष शुद्ध या खडाहै और न बिल्कुल मींड ही है उसीको मूर्च्छना कहते हैं। जबतक राग गाने या बजाने वाला मूर्च्छना नहीं समझता और उसे प्रयोगमें भी नहीं लाता है तो उसके गाने बजाने में कोई भी रस नही होता साधारण लोग भी उसको पसन्द नही करते गुणीजिनों का तो कहना ही क्या है.

(मूर्च्छनाओं के दो प्रकार)

१–प्रथम प्रकार—जब एक स्वर मींड से दूसरे स्वर में मिलता है, जिस स्थान पर उनदोनोंका संयोग होता है वही मूर्च्छना है क्योंकि न तो वह दोनों में से एक पूर्ण स्वर है और न अपूर्ण है किन्तु वह मूर्च्छना है. हर एक श्रुति के बीच में मूर्च्छना है इस तरह २२ श्रुतियों के बीच में २१ संयोग स्थान ही मुच्छनाऐं है यथा चार उंगलीयों मे बीच के रिक्त स्थान तीन ही होते है—उदाहरणार्थ ।१।२।३।

(आगे श्रुतियों का चित्र है)

१–मूर्च्छना
सा ११
४ अति कोमल
११
को. रे ३–मूर्च्छना
१३–मूर्च्छना
२
१४–सैलारी
रे ४ मूर्च्छना
७ मूर्च्छना
४ अति कोमल राग

श्रुति	श्रुति	मूर्च्छना
सा	१	१
अति कोमला	४	२
कोमल रे	३	३
सैवारी रे	२	४
रे	१	५

इस प्रकार इक्कीस २१ मूर्च्छनाएं हो जातीं हैं.

२—दूसरा प्रकार :—जब एक स्वर को बजाने सें सातों स्वर जो कि सप्तक मे हैं आरोह और अवरोह करते मालूम हों वह ग्रामकी मूर्च्छना कहलाती है। केवल मूर्च्छना नहीं, पर ग्राम की मूर्च्छना कहलाती है। एक चौपाई है जो संगीत दर्पण में है जिसका ज़िक्र पहिले लेखों में भी आचुका है वह यह है—

होत जहाँ सब स्वर संबादी, मूर्च्छना दस वार बसादी
सरस मनोहर अति समाई, ग्राम वही विकृत मृगाई

ग्राम की मूर्च्छनाएँ इस प्रकार से है—

तीन-तीन ग्राम तथा एक-एक ग्राम मे सात-सात मूर्च्छनाएँ ७×३=२१ मूर्च्छनाएँ होती हैं। शिवमत मे ग्रामों और मूर्च्छनाओंके चित्र—षडज ग्राम—षडज शुद्ध तीव्रा पर हो और पश्चम क्षिति पर हो तव षडज ग्राम कि सातों मूर्च्छनाओंका यह चित्र होता है—

नं.	आरोह							अवरोह							मूर्च्छना	तात्पर्य	स्वभाव
१	सा	रे	ग	म	प	ध	नी	नी	ध	प	म	ग	रे	सा	उतर मन्द्र	नीचे से नीचा	शून्य
२	रे	ग	म	प	ध	नी	सा	ध	प	म	ग	रे	सा	रे	रजनी	प्रसन्नता	लज्जा
३	ग	म	प	ध	नी	ध	प	प	म	ग	रे	सा	रे	ग	उत्तर याता	नीचे आन्दोलन	ध्यान
४	म	प	ध	नी	ध	प	म	म	ग	रे	सा	रे	ग	म	शुद्ध षडज	पूर्ण स्वर	सलाई
५	प	ध	नी	ध	प	म	ग	ग	रे	सा	रे	ग	म	प	मत्स्यी बृत्ता	मच्छी जैसी	कठोरता
६	ध	नी	ध	प	म	ग	रे	रे	सा	रे	ग	स	प	ध	अश्वकान्ता	घोडे जैसी	क्षमा
७	नी	ध	प	म	ग	रे	सा	सा	रे	ग	म	प	ध	नी	अभिरुद्धा	भयंवाली	नम्रता

मध्यमगाम—मध्यम शुद्ध वज्रिका पर हो और पश्चम क्षितिपर हो तव मध्यम गामकी सातों मूर्च्छनाओंका यह चित्र होता है—

नं.	आरोह							अवरोह							मूर्च्छना	तात्पर्य्य	स्वभाव
१	म	प	ध	नी	ध	प	म	म	प	ध	नी	ध	प	म	सौवीर्य्यी	तेज वीरता	धारणता
२	प	ध	नी	ध	प	म	ग	ग	म	प	ध	नी	ध	प	हरिणाश्वा	मृग और घोडा	आशा
३	ध	नी	ध	प	म	ग	रे	रे	ग	म	प	ध	नी	ध	कलोपनती	नयी प्रांपावली	क्लेश
४	नी	ध	प	म	ग	रे	सा	सा	रे	ग	स	प	ध	नी	शुद्धमध्यम	पूर्ण स्वर	व्रजना
५	ध	प	म	ग	रे	सा	रे	रे	सा	रे	ग	म	प	ध	मार्गी	रास्ता बतानेवाली	कामत्याग
६	प	म	ग	रे	सा	रे	ग	ग	रे	सा	रे	ग	म	प	पौर्वी	पराक्रम होनेवाली	भक्ततुल्य
७	म	ग	रे	सा	रे	ग	म	म	ग	रे	सा	रे	ग	म	विषयका	रहस्यवाली	मनविषय

निषाध गाम—निषाध शुद्ध क्षोमण और पश्चम क्षिति पर हो तव निषाध ग्रामकी सातों मूर्च्छनाओंका यह चित्र होता है

नं.	आरोह							अवरोह							मूर्च्छना	तात्पर्य	स्वभाव
१	नी	ध	प	म	ग	रे	सा	सा	रे	ग	म	प	ध	नी	नन्दा	आनन्द	शीतलता
२	ध	प	म	ग	रे	सा	रे	रे	ग	म	प	ध	नी	प	विशाला	फैलने वाली	विछाया
३	प	म	ग	रे	सा	रे	ग	ग	म	प	ध	नी	ध	प	सुमुखी	सुन्दर मुख	फैलना
४	म	ग	रे	सा	रे	ग	म	म	प	ध	नी	घ	प	म	विचित्रा	मनके प्रकार	खुशी
५	ग	रे	सा	रे	ग	म	प	प	ध	नी	ध	प	म	ग	रोहिणी	चढने वाली	राजना
६	रे	ता	रे	ग	म	प	ध	ध	नी	ध	प	म	ग	रे	सुखा	सुख रखनेवाली	प्रफुल्लती
७	ता	रे	ग	म	प	ध	नी	नी	ध	प	म	ग	रे	सा	आलापी	उच्चारणवाली	मस्ती

निषाध—अन्तिम स्वर सप्तक का होने के कारण इसका आरोह विपरीत अवरोह ही होगा तथा अवरोह आरोह होगा अन्यथा तार सप्तक मे जाना अयुक्त है इस लिये यह विपरीत गति से पीछे कोही जायगा.

यह चित्र शिवमत के ग्रामों कि मूर्च्छनाओं का हैं. अब पाहिले प्रकार और दुसरे प्रकारकी मूर्च्छनाओं और ग्रामों का प्रयोग कैसे होता है यह लिखा जाता है.

पहिले प्रकार की मूर्च्छना का प्रयोग श्रुतियों की तरह होता है जैसा कि पिछले अंक मे आचुका है—जैसे भीम पलासी नहीं, पर भीम में ऋषभ की कोमल सैकारी स्वर लगा कर स्वर को ऐसे षडज मे मिलाया जाता है.

मींड के साथ सब मूर्च्छनाएँ लगती हैं और बीच की श्रुतियां नहीं तब सारा ऋषभ का स्वर मुर्च्छना ही हो जाता है न तो बह खडा हो स्वर भीम में रहता है और न ऐसा है कि बिल्कुल नहीं लगता तब उस दशा के स्वर को लगना मूर्च्छना स्वर कहलाता है.

इसी प्रकार राग श्रीटंक, मल्हार, भीम, माली-गौरा इत्यादि रागों मे बहुत प्रत्यक्ष कर के दिखलाई देता है सो इन मूर्च्छना का ऐसा वर्त्तना अवश्य ही है. नहीं तो राग अशुद्ध हो जाता है और सत्यता भी नहीं रहती है विशेष क्या यह अत्यावश्यक है इस के बिना तो राग राग ही नहीं रहता.

दूसरे प्रकार की जो मूर्च्छनाएँ ग्राम की मूर्च्छनाओं कें नाम से हैं उनका प्रयोग यों आता है—जैसे तानपुरा मिलाने से जब मन्द्रका षडज मिलाया जाता हैं तो ऐसा प्रतीत होता है कि साथ ही साथ गान्धार मी बोलता है या जैसा सितार में और मन्द्र छेडने मे साथ के साथ गान्धार की तरब भी बोलती है ओर इसी तरह पश्चम से ऋषम की तरब और मध्यम के साय षडज की तरब इत्यादि, ये सब मूर्च्छे-नाएं हैं जो एक स्वर कों छेडनेसे दूसरे स्वरभी साथही साथ बोलते हैं. इनका काम रागोंमे दूसरी मूर्च्छनाओं जैसा तो नहीं आता परन्तु रागों की गिनती और थाठ बनाने में आताहै. उदा-हरण-जैसे राग हमीर है. यदि उसका षडज बदलकर मध्यम रखा-जाए या ऐसे करें कि षडज ग्रामका हमीर राग मध्यम ग्राम में बजाया जाय तो वह जै ज वन्ती बन जायगी. इसलिये अब कुछ रागों का चित्र आगे दिया जाता है कि अच्छी तरह समझमें आजाय.

नं.	षडज ग्राम	मध्यम ग्राम	
१	हमीर	जैजैं वन्ती	
२	प्रदीपकी	संपूरीया टोढी	
३	मल्हार शुद्ध	किदारा चान्दनी	इत्यादि
४	भूप कल्याण	दुर्गा	
५	टोढी	ललित	

परन्तु ये ग्राम से राग बदलतें हैं और एक-एक मूर्च्छनासे भी बदले जा सकते हैं. जैसे दूसरे स्वर को षडज मानकर-उदाहरण

नं.	असली षडज	पश्चमको षडज मानकर
१	पीलू	माधवन्ती
२	तिलंग	शुद्ध सारङ्ग

पश्चम तो कोई ग्राम नहीं परन्तु इसी क्रमसे इत्यादि राग वनते हैं.

इसी प्रकार और स्वरों के साथ जो सप्तक में है हो सकता है, परन्तु कई राग ऐसे भी हैं जिन में दो मध्यम आदि जैसे ललित आदि में है तब उन के ग्राम बदलने से या मूर्च्छना स्वर दूसरा कायम करने से और राग बन सकते हैं। परन्तु जैसे जैसे उधरको मध्यम आते हैं उसी प्रकार दूसरे दो स्वर भी आएंगे जैसे दो ऋषभ या गान्धार तो वे भी राग ही होंगे परन्तु यह सम्भव नहीं कि रिवाज में हों किन्तु संगीत-शास्त्र के अनु-सार तो ठीकही होंगे। थाठ, स्वरव्याख्या और रागों का प्रयोग से उत्पन्न होना तथा मेरू—खंडका विस्तार आगामी लेख में दिखलाया जायगा [

हार्मोनियमका स्वीकार आवश्यक क्यों ?

(ले.—श्री. सी. व्ही. पंतवैद्य, मुख्याध्यापक—स्टेट म्युझिक स्कूल इन्दौर; और श्री. चैतन्य प्र. देसाई)

(१) प्रास्तविक

' विहार ' के जनवरी के अंक में श्री. पंचानन पाठक-जीका हार्मोनियम के बारे में एक लेख प्रसिद्ध हुवा है। करीब पोनोसो वर्ष पहिले हार्मोनियमका आगमन इस देश में हुआ, आये दिन लोकप्रिय हुआ और घरघर प्रचार हुवा-इतना ज्यादह कि उसके खिलाफ अवाज उठने लगी और गत दशक में उस के विरुद्ध इतना जोरदार प्रचार हुवा कि हार्मोनियम एक खतरनाक चीज है, यह कहना संगीत के प्रगाढ और सूक्ष्म ज्ञान का सार्टिफिकेट्सा माना गया। हार्मोनियम हिंदुस्तानी संगीत के वास्ते बेकारही नहीं, वरन् नुकसानकारक हैं, ऐसा कई विद्वानोंने कहा और बिना सोचे समझे बहुत से लोग वैसा मानने भी लगे। ' टॅंपर्ड स्केल ' की कहावत स्कूल के बच्चोंको लेकर के रातांजनकर के जबानतक फैल गयी। एकतरफ संगीत ग्रंथों में हार्मोनियम को संगीत में 'हरिजन ' ठहरा दिया तो दूसरी तरफ गवय्यों की मेहफिल में हार्मोनियम-पूजा का अचल स्थान बना रहा। हार्मोनियम बाजा बेसुरा है, राग की श्रुतियाँ उसमें नहीं हैं, यह कहेने में आता, दीखने में भी दिखता, लेकिन जिनके गलेमें श्रुतिओंने घर किया था उन गवय्यों की भी संगत छोटीमोटी पेटीसे हि खुले सर होती रही, इस प्रत्यक्ष घटनापर पंडितोंने आंख मूँद ली, वे तो अपने गणितशास्त्र के ऊपर डटे रहे। लेकिन वह शास्त्र कैसा कि जो ' लक्ष्य ' से — प्रत्यक्ष से विरुद्ध है ? प्रचार एक हिटलरी साधन है, प्रचार के बलसे हार्मोनियम विरोधी हवाने जमाने की जड ऐसी पकडली है, कि. हा. की तरफदारी करना अब एक दुर्घट साहस माना जायगा।

(२) हार्मोनियम-विरोध का इतिहास

कोई भी घटना का स्वरूप समझने के वास्ते, उस का इतिहास बडा सहाय्यकारक होता हैं। यह प्रसिद्ध है, कि अत्यंत सुरीलापन और रागों के विशिष्ट स्वरों—जिनको आजकल श्रुति कहेने में आता है— का गान और ज्ञान ये दो बातें मशहूर स्व. गायक **अब्दुल करीम खां** मे थीं। आपके शिष्यवत स्नेही और रिटायर्ड जज रा. सा. **देवल** को भारतीय संगीत शास्त्र में बहुत दिलचस्पी थी। उस जमाने में पाश्चात्य पंडित कहा करते थे कि हिंदुस्तानी संगीत में आधुनिक—वस्तु—शास्त्रोक्त नैसर्गिक सुरीले १२ स्वरोंका आस्तित्व नहीं हैं। ये नर्सीगक १२ स्वर और इस के अलावा रागविशिष्ट सूक्ष्म कोमलतरादि स्वर हिंदुस्तानी संगीत में पूर्व—परंपरासे ही उपयोग में आते हैं यह बात स्व. अबदुल करीम खां ने अपने गायनसे श्री. देवलको बतला दी और इन स्वरों को आधुनिक साधनों से नापके दुनियाके सामने लाने की चेष्टा सभा, सोसायटी और ग्रंथ—लेखन तीनों मार्गसे श्री. देवलने खूब परिश्रमपूर्वक की। एक अंग्रेजी सेशन जज मि. **क्लेमेंटस्** साहबने देवलको अच्छा साथ दिया। अपने श्रुति-स्वर सिद्धान्तको प्राचीन ग्रंथोंकी पुष्टी देने का भी इन्होंने प्रयत्न किया, जो बहुत यशस्वी नहीं हुवा। प्राचीन बाईस श्रुतिरूप स्वरों का जीर्णोद्धार इन्होंने किया। नैसर्गिक १२ स्वर और दूसरे रागविशिष्ट १० स्वर मिल के २२ स्वरों को आंदोलन संख्या से नक्की करके मि. क्लेमेंटस् वैसे और उतने स्वरों का एक हार्मोनियम विलायतसे बनवाके लाये जिसको **' श्रुतिहार्मोनियम '** ' श्रुति-पेटी ' आदि नाम दिया गया। इस पेटी में अपने अटपटे राग सहीसही बजेंगे, ऐसी क्लेमेंटस साहब की असीम श्रद्धा थी, लेकिन अनुभव उससे उलटा ही आने लगा। देवल—क्लेमेंटस के बाद में वही बात अपनी—अपनी बना के कई लेखक प्रसिद्ध हो गये, श्रुति पेटी की भी कई सुधरी हुई आवृत्तियां निकलीं, लेकिन सामला और बिगडता गया। एक—दो रेकॉर्डस में प्रसिद्ध हार्मोनियम—वादक श्री **टेंबेने** श्रुतिपेटी बजाई है, जिनमें राग बिगड गये हैं, जो सादे हार्मोनियम में बिगडते नहीं दिखते हैं। इस तरह श्रुतिसिद्धान्त और श्रुति पेटी की शोध बेकार तो होगई, लेकिन नैसर्गिक स्वरों का हिंदुस्तानी संगीत में अस्तित्व सप्रयोग सिद्ध करके पाश्चात्य जगत् के सामने रखनेका प्रयत्न किया इसवास्ते श्री. देवल—क्लेमेंटसके नाम भारतीय संगीतके इतिहास में अमर रहेंगे। स्वरोंकी जगह नक्की हो रही है, यह

देख के उस जमानेके गवय्ये भयभीत हो गये थे, हिंदुस्तानी संगीतको सुनीर्णित और प्रकाशमय करनेकी जुंबिश उठानेवाले पं. **भारतखंडेभी** विरोधमें कहतेथे कि हिंदुस्तानी संगीतके स्वर 'हिलते' होते हैं इस कारणसे उनकी जगह निश्चित करना बेकार है, न हो सकती है! अबतो ऐसी बातें सुनकर विद्यार्थीभी मुस्कुरायंगे। खैर; इन लेखकोंके बाद हिं. संगीतके उपर एक अजोड ग्रंथ मि. **फॉक्सस्ट्रॅन्गवेजने** लिखा। इस ग्रंथका स्वर प्रकरण श्री. देवल-क्लेमेंटसके आधारसे ही लिखा गया है और देवल-क्लेमेंटसका प्रत्यक्ष आधार म. अबदुल करीमखां थे। मगर कुद्रतका मजाक यह था कि देवल-क्लेमेंटसकी जिंदगी हार्मोनियम-विरोधमें व्यतीत हुई और म. अबदुल करीमखां की गानेकी जिंदगी हार्मोनियमके संगतमें चलती रही। टेंपर्ड स्केलभी कभीका उठ गयाथा, लेकिन थिअरोंका पिष्टपेषण करनेवालों की नजर प्रॅक्टीकल बाजूके उपर क्वचित जा सकती है। हिंदुस्तानमेंही ऐसी बातें बन सकतीं हैं।

(३) बजारू हार्मोनियमका स्वर दोष

हार्मोनियम बेसुरे **टेंपर्ड स्केलमें** ट्यून किया होता हैं और अपने यहांके कारीगर कोई यांत्रिक साधन बिना अंदाजसे ट्यूनिंग करते हैं इसकारणसे औरभी बेसुरा होता हैं अतएव त्याज्य है, यह श्री. पाठकजीका पहिला आक्षेप **है**।

हार्मोनियमके बारेमें सही व खास आक्षेप यहीं एक मात्र हो सकता है, जो फॉक्स-स्ट्रॅन्ग्वेज ने भी कहा हैं और उसको दूर करनेका रास्ताभी बता रख्खा है। It falsities it by being out of tune with itself this is a grave defect though its gravity can be exaggerated, it could also be lessened by a revised tuning." (The music of Hindustan P. 164) फॉ. स्ट्रॅं. ने हार्मो. को औरभी सख्त शद्बोंमें दुत्कारा है और दुसरे दोष ये बताये हैं कि उसमें अतिकोमलादि स्वरों (Grace Note) का अभाव हैं और वह परदेसका वाद्य है। टेंपर्ड स्केलका मोताद वाद्य वापरनाही हो तो पियानो जैसा अच्छा वाद्य हिंन्दुस्तानी संगीत के वास्ते त्रले और सौ दोसौ वर्षोंकी अवधिमेंभी खोज लेना चाहिए, यह सलाहभी फॉ. स्ट्रॅं. ने दे रखी है। अस्तु अब बात है टेंपर्ड स्केलकी। टेंपर्ड स्केलके वास्ते कोई जबरदस्ती तो है नहीं! जिस पट्टीमें गायक गाया करता हो, उस पट्टीके हिसाबसे उसे अपना हार्मोनियम **नैसर्गिक स्वरोंमें ट्यून** कराके रखना चाहिए। स्व. अब्दुल करीमखा इस तरहसे मिलाया हुवा हार्मोनियम संगतके वास्ते लेते थे, यह हमारी देखी हुई बात है। दूसरे कई गायक-वादक कभी ऐसा करते हैं।

श्री. पाठकजीने टेंपर्ड स्केल समझानेके वास्ते लेख का अधिकांश खर्च किया है, इसकी वास्तविक जरूरत न थी; क्योंकि इस विषयका पिष्टपेषण पहिले अनेक लेखकोंने बार-बार अनेक मासिकोंमें किया है और कॉलेजमें फिज़िक्समें यह विषय पढानेमें भी आता है। दूसरी बात यह है कि गाने बजानेवाले ऐसी बाते समझने काबिल भी नहीं होते हैं, न उनको इच्छा है। गायन मास्टर हैं वे तो **भातखंडे** आदि पुस्तकोंकोहि मोक्षमार्ग समझते हैं। गुरुवर्यका ग्रंथ इनका वेद और शिष्यों ने लिखी प्रस्तावना इनकी स्मृति, उनमेंसे एक अक्षर भी यहांका वहां नहीं हो सकता। वेद-कुरानमें सुधारकी बातही कसी?

पंडित और प्रिन्सिपाल हैं वे तो स्थितप्रज्ञ हो गये हुवे, नयी बातें सीखना समझाना हलकापन समझते हैं। स्वर-चर्चा उनपर कोई असरही नहीं करतीं। देखिए—श्री. **रातांजनकर** साहब ने "भातखंडे क्र. पु. मा." भा. प. की प्रस्तावनामें स्वर प्रकार साफ-साफ कह देनेमें कोई डर न माना कि, **नैसर्गिक स्वर ये ही टेंपर्ड स्केलकेस्वर हैं।**" विद्वान, शास्त्रज्ञ और शास्त्रकार गायकोंकी यह शोचनीय अवस्था है। गवय्ये-बजवय्ये तो शास्त्र और चर्चाके झगडोंसे दूर रेहना ही सलामत समझते हैं। खैर; हम समझते हैं, टेंपर्ड-स्केलके आक्षेपका निराकरण हो गया। हिंदुस्तानी कारीगरोंके ट्यूनिंग के विषयमें आगे विचार करेंगे।

(४) हार्मोनियम में मींड-गमक-कण आदि

दूसरा आक्षेप है कि हार्मो. मींड, गमक, कन, खटके, मुरकी आदि सुंदर प्रयोगोंसे वर्जित हैं। और इसी कारण उसका वादन सौंदर्य-हीनही रहेगा। लेखक महोदयने हार्मो. के दोष जोंडनेके उत्साहमे 'खटके-मुरकी' भी लिख डाली। मींड, सूत,

गमक, आंदोलन, मुरकी आदि स्वर क्रियाएँ जिनको सामन्यत: **गमक** नाम देना ठीक रहेगा, भारतीय संगीतके सौंदर्य और भाववाचकताका आधार है। इन सबका परिणामरूप रागका बर्ताव होता हैं। बहुधा गमकोंमें एक स्वरसे दूसरे स्वरके उपर जोडानसे जाना होता है या स्वर अपनी जगह उपरसे थोडा हटा करके गाया बजाया जाता हैं। कंप, खटका, मुरकी, सूत जम जमा इनमेंसे आखरी चार स्वरक्रियाएं तानरूप हैं। मींड और आंदोलन ये गमक तंतके खास अंग हैं और आजकल ज्यादह सुननेमें आनेवाले **'कन'** और **अति कोमलादि स्वर** भी आंदोलनादि गमकोंके प्रकार ही हैं। मींड-आंदोलनादि स्वर-क्रियाएं पैदा होनेके वास्ते स्वरचलनमें अखंडित आवाजकी स्वभावत: आवश्यकता हैं, जो तंतुवाद्योंके उपर ही संभव है। हार्मो. में जो कुछ अच्छे गुन हैं वे उसकी खंडित और स्थित (fixed) स्वरपरंपरा को ही आभारी हैं और उसकी यही गुणमय प्रकृति उसके तथाकथित दोषोंकी जन्मदात्री हुई हैं।

हार्मोनियम बजाना अमुक दृष्टिसे एकदम आसान है, ऐसा बहुधा लोगों का ख्याल रहता। हार्मोनियम में महनत सिर्फ इतनी कि सस्ता देखके बजारसे उठा लाना, फिर क्या- अवाज तो आप ही आप निकलता है, धमन और उंगलियां दौडाओ बस ! न तार चढाने-उतारने की फिकर, न स्वर ज्ञान की खट-पट, न परदे देखने की जरूरत, गाना तो आपही आप बजता जायगा, बहुत तो 'गोपाल सखाराम' कं. का एक हार्मो० गाईड मंगा लो। इस तरह से पेटी तो गँवार भी बजा सकता है, उस में क्या रख्खा हैं. ऐसा लोगों का ख्याल रहता है। लेकिन जिसने हार्मो० बजाने की कोशिश की होगी उसको भली-भांति मालूम होगा कि हार्मो० में रागदारी बजाने के वास्ते राग ज्ञान की और गमकादिक के नोटेशन की उतनीही या उससे ज्यादह जरूरत है कि जितनी दूसरे वाद्यों के वास्ते रहती है। स्थूल १२ स्वर निकालने की महनत से बचना होता है, इतनी सहूलियत हार्मो० में सही रही है। गमकादि क्रिया-ओंकी स्वररचना, हार्मो० के उपरकी और वंतु वाद्यों के उपर की, दोनों में थोडी भिन्नता जरूर रही हुई है, जो आक्षेप का सही विषय हैं। भिन्नता यह है कि गमकादि में एक स्वरको दूसरे स्वरका अंश जहां लगाया जाता है वहां हार्मो० में एक स्वरको वही दूसरा स्वर पूरापूरा लगाया जाता है; वह इस तरकीबसे या 'वजन' से कि तंत के स्वरांश के जोड़ जैसे ही सुनने में आवें। 'कन', 'आंदोलन' आदि में यह तरकीब और जहां आवश्यक वहां स्वर के जोड में आवाज का अखंडितत्व ये दो बाते हाथ में आनेसे रागकी बारीकियां पेटी में बजाई जा सकती हैं। जिनका हिसाब नीचे मुजब है:—

(१) मींड– दो या दो से ज्यादह स्वर एक के बाद एक आहिस्ते और अखंडित आवाज से मिलनपूर्वक बजाने से यह गमक हार्मो० में बजता है।

(२) एक स्वर दूसरे स्वरको बारीक अवाजसे और झट से लगा के बजानेसे सामान्य गमक, 'कन' रूप गमक दोनों पैदा होंगे।

(३) बहलावे और आंदोलन मींड के अंगसे बजाये जायंगे। 'कन' रूप आंदोलन पूरे स्वर से हार्मो० में बजता है, इसीलिये वहां आंदोलन-गमक सहीसही नहीं बजने पाता है, थोडा बहुत आभास उत्पन्न कर सकते हैं।

(४) गमक तान-पूर्ण स्वर गमक तानें जो तीन-तीन, चार-चार स्वरों की जलद-मींड युक्त ली जाती है, हार्मो० नियममें बराबर बजती है, जो हमने म. अबदुल करीमखां के गायन की संगतमें हार्मो० से निकलती देखी है।

(५) छोटी मोटी पतली तान, खटका, मुरकी, जमजमा, कंप आदि तान अंगसेही ज्यादहे करके ले लिये जाते हैं, जो हार्मो. में दूसरे कोईभी वाद्योंसे अच्छी रीतिसे बजते हैं।

(६) स्वर स्थैर्य, याने स्वरके ऊपर ठहरना, स्वरों का अटूटापन और हरकतों के स्वरोंका यथायोग्य वजन रखना ये तीन बातोंके वास्ते हार्मो० वादकको उंगलियोंके उपर खूब महनत करके काबू में लाना होता है।

(७) ऊपर कहा कि कनरूप आंदोलित स्वर हार्मो० में अच्छे नहीं बज सकते हैं, इन स्वर-गमकोंका उपयोग खास बडे चार पांच रागोंमें और विलंबित में होता है। पुर्ण स्वर युक्त आंदोलन हार्मो० में आहिस्ते लेनेसे अत्युक्त (Exaggerated) मालूम होता है, जो असुंदर लगता है। इसी कारण से खास करके **दरबारी** राग हार्मो० पर अच्छा नहीं बज सकता। इसी लिये कहा जाता है कि हार्मोनियम 'तैयारी' का वाद्य है।

(८) अब **अतिकोमलादि** स्वर-दिलगीरीसे कहना पडता है कि आजकल पुस्तकीय बात और जबानी जुमाखर्च बहुत बढ गये हैं। जिनको तान पुराभी मिलाना नहीं आता है वे अतिकोमलादि स्वरों पर दो घंटे लेक्चर देनेतक के वाङ्मय-विशारद हो गये है। अच्छे-अच्छे प्रोफेसरों को और गवय्योंकोभी स्थूल बारह स्वरों के ऊपर काबू पाना मुश्किल मालूम होता है। स्थूल स्वरों के बाद सूक्ष्म स्वरोंकी बात-अतिकामलादि स्वर तो वहांके विचार हैं कि जहां विचारही कुंठित हो जाता हैं। जहां बुद्धि ऑर शास्त्रका प्रदेश खतम होता हे ऑर सौंदर्यमयी कलाकी दुनिया शुरू होती हैं। स्थूल बारह स्वरोंका निश्चय हो सकता हे।

इसके आगे के सूक्ष्म स्वर गायक वादक न कि निश्चित रूप से बल्कि अंदाज से लगाने कि अपनी-अपनी कुव्वत माफिक कोशिश करते रह ते हैं। कलात्मक सूक्ष्म क्रियाओंका निश्चय और नाप-तौल होना असंवभ है, न अभीतक हुवा है। ऐसी हालत में उनका हिसाब और साथ संगत मे पुनराविष्कार की रीति बताना भी फिजूल ही कह लायगा अभी इतना कहना आतिशयोक्ति नहीं होगी कि कुशल हार्मो॰ वादक धमन कम ज्यादह चला के और पट्टीयाँ कम ज्यादह दबा के हार्मो. के स्वर कम ज्यादह कर के बजाते हैं यह जान का जानते है।

(९) ऊपर कहा उस माफिक द्रुतलय में 'तैयारी 'में कण-आंदोलनादि हरकतों को कम अवकाश रहता है, इस लिंये द्रुत फिरत में और जलद तानदारी में हार्मोनियम बादशाह है। छोटी-छोटी तानें और मुरकी जमजमासे ठुमरी अंग सजाया जाता है। इस लिये हार्मोनियम में ठुमरी अच्छी बजाई जाती हैं। द्रुत में तंतु वाद्यों के स्वर सुरीले रहना और सफाई से बजना असंभव है, इस के अलावा हार्मो॰ में अंगुली-चालन की सरलता और सुगमता है वह अन्यान्य वाद्यों में नहीं हैं।

सारंगी-संगतका उत्तम वाद्य

सिर्फ तंतु वाद्योंमेंही संगीत की बारीक हरकतें उत्तम और यथावत निकल सकती हैं। यह बात मान्य और प्रसिद्ध हैं। तंत के दो वर्ग हैं, **मिजराफसे** बजनेवाला और **गज से। कंठ-संगीत और वाद्य-संगीत ये दोनो चीजें अवश्य भिन्न है**। वाद्य-संगीत यह मिजराफी वाद्यों की सृष्टि है तो गजवाले वाद्यों के उपर विशेषतः कंठ संगीतही बज सकता हैं और बजाना चाहिए, जिस के कारण स्पष्ट हैं। बीन और सरोद ये मिजराफी वाद्यों मे मुख्य हैं। गमक (आंदोलन और कन) यह बीनका वैशिष्ट्य हैं। तान और टेढी फिरत यह सरोदका अंग हैं। स्वर दैर्ध्य, स्वर परंपरा में आंस और खटका, मुरकी जमजमा, छोटी पतली तानें, कंप यह कंठ-संगीतका वैशिष्ट्य हैं। शब्द साहचर्य के कारण गीत-भाव-जन्म स्वर-विलास यह कंठ-संगीतका सही स्वरूप हैं। कंठ-संगीतका असली और संपूर्ण स्वरूप लौकिक संगीतमें (लाईट म्युझिक में) बराबर पाया जाता है। मिजराफी वाद्यों में स्वरको तोकडापन टूटापन और ठोंककी आघातमयता रही हुई है। कंठ-स्वर में गायक की भावना का पूरापूरा रंग (गायक हृदयहीन और रूखी तबियतका प्राणी न हो तो) उतर सकता है, उसी तरह से बांसरी और सरणाई का स्वर थोडा वहुत भावरक्त हो सकता है। (इसी लिये नारदीय शिक्षामें कंठको सप्राण, वेणुको अर्धप्राण और वीणादिको निष्प्राण वाद्य कहा होगा; छपाई की अशुद्धि के डरसे, यहां श्लोक देना उचित नहीं समझते हैं।) बीन आदि का स्वर इसी कारण से रूखाही समझना चाहिए। मिजराफी वाद्यों के आघातमय स्वर के कारण वाद्यसंगीत मे स्वर विलास के बदले तालविलास अर्थात लयकारी विशेषत: संवर्धित हुई। बडे रागों के गमक-आंदोलन आदि स्वरयोग आघातजन्य स्वरोत्पादन के कारण संगीत में प्रविष्ट हो गये। मिजराफ, झाला और तान ये वाद्य-लयकारी के तीन प्रकार हैं। प्राचीन ध्रुपदगायन तालप्रमुख माने वाद्यसंगीत रूप था और 'नोम् तोम्' वाले आलाप बीन वादन की कंठगत नकल हैं। वैसे 'तनरनुम' वगैरे अक्षर भी मिजराफ की जुबानी नकल हैं! तराणा-गीत प्रकार सितार या सरोद कि गतका अनुकार हैं। कभी ख्याल गायक तराणे में मिजराफ और झाले का काम मुंहमें बजाने के वास्ते मशीन की माफिक जुबान चलाते हैं, यह असुंदर दिखता हैं। कई गायकों की गलाकाट टेढी तान बाजी सरोदकी फिरत की नकल है। कोई इससे भी आगे बढ़के लयकारी के फंदसे गाने मे गलेसे तबलाही बजाने लगते हैं, जो भद्दा दिखता हैं। गाने में 'सारेगम' बोलना यह भी वाद्यानुकरण कहलायगा। सारांश कि कंठ संगीत वाद्य-संगीत से भिन्न है और कंठ संगीत मे वाद्य संगीत का मिश्रण किया

गया तो भी वाद्य वादन जैसा नहीं दिखना चाहिए। इसी कारण से **यूरोपीय संगीतमें** कंठ का और वाद्यका संगीत एकदम भिन्न हो गया हैं और पियानो का आघातमय संगीत–न कि व्हायोलिनका–यूरोपीय वाद्य संगीतका एकमेव आधार रहा हैं, जिसमें लयकारी और ज्यादह से ज्यादह स्वर योग–न कि अपने जैसा गमक कनादिरूप, लेकिन – हार्मनी के रूप में प्रयुक्त होता है। अपने संगीत में कई राग वाद्य–वादन के वास्ते ज्यादह अनुकूल हैं, कई कंठ–संगीत के वास्ते। दरबारी जैसे बडे रागों में मुरकी वगैरह अच्छी नहीं लगती, उससे इन रागों के भाव लौकिक व चंचल हो जाते हैं, जिससे रागों का स्वरूप ही नष्ट होने लगता है। ऐसे राग बीनकी देन कह सकते हैं। वस्तु स्थिति ऐसी है, तो भी बडे राग जब कंठ संगीत में प्रविष्ट होते हैं, तब उन में उपर्युक्त कारणों से वाद्य पर बजते स्वरूप से अलग सूरत आ जाती है। कंठ और वाद्य पर यमन जैसा संपूर्ण और सामान्य राग गाया बजाया हुवा तुलना करके देख लेने से हमारा मंतव्य ध्यान में आयगा। यमन लाईट (Light) राग नहीं है। वैसेही कोई एक राग के ध्रुपद के और ख्याल के बोल और आलाप में उसी तरह फ़रक रहा है। ठुंमरी गायन प्रकार शास्त्रीय संगीत का लौकिक संगीत के नज़दीक का स्वरूप होनके कारण उस में कंठ संगीत की भावोत्कटता और स्वर विलास की चंचलता पूर्णतया विकसित हुई हैं। ध्रुपद–ख्याल का संगीत निर्गुण (abstract) है, अतएव उच्च कक्षा का है, ठुंमरी स. सगुण हैं, जिसको यूरोपीय संगीत में Programme—Music कहते हैं, उसी प्रकार का। इस कारण से ठुमरी में गमकादि वजनदार अलंकार विशोभित दिखते हैं। लयकारी ठुंबरी की दुश्मन हैं, इसी कारण से। इतना होते हुवे भी **फैयाज़खां** जैसे ऊंचे गायक ' खुलखुल जाय बाजुबंद ' जैसी श्रृंगारिक ठुमरी में समपर आते दफ़ा दो मात्रा में आठ बोल जल्दी से लेकर के गाने का खुर्दा कर देते दिखते हैं। सारांश यह कि कंठ संगीत को वाद्य संगीत से अलग संभालना चाहिये। ऊपर बताया मुजब गजवाले वाद्योंका और कंठ का स्वर सभानधर्मा होनेके कारण तथा ख्याल ठुमरी और लाईट म्युझिक यह कंठ का संगीत होने के कारण गजवाले वाद्यों के उपर ही वह अच्छी रीति से बज सकता हैं। वैसा सुषिर (फुंकवाले) वाद्य बांसरी और शहनाई (सनई) में भी कंठ संगीत अच्छा बजाता हैं। प्राचीन समय में गानेवालों की संगत बांसरी भी करती थी और आज वह ज़माना फिर आया हैं कि जब लाईट म्यु. की संगत बांसरी से और यूरोपीय शहनाई (क्लॅरोनेट) से होने लगी है। इस प्रसंग में यह बताना ज़रूरी होगा कि हार्मोनियम यह वाद्य बांसरी के समान ही है, जो सुषिर होके रीड्स का जत्था ही हैं। बांसरी में स्वर को अति कोमल आदि बजा सकते हो, उतनी उस बाबत की गुंजाईश हार्मो० में जो कि नहीं हैं। वैसा संगत के वास्ते हार्मोनियम की अवाज बांसरी से ज्यादह अच्छी हैं। यहां एक प्रसंगोचित बातका उल्लेख करना आवश्यक है—वह **रेडियो में** होती हुई बांसरी और क्लॅरोनेट की साथ। यह साथ इतनी घोंघाटवाली और जोरशोरसे होती हैं और उस में उक्त दोनों वाद्यों के स्वर इस कदर अलग बजते हैं कि इस की योजना करनेवाले रेडियो–चालकों पर दया ही आ जाती हैं, कि जिन्होने हार्मोनियम की साथ बुरी समझ के बंद कर दी ! खैर बात चल रही थी गजवाले वाद्यों की। इन में सारंगी प्रमुख हैं, जो **हिंदुस्तान का व्हायोलिन** है। सारंगी यह व्हायोलिन का पूर्वज है भी। प्राचीन समय में भी सारंगी की महती मानी हुई है और संस्कृत ग्रंथो में उसको ' शांमवो वीणा ' और पूजनीय कहा हैं। गले का बहुतांश काम सारंगी में होता हैं ※। स्वतंत्र रूप से (सोलो) वादन करनेवाले वादक सारंगी, व्हायोलिन, हार्मोनियम और शहनाई में लयकारी और झाले का काम तक बताते हैं। लेकिन कंठ संगीत की आंस और भावात्मकता सारंगी में ही ज्यादह पैदा हो सकती है, जिससे सारंगी बजती है, तब मालुम होता है कि कोई गा ही रहा हैं। ध्रुपद और नोमतोम गाना बीन का था, उसी तरह **ख्याल ठुंमरी गाना सारंगी का** कह सकते हैं +। **गायकों के भी दो वर्ग हैं।** उस्ताद गायक और कलाकार गायक। रियाजी (खूब महनत किये हुवे और गाते हैं– तब ऐसा लगता हैं, कि महनत ही कर रहे हैं।) तालिमीये (गाना सीखानेवाले) और तैयार (तानबाजी का लयकारी का गाना और अप्रसिद्ध राग गानेवाले गायक) ऐसे उस्ताद वर्ग के तीन प्रकार हैं। अपने गानेसे रसिकों के हृदयपर असर करनेवाले कलाकार गायक इससे अलग हैं। भाव स्निग्ध लोचवाला सुरीला गला और अच्छी

※ देखिए ' विहार ' में श्री. गानूजी का ' दिलरुबां–वादन ' पर लेख।

\+ " ख्याल सारंगी वाद्य की शैली हैं। " (पं. राजाराम द्विवेदी– ' संगीत ' मासिक अक्टूबर १९३१

तबियत जिन गायकोंने पाई नहीं होती है या जिन के गले गाने के लायक ही नहीं होते हैं वे अपने गाने में वाद्य संगीत को–लयकारी को स्वाभाविकत: स्थान देते आये हैं। जिनसे गलेका गाना गाया गया नहीं वे ईर्ष्यासे या अज्ञानसे कलाकार गायक की निंदा करने के वास्ते कहते हैं। "वह तो सारंगी जैसा गाता है।" लेकिन गाने जसी कंठ संगीत जैसी सारंगी ही जब बजती है, तब सारंगी जैसा गाना कहने मे कौंनसा मतलब रहा हैं? हरेक वाद्यकी शक्ति मर्यादित हैं। लेकिन सभी वाद्य क्रिया ओंका उच्चार एक कंठसे निकल सकता है. कंठ मे असंख्य और अकल्पनीय हरकतें निकलती हैं, उस की शक्ति अमर्याद है। कलाकार गायकों के गाने में बीन सरोदे सारंगी और हार्मोनियम की बातें भी रही हुई दिखती है, अकल से और ग्रहण–बुद्धि से देखनेवाला चाहिए। लेकिन कलात्मक गायन में ऐसी बहुत ही बातें रही हुई होती हैं, कि जो सभी वाद्योंसे परे हैं, जिस कारण से गायक कलाकार तरी के बहुमान्य होता है। ख्याल ठुमरी गानेवाले आजकल के गायकों में कलाकार गायक रहमतखां, अबदुलकरीमखां मौजुद्दीनखां, मंजीखां, फैयाजखां, बडे गुलाम अली, (बालगंधर्व, सैगल,) रोशन आरा, हीराबाई आदि हुए और हैं, उनका गाना कंठ संगीत ही था और इस दृष्टिसे कह सकते हो कि वे सारंगी का गाना गाते हैं। लेकिन वैसा देखो तो उन का गाना वाद्य संगीत न था, कोई एक वाद्य का नहीं था, कंठ संगीत नही है और वाद्यसंगीत गाने वाला कलाकार गायक नहीं हो सकता है। अच्छा गायक वाद्य जैसा गाता है कहना कूडपन हैं। कंठसंगीत के विशेष अर्थ में कभी–कभी '**गायकी**' शब्द भी वापरा जाता हैं। इससे कई जानकार कहते हैं कि वाद्य के उपर 'गाय की' बजना चाहिए। कहा जाता हैं, कि म. **बंदे अलीखां** बीन में कंठसंगीत बजाते थे। **अब्दुल अजीजखां** विचित्र वीणा के उपर कंठसंगीतही बजाते थे। हाल में **विलायतखां** सितारिये भी सितारपर कंठसंगीत ही बजाते हैं, जिससे वे अति लोकप्रिय हुए हैं। **हाफीज अलीखां** भी सरोदपर कभी–कभी कंठसंगीत बजाते हैं। इसके उलटा **बुंदुखां** जैसे अच्छे वादक सारंगीपर वाद्य संगीत बजाने का शौक ज्यादह रखते हैं। इतना होते हुये भी यही बात सिद्ध होती हैं, कि फक्त सारंगी और हार्मोनियम (और बांसरी शहनाई) ये कंठसंगीत के वास्ते के बाजे हैं और गायक की **संगत करने के वास्ते सारंगी और हार्मोनियम को पसंद करना चाहिए** और पसंद किया हुवा भी हैं। भारतीय संगीत में वाद्य संगीत में और कंठसंगीत मिश्र रहा है, इसलिए गायक और संगीत विषय के अभ्यासी या विद्वान भी दोनों का घोटाला करते हैं। यहां कंठसंगीत की साथ का सवाल था इस लिए कंठसंगीत का विवरण करने के वास्ते हमको थोड़ा विषयांतर करना पड़ा। एक जमानेमें बीनका गाना प्रचलित था, लेकिन आज वह चला गया। आजका जमाना उसके आगे कभी का बढ चुका हैं, जो सारंगी और हार्मो० के संगीत का जारी हैं। यह कबूल करना चाहिये कि कंठसंगीत का अनुकार करने में सारंगी वाद्य हार्मोनियम से ज्यादह काबिल है। लेकिन सारंगी में कई दोष भी रहे हुवे हैं और वे अनुपेक्षणीय है, जिसका विचार करेंगे।

सारंगी के कई दोष,

कंठ और सारंगी में अत्यंत साम्य होते हुवे भी सारंगी में कई खामियाँ रही हुई हैं। वैसे परदे के वाद्यों में कई सहुलियतें हैं तो कई त्रुटि भी हैं– बिनपरदे के वाद्यों का भी वही हाल है।

खासकर के रागदारी के गायन के वास्ते स्वर गहरा, गोल (Smooth) और चिकना (स्निग्ध) होना चाहिये, जो बीन का और विशेषत: तानपूरे का रहता हैं। मध्य और तार सप्तक के उत्तर स्वर (Harmonics हार्मोनिक्स) आद्यस्वर के साथ जब रहे हुवे होते है, तब वाद्य का अवाज गहरा लगता हैं। गजवाले वाद्यों में अतितार और उसके उपर के उत्तर स्वर सुनाई देते है, इस लिए उनका अवाज तीक्ष्ण (Piercing) रहा करता है। उक्त कारणसे सारंगी का आवाज भी तीक्ष्ण, अनुनासिक (नाकीला), गोल नहीं, बल्कि चपटा और खर (घर्षणयुक्त) रहता है। आवाज के यह दोष भले एक तरफ रखें जाय। आजकल बजती हुई सारंगी गायक के स्वर से एक सप्तक ऊंची रहती है। कनयुक्त गमक और बहलावा सारंगी पर बहुधा अत्युक्त (exaggerated) बजते हैं। ये सितार बीनपर यथार्थ बजते है। बिल्कुल धीरे (Slow) मींड घसीट का भी यही हाल है। हे विचित्र बीनपर अच्छे निकलते है।

पतली जलद तान सारंगीपर साफ़ निकलती ही नहीं हैं। सपाट लंबी तान का वही नतीजा हैं। द्रुत में तो सारंगी के सभी दोष बोलने लगते है, जब वह बेचारी 'चीं चीं' चीत्कारही करने लग जाती हैं। गजवाले वाद्यों में गज का दबाव कम ज्यादा होता ही रहता है और बिन परदें के वाद्यों में खास कर के द्रुत में स्वर की बिलकुल जगह के ऊपर एकाएक उंगली पडना असंभव ही हैं. ये दोनों कारणसे सारंगी में सुरीलापन कम रहता है। सुरीला सारंगीवादक अपवाद रूप एक–आध होता हैं, कनसुरे ही ज्यादह। सारंगी का यह छोटासा दोष इतना बडा हैं, कि वह उसको संगत के वास्ते बेकाम ठहरा देता हैं। सुरीले गायक तो इसी वास्ते सारंगी से नफरत करते हमने देखे है। उंचे कलाकार गायकों का गाना संगत में वाद्य ये बजाना मुश्किल ही है। इसी लिए गायक का गाना हूबहू बजाना यह अर्थ संगत का नहीं करना चाहिये। कई गायक एक–आध अटपटी हरकत या बिकट तान लेके इसी अपेक्षा से संगतवाले का मुंह ताकते दिखते है। और मामला कभी झगडे तक बढ जाता है। लेकिन संगत का अर्थ गाने का सामान्य अनुकार–स्वरको स्वर दिया जावे–इतना ही समझना योग्य होगा। गवय्ये की हरकत हूबहू निकालने की कोशिश में सारंगीवाले गाना बहुतेक बिगाड ही देते हैं। आज–कल कॉन्फरेन्सों मे बडे गुलामअली, फैयाजखां आदि गायकों की साथ बुंदुखां जैसे काबिल सारंगीये करते बैठते है और परिणाम अपेक्षा से उलटा ही आता हैं, जो श्रोताओंने सुनाही होगा। कंठ–संगीत के विषय मे सारंगी की यह हालत है, तो फिर अन्य वाद्यों की कैसी होगी? यह बात तो नामी वादकों के बिचित्र बीन और शहनाई के रेकॉर्ड्स सुनने से मालूम होगी। एक अच्छा भी गायक दूसरे के ढंग की या गले की नकल करने जाता हैं, तब भी यही नतीजा निकलता है। रजब अलीखां जैसे तानबाजीवाले गायक अबदुल करीमखां की नकल करने की कोशिश करते है, उसमें गाना रोना हो जाता है। अन्य गायकों के रेकॉर्ड्स मे भी इस बातकी नोंध मिल जायगी। उत्तम सुरीले कलाकार गायकों की संगत सारंगी से क्वचित ही अच्छी हुई है। सुरीले गले के साथ कनसुरी सारंगी चलती है, तब तो और भी असहनीय हो जाता है। म० अबदुल करीमखां के साथ बहुत से सारंगीवालों से नहीं हुई यह बात प्रसिद्ध है। हमें कई दफे देखनेको मिला था कि खांसाहब के गाने की साथ सारंगी से अच्छी मालूम नहीं होने के कारण रेडियोंवालोने वहीं बीच में या शुरूमें ही सारंगी बंद कर दी थी, जब उन के साथ रेंडियोंवालोनें **हार्मोनियम को सहर्ष चालू रखा था। दु:ख की बात यह है कि रेडियो डायरेक्टर आज सारंगी का वह इतिहास भूल गये हैं।** सारांश यह कि सारंगीं की साथ थोडे अपवाद छोडके यशस्वी हुई देखने मे नहीं आई। ज्यादातर तो गवय्या और सारंगीवाला दोनों ही 'तैय्यार' और स्वर से अलग होनेसे विस्वरता का द्विगुणित विस्तार हो कर के महफिल का कत्ल हुआ हो, यह रोजाना के अनुभव की बातही है।

गायकी के वास्ते सारंगी सर्वोत्तम वाद्य होते हुये भी संगत के वास्ते हार्मोनियम ने उसका स्थान क्यों काबीज कर रखा, हार्मोनियम में ऐसी कौनसी बात रही हुई है, इस का विचार अगले विभाग में करेंगे। दूसरा, इस लेख में उदाहरण तरीके कई गायकवादकों के नाम आये है, वे लेखको के व्यैयक्तिक प्रेम या द्वेषके कारण नहीं दिये गये हैं। गायन का आश्रय तो प्रत्यक्ष गायक ही हो सकता है। गुणदोष चर्चा में टीकाकार के नातेसे उल्लेखित व्यक्तिनामों में कोई भला–बुरा न मानें और क्षंतव्य समझे, यह प्रार्थना है। (अपूर्ण)

राग–शुद्धकल्याण त्रिताल [म. लय]

(स्वरकार:— पं. शं. ल. सप्रे, नागपूर)

अस्ताई

ग प रे —	सा ध़ — प	[प]ग — — —	[रे]ग प गप —
र स ब ऽ	गि बे ऽ ग	आ ऽ ऽ ऽ	वो ऽ रेऽ ऽ
०	३	×	२
सा — ग रे	[रे]ग — [ग]प मं	ग रे गप (प)	[प]रे रे सा —
सा ऽ ज न	आ ऽ वो ऽ	मो ऽ रेऽ मं	द र वा ऽ
०	३	×	२

अन्तरा

[ग]प — पग ग	प — सां ध	सां सां — सां	सां [नि]रें सां —
मों ऽ म द	मा ऽ पि या	स दा ऽ रौं	गो ऽ ले ऽ
०	३	३	२
सां रें [रें]गं रें	सांऽ [नि]ध प	पप धनि सांरें सांनि	सांसां धप गरे सा
च त र पि	या ऽ को ऽ	आऽ ऽऽ नऽ जऽ	गाऽ ऽऽ वोऽ ऽ
०	३	×	२

———

कुड़की [कहानी]

लेखक:— श्री. सिद्धेश्वर अवस्थी.

कीमती सोफासेट, पियानो, वायोलिन, गोल कमरे के चारों ओर रखी हुई कलापूर्ण मूर्तियां, जमीन पर बिछा हुवा बडा कालीन......। ब्यूक का लेटेस्ट मॉडेल रायसाहब के गैरेज में होना अनिवार्य था ! और हो भी क्यों न ? कई लिमिटेड कंपनियों के चेअरमेन, आधा दर्जन मिलों के मालिक जो थे। इतने पर भी यदि उनकी बेटी कांति की कोई हविस पूरी होने से रह जाये तो इससे बढ कर रायसाहब की तौहीन और क्या हो सकती थी ?

अप्रैल मास की पहली तारीख को अपनी एक सहेली की पार्टी से लौटने के बाद कांति को अनमोल। घडी, दर्द और जुगनू के गानों ने बेताब कर दिया। रायसाहब तब घर में नहीं थे। कांति अपने पलंग पर बडी बेचैनी से करवटें बदल रही थी। हवा काफी तेज थी; किंतु कांति यह की उलझन महसूस कर रही थी कि रात्रि का निस्तब्ध आकाश उसके साथ व्यंग किया चाहता है। अनमनी सी होकर वह उठी और पियानो के परदों पर उंगलियां टक-पटक कर गीत निकालने का प्रयत्न करने लगी–" दिल तोडके चले तो नहीं जावोगे। "

सुनने वाले नौकर चाकर चाहे भले ही समझ लें कि बिटिया इस सूनी रात में अपनी जवानी के तकाजे से परदेशांन है पर कांति का हृदय ही अपनी व्यथा को भली शांति समझ रहा था। बाहर होने बजा, शायद रायसाहब आगये थे। कांति की आंखें खुशीसे चमक उठीं, दौडकर रायसाहब का हाथ उंगलिया में ले, मुंह बनाकर बोली–" डेडी, मैं म्यूजिक सीखना चाहता हूं। "

" श्योर-श्योर, कल ही टयूटर रख दूंगा। जाओ, आराम करो बेटी। "

* *

सुबह की अलमस्त हवा-रेशमी पर्दे ने दरवाजे पर झूम कर बलायें लीं। आज म्यूजिक-टियूटर आयेगा। आठ दिन बाद वह फिल्मी गानों की मास्टर दी जायेगी। कल की तरह अब वह किसी पार्टी में चुप न बैठेगी बल्कि स्टेज पर एक बार गाने के लिए कितनेही उसकी खुशामदें करेंगे। उसके मधुर स्वर की दाद दी जायेगी। कितने अच्छे हैं मेरे डैडी।

प्राइवेट सेक्रेटरी सुबह से ही परेशान था, नाश्ता तक नसीब नहीं हुवा बेचारे को। ११ बजने को आए। अब तक नगर के लगभग आधे दर्जन गायक रिजेक्ट किए जा चुके थे। किसी की पर्सनैलिटी खराब थी, कोई देहाती हूश जैसा लगता था, किसी की आवाज फटे बांस जैसी थी, कोई इललिटरेट था और किसी को जूते खोलने तक का शहूर नहीं था !

'बला की मुसीबत है, सेक्रेटरी मन ही मन झुंझला रहा था। अपने परिश्रम और विश्वास से हताश सेक्रेटरीनें जमीन की तरफ आंखे झुकाकर एक बार टेढ़ी उंगली से माथे का पसीना पोंछा।

बडी राय और मशविरे के बाद तय हुआ कि उस्ताद रहमतखां को किसी तरह से राजी कर लिया जाय तो गले की फांसी टूट सकती है। उस्ताद रहमतखां पुराने और प्रसिद्ध खानदानी गायकों में से थे। इनका गाना या तो बड़े राजा-महाराजा सुन सकते या फिर वह जो उस्ताद की चिलम का साथ दे सकते तथा जिन्हें अपने लिबास से सख्त दुश्मनी होती और जो हफ्ते में चार फाकाकशी करना अपना धर्म समझते।

उस्ताद को अपनी मैली अचकन और लखनवी तेलौसी टोपी से खास मोहब्बत थी। कभी—कभी सनक आने पर सडक के किनारे जमीन पर ही बैठकर वह अपने चन्द यार-दोस्तों को अलमस्ती से भैरवी के स्वरों का रसास्वादन करा दिया करते थे। किसी आयोजन या ऊंचे दर्जे की कान्फ्रेन्स में लेट पहुंचने का उन्हें मर्ज सा था। उस्ताद राहिमतखां को बुलाने की बात तय होने पर सेक्रेटरी ने सन्तोष की सांस ली और उस्ताद के घर की ओर चल पडा। उस समय उस्ताद हुक्के की निलागी मुंह में दबाये बटेरें लड़ाने में तल्लीन थे। छोटे लडके ने एक कार्ड लाकर उनके हाथ में रख दिया। बोला –" एक बाबूजी बाहर बैठे है और आपको याद कर रहे हैं। "

उस्ताद ने एक बार आंखें उठाई और 'बिहाग' के आलाप के साथ फिर बटेर लडाने लगे। एक घंटा बीत गया। उस्ताद की बटेर करामत की बटेर की चोंच तक उठने नहीं दे रही थी। बडी मुश्किल से खेल खत्म हुवा तो उस्ताद ने उस कार्ड पर गौर किया। भाषा उनकी पँहुंच के बाहर थी अत: उन्होंने मुहल्ले के चार पढे लिखे लडकों कों बुला भेजा। उस्ताद और उनके साथियों का यह ख्याल था कि इस बार सरकारनें नये साल की खुशी में उन्हें 'मौसी की–हिंद' का खिताब भेजा है है। इसी खुशी में बडी बडी मदफिलें करनें के मनसूबे बांधे जा रहे थे। इस चख–चख में उनका बडा लडका आगया जो अंग्रेजी का माहिर माना जाता था। उस्ताद नें फौरन कार्ड उसके हाथ में देकर कहा– "देखना बेटा! शायद मेरे लिये सरकारनें कोई खिताब भेजा हैं।" कार्डपर नजर डालकर लडका हंस कर बोला— "यह तो विजिटिंग–कार्ड हैं। रायसाहब जानकीनाथ के सेक्रेटरी नें आपसे मिलने के लिये भेजा है।"

"लाहौलबिला कूबत"–कह कर उस्तादने फूर्ती से अपनी टोपी टीक·की, अचकन पहनी और चांदी की मूठदार छडी हाथ में ले टाट का पर्दा उठाकर बाहर आये और बोले– "आदाब अर्ज जनाब! माफ कीजिये, जरा बटेरों की लडाई के वजह से कुछ ज्यादा इंतजार आपको करना पडा।

"नहीं—नहीं" सेक्रेटरी नें जैसे औंघाई से चौंक कर कहा।

"कहिये, कैसे आपनें अपनी जूतियों को नाचीज के गरीबखाने तक आने की तकलीफ दी?"

"जी, रायसाहब की लडकी आपसें म्यूजिक सीखना चाहती हैं।"

"'अजी मुझे क्या आता है? मगर रायसाहबका हुकुम भी कैसे टाला सकता है? अच्छा, चलता हूं"

उस्ताद ने फिर अंदर जा कर अपनी दरबारवाली अचकन पहनी–आंखोंका सुरमा जरा तेज किया और चल पडे।

* * *

कमरे में प्रवेश करते ही सीधे रायसाहब को आदाब अर्ज करके उन्हीं की बगल में बैठ गये। उन्हें उम्मीद थी कि राज-दरबारों की तरह सामने जातेही चांदी का पान दान पेश किया जायेगा लेकिन यहां तो किसीनें एक बर्कले सिगरेट भी नहीं भेंट की। उसपर उस्ताद से गाने की फर्माइश की गई। गाने का मन तो नहीं हुवा लेंकिन फिर भी उस्तादनें काफी राग की लय की एक चीज पर एक–दों तानें लेंकर संगीत की गहराई और अपनें कौशल्य का परिचय दिया। किंतु उन्हें अत्यंत निराशा हुई जब कांति व्यंगपूर्ण हंसी हंसकर बोली—" डैडी! इस म्यूजिक सें मै पागल हो जाऊंगी। आखिर इस म्यूजिक का सेंस ही क्या है जों जानवरों की तरह गलगलें करकें गाया जायें और समझ में खाक भी न आये।"

उस्ताद की त्योरियों पर थोडे बल पड गये किंतु बिना एक शब्द भी बोलें चुपचाप उठकर चलदिये।

सेक्रेटरी बेचारे कें सामनें फिर वही समस्या। आखिर यह कैसें हल हो। अंत में निश्चय किया गया कि उस दिन वाली पार्टी के गायक को ही बुलाया जाये।

सहेली से पता मालूम करके उन साहब को बुलाया गया। उम्र करीब तीस बरस, नीचे से ऊपर तक सफेद कपडे पहने, आंखों पर सुनहली फ्रेम का चश्मा और कलाई पर सुनहली रिस्ट वाच बंधी थी। समय का उन्हें विशेष ध्यान था।

निश्चित समय से एक मिनट पहले ही वह रायसाहब के बंगले में दाखिल हुवे। जेब से अमेरिकन डिझाइन का सिगरेट केस निकाला। सिगरेट सुलगाई और बडे नाजो–अन्दाज के साथ शर्मीली लडकीकी तरह सोफे के एक कोने में सिमट कर बैठ गए। कांति ने अन्दर से निकलकर स्वागत करते हुए कहा— "हॅलो मिस्टर मजूमदार! माफ कीजिएगा, जरा ड्रेस करने में देर हो गई।"

'जी, कोई ख्याल न कीजिये। आपकी ही सेवा के लिए आया हूं'।–मजूमदार ने कहा। 'तो फिर आज से ही...'

" अजी अभी से ही क्यों न शुरू कीजिए। " और तुरन्त ही उसके फेवरिट गाने को पियानो पर बजा दिया।

कान्तिको उस दिन गाने के बाद लगा जैसें उसका चिर-स्वप्न शीघ्र ही साकार होने वाला है।

० ० ०

छै महिने बीत गए ट्यूटर ने बढिया-बढिया रसीले गाने सिखाकर अपनी सौ रुपया मासिक फी का हक अदा कर दिया। अचानक एक दिन कान्ति को अपने कॉलेज के वार्षिक उत्सव पर गाने का निमन्त्रण मिला। बडी मुश्किल से यह दिन नसीब हुआ था। पन्द्रह दिन पहले से जी तोडकर जुगनू और दर्द के गानों का रिहर्सल किया गया।

आखिर वह दिन भी आ पहुंचा। हॉल श्रोताओं से खचाखच भरा हुआ था। कान्ति का नाम एनाउन्स किया गया था।

कान्ति का स्टेज पर आने का यह पहला ही मोका था। और फिर यह कोई सभ्य समाज की पार्टी नहीं। यहां तो शैतान लडकों के गढ का मुकाबला था। कलेजा धडकने लगा। हार्मोनियम मास्टर साहबने ले लिया लेकिन तबलची वही सन् १६ का पुराना मॉडल था — बडी मूंछे, पिचके गाल। स्टेजपर गाने वाली लडकियों को कनखियों से देख कर बडी कुटिल मुस्कराहट से मुस्कराता था।

" क्या होगा भगवान ? कान्ति स्टेज पर आई। बडी जोर की करतलध्वनि हुई। कान्ति ने अटकते-अटकते गाना शुरू किया। " दिल लेके चले तो नही जाओगे "।

बडे जोर के कहकहे लगने लगे। कुछको वियोग की महामारीने घर दबाया। भीड से हूं-हूंकी आवाजें आईं। किसीने कहा- ' तबलेवाला बेमुरव्वत है। ' कोई बोला- ' जरा धीरे—धीरे—। '

अधूरा गाना छोड कर वह वापस चली आई। आतेवक्त ट्युटर से भी नहीं मिली। कार आने में अभी देर थी इसलिये नौकर को साथ ले पैदल ही चल पडी।

रास्ते में सडक के किनारे कोई अकेला बैठा गा रहा था- " इतनो जोबन पर मान न करिये। "

सारी बातें एक-एक करके कांति को याद आईं। आज उसकी पराजय का मात्र कारण फिल्मी गाना था। गायक के वह तनिक और पास हो गई। चौक कर वह क्या देखती है कि, गायक और कोई नहीं स्वयं उस्ताद रहमतखां थे। आंखे बंद जैसे बेहोश हों, राग विस्तार करने में तन्मय थे। कांतिने अनुभव किया कि गायक की स्वर लहरी के साथ वह मानों डूबती सी जार ही है। बोली- " कितनी शांति है तुम्हारे स्वरों में उस्ताद ! "

उस्तादने चौंक कर आंखें खोली। आश्चर्य से बोले— " तुम ... ... ? "

कांतिने अनुनय के स्वर में कहा- " हां उस्ताद, मुझे माफ कर दो। मैंने एक दिन तुम्हारा मजाक उडाया था। तुम्हारा ही नहीं, अपने देश की वास्तविक कला का। उसी के फलस्वरूप ईश्वरने यह पराजय मुझे दी है। अब मैं तुम्हारी शरण में हूँ, मुझे रोशनी दो। "

उस्ताद हँस दिये। बोले — " मैं तो अब दिवालिया हूं। महाजन ने मेरी लालटेन तक कुडक कर ली है। " और इतना कह वे तंबूरा उठा कर एक ओर को चल दिये।

कांति देख रही थी कि अन्धकार में धीरे-धीरे उस्ताद की आकृति घुलती जा रही है।

संपादक
प्रो. बी. आर. देवधर
सहसंपादक
पं. विनयचंद्रजी मौद्गल्य
प्रो. प्राणलाल शहा
व्यवस्थापक
प्रो. वसंतराव राजोपाध्ये

* संपादकीय *

'संगीत कला विहार' चे नमुना अंक धरून आतांपर्यंत आठ अंक निघाले. आमच्या 'गांधर्व महाविद्यालय मंडळा' चे सभासद महाराष्ट्र, गुजराथ आणि संयुक्तप्रांत या अनुक्रमें मराठी, गुजराथी व हिंदी भाषा बोलणाऱ्या प्रांतातच जास्त असल्यामुळें आम्ही हें मासिक तीन भाषांत काढण्यास सुरवात केली होती. परंतु आतांपर्यंतचा अनुभव असा आहे कीं, या तीन भाषांच्या गोंधळामुळें कोणालाच भरपूर मजकूर मिळत नाहीं व त्यामुळें वर्गणीदारांची संख्याहि अपेक्षेप्रमाणें वाढत नाहीं.

गेल्या मे महिन्याच्या ता. २२, २३, व २४ या दिवशीं नाशीक येथें भरलेल्या मंडळाच्या सर्वसाधारण सभेपुढें हा प्रश्न मांडण्यांत आला होता; त्यांत एकमतानें असें ठरलें कीं, या तीन भाषांऐवजीं फक्त एक राष्ट्रभाषेंतच [हिंदीतच] मासिक काढावें. या निर्णयानुसार 'संगीत कला विहार' ऑगस्ट महिन्यापासून संपूर्ण तया हिंदीतच निघेल. हळुहळू हिंदीचा प्रचार अधिक होत आहे तरी हिंदी मातृभाषा नसलेले 'विहार' चे वाचक या परिवर्तनाबद्दल आमच्यावर रागवणार नाहींत अशी आम्हाला आशा आहे. यापुढें 'विहार' फक्त हिंदीतूनच वाचकांची सेवा करील.

लेखकांस

या फरकामुळें मराठी व गुजराथींतून लेख पाठविणाऱ्यांची गैरसोय होणार नाहीं अशी काळजी आम्हीं घेतली आहे. आम्हीं एक उत्कृष्ट हिंदी भाषाकोविद ठेविला असून त्यामार्फत मराठी व गुजराथी लेखांचीं हिंदी भाषांतरें केली जातील. लेखकाची इच्छा असल्यास लेखाचें हिंदी भाषांतर लेखकाकडे अवलोकनार्थ पाठविलें जाईल. मात्र लेख अभ्यासू दृष्टीनें लिहिलेले असावेत हीच सूचना लेखकांना पुनः द्यावीशी वाटते.

नवा उपक्रम

आतांपर्यंत अभिजात संगीतविषयक लेखच 'विहारां'त आले. आतां मुंबई विश्वविद्यालयांतहि संगीताचा अभ्यास-क्रमांत अंतर्भाव होणार आहे. तरी 'रेडिओ' वरील कार्यक्रम, चित्रपट-संगीत, नृत्य, नाट्य व विद्यार्थ्यांच्या दृष्टीनें उपयुक्त विषय यांवरहि यापुढें 'विहारांत' लेख देण्याचें आम्ही ठरविलें आहे. अशा विषयांवरील अभ्यासून लिहिलेले लेख आल्यास त्यांचा अवश्य स्वीकार करण्यांत येईल. या नवीन विषयांचा अंतर्भाव 'विहार' च्या वाचकांच्या इच्छेनुरूपच करण्यांत येणार आहे. 'विहार' चे अंक आपल्या मित्रांना व चहात्यांना दाखवून त्याचा अधिक प्रसार करण्यास आमचे वाचक आम्हांला मदत करतील असा आम्हांला भरंवसा आहे. 'विहार' चा सर्व भार आतांपर्यंत आमच्या 'मंडळा' च्या सभासदांनीं उचलला आहे. 'विहार' चा अधिक प्रसार करण्यास मदत केल्यानें संगीत कलेचीच सेवा होणार आहे.

गायनाचार्य

पं. बाळकृष्णबुवा इचलकरंजीकर

[लेखक:—बी. आर. देवधर, बी. ए., संचालक, स्कूल ऑफ इंडियन म्यूझिक, मुंबई.]

सन १९१९ मध्यें कै. पं. विष्णु दिगंबर यांनी गांधर्व महाविद्यालयाची जी दुसरी संगीत परिषद भरविली होती तिचें अध्यक्षपद त्यांनीं आपले परमपूज्य गुरुजी गायनाचार्य कै. पंडित बाळकृष्णबुवा यांना दिलें होतें. माझें मूळ गांव मिरज हें इजलकरंजी पासून अवघ्या १८।२० मैलांवर असून सुद्धां मीं त्यांना या पूर्वी कधी पाहिलेंहि नव्हतें. माझा गायनांतील ' ओनामा ' मिरज येथील कै. निळकंठ बुवा यांच्याकडे झाला होता व ते स्वत: पं. बाळकृष्ण बुवांचेंच शिष्य असल्यामुळें ते आपल्या गुरुजींविषयीं गोष्टी आम्हाला लहरींत आले म्हणजे सांगत असत व त्यामुळें त्यांना पाहण्याची मला उत्कंठा लागली होती. ती उत्कंठा ह्या परिषदेनें पूर्ण होणार होती.

पं. बाळकृष्णबुवा मुंबईंत आले म्हणजे आमच्या सँडहर्स्टरोडवरील "गांधर्व महा विद्यालयातच" उतरत असत. त्यांच्यासाठीं दुसऱ्या मजल्यावरील एक प्रशस्त व हवेशीर खोली राखून ठेवली जात असे. त्यांच्या सेवेसाठीं विद्यालयांतील मुलें नेहमीं त्यांचे सान्निध्यांत ठेवली जात असत. ह्या खेपेस त्यांच्या सकाळच्या चहापाण्याची, स्नानाची वगैरे व्यवस्था माझ्याकडेच आली व अशा थोर कलाकाराच्या सान्निध्यांत २–३ तास तरी मला रहावयास मिळणार म्हणून मनापासून आनंद झाला.

आमचे गुरुजी पं. विष्णु दिगंबर ह्या वेळी कीर्तीच्या व वैभवाच्या शिखरावर पोंचलेले होते. मुंबईसारख्या ठिकाणीं स्वत:ची दोन लाख रुपये किंमतीची इमारत, शहरांतील अत्यंत प्रतिष्ठित नागरिकांत त्यांची गणना, गव्हर्नर, व्हॉइसरॉय पर्यंत त्यांचा शिरकाव, व दररोज पंक्तीला विद्यार्थी व अध्यापक मिळून १०० पान, असा त्यांचा थाट होता ! असे वैभवशाली शिष्य व दरमहा रु. ३० रुपयावर इचलकरंजी सारख्या सामान्य गावांत दरबारी गवयाच्या नोकरीवर असलेले त्यांचे गुरुजी पं. बाळकृष्णबुवा, .ह्यांची भेट कशी काय होईल, व ह्या भेटींत कोण कोणावर आपला रुबाब गाजवील हें पाहाण्याची मला फार उत्सुकता लागली होती.

बुवासाहेब व त्यांचे चिरंजीव पं. अण्णाबुवा यांच्यासाठीं चहा घेऊन मी सकाळीं त्यांच्या खोलींत गेलों व तेथेंच थांबून राहिलों. सुमारें अर्ध्यातासानंतर पंडितजींच्या खडावांच्या आवाजावरून ते तिकडेच येत असल्याचें आम्ही समजलो व मी व माझे सोबती नेहमींच्या सवयीप्रमाणें खडबडून उठून उभे राहिलों. अंगांत एक मलमलीचा सदरा व शुभ्र धोतर नेसलेले पंडितजी खोलीत येऊन गुरुजींच्या पायावर डोकें ठेवतांना पाहून मला फार आश्चर्य वाटलें !

इतके मानी पंडितजी कीं जे अगाऊ वेळ ठरविल्याशिवाय मोठ्या मोठ्या अधिकाऱ्यांची सुद्धां भेट घेत नसत, ते गुरुजींपुढें इतके नम्र झालेले पाहून माझा त्यांचाबद्दलचा आदर दुणावला. पाया पडल्यानंतर पंडितजी बुवासाहेबांच्या समोर बसले पण तेहि आसन मांडी घालून नव्हें तर एकाद्या विनयशील विद्यार्थ्याप्रमाणें हात जोडून व खुरमांडी घालून गुरु शिष्यांमधील संभाषणास अशा रीतीनें सुरवात झाली.

पंडितजी:— " महाराज, आपली सर्व व्यवस्था ठीक आहे ना " ?

पं. बाळकृष्णबुवा:–"विष्णु, तुझ्याकडे काय कमी आहे रे ? इतकीं मुलें आहेत सेवेला, सर्व व्यवस्था उत्तम आहे".

बुवासाहेब पंडितजींना अखेर पर्यंत अरेतुरेनेंच संबोधीत असत व त्यांतच पंडितजींना अभिमान वाटत असे. काय ही गुरू भक्ति ?

कै. पं. गुंडुबुवा औंधकर, पं. अनंत मनोहर जोशी व बुवा साहेबांचे सुपुत्र कै. अण्णाबुवा इतके बुवासाहेबांचे शिष्य या परिषदेस हजर होते. परिषदेंतील एका महत्वाच्या जलशांतील शेवटचें गाणें बुवासाहेबांचें व्हावयाचें होतें. त्या गाण्याच्या आधीं थोडावेळ पंडितजींनी व्यासपीठाकडे येऊन आपल्या गुरुबंधूंना सांगितलें कीं, बुवासाहेबांच्या साथीस मीहि बसणार असून एक तंबोरा माझेसाठीं राखून ठेवा. त्याप्रमाणें बुवासाहेब व्यासपीठावर चढण्याचें आधींच पंडितजी तेथे जाऊन इतर तिघां गुरुबंधूंबरोबर तंबोरा छेडूं लागले. बुवासाहेब व्यासपीठावर चढतांच चौघेहि साथीदार उठून उभे राहिले. पंडितजीहि उठून उभे राहिले, या गोष्टींचा प्रेक्षकांवर असा परिणाम झाला कीं, कित्येक श्रोतेहि उठून उभे राहिले. बुवासाहेब बसल्यानंतर सर्वजण खालीं बसले. " जबही सब निरपत निरास भये " हा भूप रागांतील ख्याल बुवासाहेबांनीं सुरू केला. चार शिष्य व बुवासाहेब अशा पांचजणांनीं मिळून तो ख्याल अशारीतीनें भरला कीं, सगळ्यांचे शब्द सारखे, सर्वांच्या खालीं सभा वगैरे ताल विभाग सारखें, कोणी पुढें कोणी मागें असें चुकूनहि कोठें झालें नाहीं, व पांच निरनिराळे गायक गात असतांना सुद्धां एकच गवई गात आहे असें वाटत होतें.

बाळकृष्णबुवांसारख्या महान गायकानें कोंणत्या मार्गानें एवढी विद्या मिळविली, तिची जोपासना कशी केली, व एवढा कर्तबगार शिष्यवर्ग कसा निर्माण केला, वगैरे गोष्टी समजाऊन घेण्याची माझी इच्छा बऱ्याचशा अंशानें इचलकरंजी येथील दरबार गायक प्रो. केशवबुवा इंगळे यानीं १९३६ मध्यें प्रसिद्ध केलेलें त्यांचें चरित्र वाचून पूर्ण झाली. त्या नंतर पं. अनंत मनोहर (औंध), पं. श्रीकृष्णजी हिर्लेकर (बनारस), पं. वामनबुवा चाफेकर (मिरज), व वासुदेवराव फलटणकर (मिरज), या बुवासाहेबांच्या शिष्यांचा व माझा संबंध आला व त्यांनीहि मला बुवासाहेबांबद्दल बरीच माहिती दिली. मिरज येथील श्रीं. गोविंदराव खाजगीवाले (यांच्या घरीं मिरज येथें असतानां बुवासाहेब कांहीं महिने राहिले होते.) व पुणें येथे हल्लीं असलेले प्रो. ग. द. रानडे यांनीहि मला बुवासाहेबांच्याबद्दल बरीच माहिती दिली. ह्याच माहितीचा उपयोग मुख्यत्वें ह्या लेखांत मी केला आहे.

' दक्षिणा आणलीस का ' ?

कोल्हापूरजवळ असलेल्या ' चंदूर ' या खेडेगांवीं खंडभट नांवाचे देशस्थ ब्राम्हण भिक्षुकवृत्तीनें राहात असत. त्यांच्या चार मुलांपैकीं वडील पुत्र रामभट यांना भिक्षुकीचा कंटाळा आल्यामुळें व त्याना गायन कलेची विशेष आवड असल्यामुळें, त्यांनीं साताऱ्यास जाऊन " बाळाजी बुवा " या गवयाकडे गाण्याचा अभ्यास केला व रामभटाचे "रामचंद्रबुवा" झाले. हेच रामचंद्रबुवा बाळकृष्ण बुवांचे वडील होत. खंडभटांच्या इतर तीन पुत्रांनीं आपला पिढीजात धंदाच पुढें चालविला. बाळकृष्णाचा जन्म शके १७७१(सन१८४९) वद्य पंचमीस आजोळीं बेडग येथे झाला. त्यांचीं वयाचीं पहिलीं पांच वर्षे तेथेंच गेलीं पुढें रामचंद्रबुवांनीं धारवाड येथें बिऱ्हाड केलें व तेथेंच बाळकृष्णाला शाळेंत घालण्यांत आले. रामचंद्रबुवास वाटे कीं, आपल्या मुलानें गाणें शिकावें तर त्यांच्या पत्नीचा हट्ट असें कीं त्याला भिक्षुक करावें. ह्या पतिपत्नीच्या मतभेदाचा परिणाम असा झाला कीं, त्याचें कोणतेंच शिक्षण धड झालें नाहीं व तो शाळेंतील एक उनाड मुलगा बनला. रामचंद्रबुवांनीं फिरतीवर जाण्यासाठीं आपलें धारवाड येथील बिऱ्हाड मोडलें व मुलासह आपल्या पत्नीस तिच्या माहेरीं बेडग येथें पाठवून दिलें. पुढें वर्षाचे आंतच बाळकृष्णाची मातोश्री एकाएकीं आजारी पडून वारली व वयाचे पांचवें वर्षीच तो मातृसुखास आंचवला. त्याचे एक चुलते विष्णु भटजी इलचकरंजी येथें भिक्षुकी करीत, त्यांचेकडे त्याला पाठविण्यांत येऊन तेथें तो शाळेंत जाऊं लागला व बालबोध लिहितां वाचतां येणें व उजळणी इतकीच त्याची शिक्षणांत प्रगति झाली. भिक्षुकवृत्ती त्याला मुळींच आवडत नसे, तरीं पुरुषसुक्त रुद्र वगैरे वेदपठणाचें शिक्षण त्याला सक्तीनें देण्यांत येऊं लागलें. गावांत कोठेंहीं लग्न मुंजी झाल्या तर तेथें जाऊन दक्षिणा आणलीच पाहिजे अशी कडक ताकीद त्याला मिळाली, पण बाळकृष्णास या गोष्टींत मानहानी वाटूं लागली. गावांतील नृसिंहाचा उत्सव चालू असतां इतर सोबत्याबरोबर तो पाहाण्यात एक दिवस इतका रंगून गेला कीं, गावांतील एका लग्नघरीं दक्षिणेसाठीं जावयास तो विसरला. थोड्याच वेळांत त्याचे चुलते विष्णूभट तेथे उपस्थित झाले व व बाळकृष्णास त्यानीं विचारलें, " लग्न घरची दक्षिणा आणलीस काय ? " अगोदरच बाळकृष्णाला या गोष्टीची चीड होती व तशांत सर्वादेखत हा प्रश्न काकांनीं दरडाऊन विचारल्यामुळें तो रागावला व " दरवाज्यावर दक्षिणा घेणाऱ्या बापाचा मी मुलगा नाहीं " असें त्यानें ताडकन उत्तर दिलें. विष्णुभटही रागावले व तेथेंच त्याला त्यानीं येथेच्छ चोपलें. यापुढे चुलत्याकडे एक क्षणही न राहण्याचा निश्चय करून बाळकृष्णानें ताबडतोब इचलकरंजी सोडली.

संगीत शिक्षणास प्रारंभ

बाळकृष्ण जो घर सोडून निघाला तो 'म्हैसाळ' या गांवीं आला. याबेळीं त्याचे वय १० वर्षांचें होतें. तेथें राहात असलेल्या विष्णुबुवा जोगळेकर या हरिदासाकडे तो गाणें शिकूं लागला. चांगला आवाज असून शिकण्याची तळमळ असल्यामुळें दोन वर्षांत कीर्तनांतील पदें चांगल्या तऱ्हेनें म्हणण्याइतकी त्याची गायनांत प्रगति झाली. विष्णुबुवा जोगळेकरांच्या मनांतून बाळकृष्णाला त्याच्या वडिलांच्या हवालीं करावयाचें होतें, म्हणून 'जमखंडी'च्या उत्सवास जातांना ते त्याला आपल्या बरोबर घेऊन गेले. परंतु रामचंद्रबुवा या वर्षी तेथें आलेच नाहींत. रामचंद्रबुवा 'जत' येथें नोकरी करीत आहेत हें समजतांच ते बाळकृष्णास घेऊन 'जत' येथें गेले व त्यांनीं त्याला वडिलांच्या स्वाधीन केलें.

वडिलांचा मृत्यु व पुन्हा गुरुचा शोध

वयाच्या तेराव्या वर्षी आपल्या वडिलांच्या हाताखालीं त्याच्या पद्धतशीर गायन शिक्षणास सुरवात झाली. पण अशीं दोन वर्षे जातात न जातात तोंच वडीलहि एकाएकी मृत्यु पावले, व बाळकृष्ण वयाच्या १५ व्या वर्षी सर्वस्वी निराधार झाला. 'जत'च्या राजेसाहेबांनीं त्याला दरमहा रु. १० शिष्यवृत्ती देऊन तेथेंच ठेवून घेतलें व गावांतील दुसरे गवई 'अलिदातखां' यांजकडे त्याची गाणें शिकण्याची व्यवस्था केली. सबंध एक वर्षांत खांसाहेबांनीं त्याला एक अक्षरहीं शिकविलें नाहीं म्हणून निराश होऊन त्यानें 'जत' सोडलें व वडिलांच्या वर्षश्राद्धासाठीं तो पुन्हा इचलकरंजी येथें आला. वर्षश्राद्ध आटोपून तो कोल्हापूर येथें गेला. तेथील राजगुरु 'बाबा महाराज' यांच्या शिफारशीमुळें 'भाऊराव कागवाडकर' या त्या वेळच्या प्रसिद्ध गायकाकडे त्याची गायन शिकण्याची सोय झाली. गुरुगृहींच्या इतर कामाबरोबर गुरुजींची चिलीम भरून देण्याचेंहि काम त्याच्याकडे असे. कांहीं कारणानें एक दिवस चिलीम भरून देण्यास जरा उशीर झाला व त्यामुळें गुरुजी एकदम खफा झाले, व "तुला गाणें येणार नाहीं व म्हणून यापुढें मी तुला शिकविणार नाहीं," असें सांगून त्याचें शिक्षण त्यांनीं बंद केलें. बाळकृष्ण पुन्हां देशोधडीस लागला. प्रवासांत त्यानें मिरज येथील प्रसिद्ध साधुपुरुष 'अण्णाबुवा' व 'अक्कलकोटचे स्वामी' यांचे दर्शन घेतलें व त्यांचा आशिर्वाद घेऊन तो माणिकप्रभूंच्या दर्शनासाठीं हुमणाबादेकडे वळला. तेथें जाण्याचा उद्देश येवढाच कीं, तेथें राहात असलेले 'हुसेन खांतेरे' या गवयाजवळ गाणें शिकावें, पण तेथें जाऊन पाहातो तों त्याला कळलें कीं, हे खांसाहेब नुकतेंच वारलें आहेत. माणिक प्रभूंचें दर्शन घेतलें तेव्हां त्यांनीं आशिर्वाद दिला कीं, 'तूं उत्तर हिंदुस्थानांत जा व तेथें तुझे हेतु पुरे होतील.' बाळकृष्ण तेथून पुन्हां निघाला तो तुळजापूर, सोलापूर मार्गानें पुण्यास येऊन पोंचला.

पुण्यांत त्या वेळीं असलेल्या 'अमरचंद वाडीकर' नांवाच्या नाटक कंपनींत तो गेला व त्याला गाणें येत असल्यामुळें सहज प्रवेश मिळाला. नाटक कंपनींत जाण्याचा उद्देश एवढाच कीं, कंपनीबरोबर उत्तर हिंदुस्थानांत जातां येईल व तिकडे कोणी चांगल्या गुरुची गांठ पडल्यास आपली गायन शिकण्याची इच्छा पूर्ण होईल. कंपनी मुंबईस आल्यावर तो मुगभाटांतून फिरत असतां त्याला एका माडीवर गाणें चाललेलें ऐकूं आलें. तो वर चढून गेला व गाणें ऐकूं लागला. वामनबुवा कवठेकर (धारकरांचे उपाध्ये) ह्यांनीं आपलें गायन संपल्यावर बाळकृष्णाची चौकशी केली, व त्यांना समजून आलें कीं, आपले मित्र रामचंद्रबुवा चंदूरकर यांचा हा मुलगा आहे. नाटक कंपनींत गेल्याबद्दल ते बाळकृष्णावर रागावले पण त्यानें नाटक कंपनींत जाण्याचा आपला उद्देश समजावून दिल्यानंतर वामनबुवांचें समाधान झालें. वामनबुवांच्या बरोबर धार येथें जाण्याची बाळकृष्णानें सर्व तयारी केली पण तेवढ्यांत वामनबुवांना कोणी निरोप सांगितला कीं, बाळकृष्णाचे मामा त्याला आपली मुलगी देऊन त्याचें लग्न करून देणार आहेत तरी त्याला 'धार' येथें आतांच घेऊन जाऊं नये. लग्नासाठीं तो बेडग येथें गेला. तेथें त्याला समजून आलें कीं, आपले मामा आपली काळी व कुरूप मुलगी आपल्या गळ्यांत अडकवून देण्याच्या बेतांत आहेत. तो रात्रींच तेथून पळाला तो औंध येथें येऊन पोंचला. औंधहून चालत चालत तो इंदूर येथें पोंचला. तेथें त्यानें प्रख्यात मृदंग वादनकार 'नानासाहेब पानसे' यांचे मृदंग वादन ऐकलें. थोड्याच दिवसांत तो 'धार' येथें जाऊन पोंचला.

देवजीबुवांचें शिष्यत्व

वामनबुवा कवठेकर यांनीं आश्वासन दिल्याप्रमाणें 'देवजीबुवा' ह्या प्रख्यात गवयाकडे त्याची शिक्षणाची सोय त्यांनीं करून दिली.

देवजीबुवांचें आडनांव परांजपे असून त्यांचें नांव रामकृष्ण असें होतें. हें कुटुंब मूळ पुण्याचें, त्यांचे मामा दुसऱ्या बाजीराव पेशव्याकडे नोकर होते, व त्यांचे बरोबर ते ब्रह्मावर्त येथें गेले होते. देवजीबुवा आपल्या मामाबरोबरच ब्रम्हावर्तास गेले व तेथें ते ' चिंतामण मिश्र ' या प्रसिद्ध धृपदियाकडे धृपद शिकले, हद्दु, हस्सुखांकडे व झांशीच्या मोगिलखांकडे त्यानीं टप्पा, ख्याल व धमारचा अभ्यास केला. त्यांनीं गायनांतील निरनिराळ्या शाखांची छत्तीसवर्षे तालीम घेतली व त्यामुळें धृपद, धमार, टप्पा व ख्याल हे सर्व गाणें तें उत्तम तऱ्हेनें गात असत. ग्वाल्हेरचे जनकोजीराव शिंदे यांनीं त्यांना आपल्याजवळ ठेवून घेतले होतें, व त्यांच्या मृत्युनंतर ते धार येथें आले व तेथील अधिपति यशवंतराव पवार यांचेकडे राहिले. ते स्वभावानें अत्यंत गरीब व सच्छील असल्यामुळें ' देवजीबुवा ' ह्यानांवानेच लोक त्यानां संबोधित असत.

गुरुगृहीं बाळकृष्णास, पाणी भरणे, केर काढणे, कपडे धुणें तें थेट स्वैयंपाक करण्यापर्यंत घरांतील सर्वच कामें करावीं लागत. गुरुपत्नीचा स्वभाव फारच विचित्र होता. देवजीबुवा तिला जी गोष्ट करावयास सांगत त्याच्या बरोबर उलट ती करणार हे ठरलेलेंच. ' पोळी कर ' म्हणून सांगितलें कीं, ती भाकरीच करणार. सणवारी आपल्या स्त्रीच्या हातचें जेवण्याची देवजीबुवांना इच्छा होई त्यावेळीं ते ओरडून बाळकृष्णाला सांगत, ' बाळकृष्णा आज तूच स्वैंपाक कर व भाकरींच बनीव ' ह्याचा परिणाम योग्य तोच होई व त्यांचीपत्नी यादिवशीं स्वतःच स्वैयपाक करी व पोळीच करीत असे. गुरुपत्नीनें बाळकृष्णावर तर पहिल्या दिवसापासूनच हत्यार उपसले होतें. ती त्याला इतकीं कामें सांगे कीं शिकण्यास त्याला वेळच मिळत नसे. त्यांतून वेळ काढून तो कधीं शिकावयास बसला तर गुरुपत्नी तेथें येऊन तंबोऱ्याच्या तारा धरून तंबोराच बंद करी अगर देवजीबुवाच्या तोंडावर हात ठेऊन त्यांचे तोंडच बंदकरी. देवजीबुवांची मात्र बाळकृष्णावर बहाल मर्जी होती, पण त्यांचे आपल्या पत्नीपुढें कांहीं चालत नसे. देवजीबुवा बाळकृष्णाला देवदर्शनास जातांना आपल्या बरोबर घेऊन जात व वाटेंतच त्याला चिजा शिकवीत. अशातऱ्हेनें देवजीबुवा त्याला दररोज एक दोन चिजा तरी सांगत असत. व घरांतील कामें करतां करतां गुणगुणून तो त्या पाठकरीत असें-असा क्रम तीन चार वर्षें चालला होता व बाळकृष्णाकडे ३००-४०० चिजाही जमल्या होत्या. पण हेंहि शिक्षण ज्यास्त टिकलें नाहीं. गुरुपत्नीचा त्रास तर दिवसेंदिवस ज्यास्तच वाढू लागला होता. एक दिवस त्याचा कांहींही अपराध नसतां गुरुपत्नी त्याच्यावर इतकी रागावली कीं हातांत पेटलेला कांकडा घेऊन ती देवजी बुवांना म्हणाली कीं, " अत्तांच्या आत्तां बाळकृष्णाला घरांतून बाहेर घालवून देतां कां मी घर पेटवून देऊं ? " देवजी बुवांचाही नाइलाज झाला व त्यांनीं बाळकृष्णाला आशिर्वाद देऊन जावयास सांगितलें.

पुनः भ्रमण

बाळकृष्णाला ' धार ' सोडतांनां अत्यंत दुःख झालें. घरीं त्रास होता खरा, पण विद्यातर मिळत होती. तो ' धार ' सोडून निघाला तो काशीकडे वळला. वाटेत त्याची एका साधूशीं गांठ पडली. त्यानीं बाळकृष्णाचीं गाणें शिकण्याची तळमळ पाहून त्याला ग्वाल्हेर येथें नेऊन पोचविण्याचें आश्वासन दिलें, व काशीस देवदर्शन झाल्यावर ते त्याला ग्वाल्हेरास घेऊन गेले.

बाळकृष्णानें ग्वाल्हेर येथील सर्व गवई ऐकले व त्यानें ' वासुदेवराव जोशी ' यांच्याचकडे शिकण्याचा निश्चय केला. व तो वासुदेवराव जोशी यांना भेटण्यास गेला व गाणें शिकविण्याची त्यानें त्यांना प्रार्थना केली. जोशीबुवांनी त्याचे गाणें ऐकलें व " तूं कोणाकडे शिकलास " म्हणून प्रश्न केला. बालकृष्णानें देवजीबुवांचे नांव घेतांच ते रागानें लाल झालें, व " जो देवजीबुवाकडे शिकला आहे त्याला मी कधींच शिकविणार नाहीं " असे सांगून त्याला जावयास सांगितलें. बिचाऱ्या बाळकृष्णाला हें काय माहीत कीं जोशीबुवांचें व देवजीबुवांचें संबंध ठीक नाहींत म्हणून ! पुन्हा एकदां त्यानें जोशीबुवांची गांठ घेतली व ' गाणें शिकेन तर तुमचेपाशींच शिकेन ' असा आपला निर्धार त्यानें त्यांना कळविला. जोशीबुवानी उत्तर दिले, "मीं तुला कधींच शिकविणार नाहीं, कसा शिकतोस ते पाहूं" जोशीबुवा इतकेंच करून थांबले नाहींत तर त्यांनीं शेजाऱ्यापाजाऱ्यांनांही सांगितलें कीं ह्या मुलाला आपल्या घरीं येऊं देऊं नका. येथेंही बाळकृष्णाची पूर्ण निराशा झाली व तो पुन्हां काशी (बनारस) येथें गेला.

बाळकृष्णास यावेळीं थोडेफार गातां येतच होते. त्याचे गाण्यावर विजयानगरचे महाराज खूष झाले व त्याला त्यांनीं दरमहा

तीस रुपयांवर आपल्याकडे नोकरी दिली. विजयनगरच्या महाराजांचा काशी येथील मुक्काम लवकरच संपला व ते बाळकृष्णाला आपल्याबरोबर विजयनगरला येण्याविषयीं आग्रह करुं लागले. बाळकृष्णाने उत्तर दिले " मी गाणें शिकण्यासाठीं बाहेर पडलों आहे. तरी इतःक्यातच नोकरीच्या मागें लागणार नाहीं.

विजयानगरचे महाराज काशी सोडून गेल्यावर थोडेच दिवसांनीं बाळकृष्णानें तीर्थयात्रा करण्याचें ठरविलें व तो काशी सोडून निघाला. त्याची ह्या जगांत पूर्ण निराशा झाली होती. व त्याला पाहिजे असलेली संगीत विद्या त्याला कोठेंच मिळत नव्हती. अशा मनःस्थितींत तो गोसावी बनला, त्यानें दाढी वाढविली, अंगाला भस्म लावलें व भ्रमण करुं लागला. वाटेंत त्याला गोसाव्यांची एक टोळी दिसली, त्यांतच तोहि जाऊन मिळाला. ही टोळी बुवाबाजी करणाऱ्या लोकांचीच होती व त्यांत त्याच्या ओळखीचे कांहीं महाराष्ट्रांतील पूर्वीचे सोबतीही आढळून आले. हे गोसाव्यांचे टोळकें गावोंगांवीं फिरत असे. त्यांतील एक गुरू बनले होते बाकीचे शिष्य बनले होतें. हे सर्व भिक्षा मागत फिरत असत. फिरतां फिरतां हे टोळकें ' मोंगीर ' (बिहार प्रांतातील एक गांव) गांवीं आलें व एका झाडाखालीं झोपडी बांधून राहिलें. ह्या टोळक्यांत एक 'वाई' चे गृहस्थ होतें व त्यांना सात वारांची सात लिंगें करावयाचें माहीत होतें. त्यांना सर्वांनीं ' गुरू' बनविलें व बुवाबाजीस आरंभ केला. ' शिवलिंग ' तयार झाल्यावर आरती मोठ्या कडाक्यानें गाजत असे. गावांतील भाविक लोकही जमूं लागले, व शिधासामुग्री खूप जमूं लागली.

एक दिवस एका शिष्याचें व ह्या नकली गुरुमहाराजांचें भांडण जुंपलें. शिष्यानें रागांत गुरुमहाराजांचें हातांतील लिंग घेऊन बाहेर फेंकून दिलें. इकडे आरतीची वेळ झाली म्हणून गावांतील लोक झोपडी भोंवतीं जमले होते, त्यांचे देखत बाहेर जाऊन लिंग उचलून आणणें शक्य नव्हतें. एक साधेंच लिंग तयार करून कशीबशी वेळ त्यांनीं मारून नेली, पण ह्या भांडणामुळें ह्या गोसाव्यांच्या बुवाबाजीचें बिंग मात्र बाहेर फुटलें ! बाळकृष्णानें गोसाव्यांची संगत सोडली व तो मागेंच राहिला.

कडक तपश्चर्या व फलप्राप्ति

मोंगीर जवळच एक देवीचें स्थान होतें, तेथें बाळकृष्णानें कडक व्रतास सुरवात केली. अशा उपासनेनें तरी देवी प्रसन्न होईल व आपली गाणें शिकण्याची इच्छा पूर्ण करील हीच दृढ भावना ह्या अनुष्ठानांत होती. दररोज ध्यान करीत बसावें, बेलपत्रें व बेलफळें खावीं असा क्रम अठ्ठावीस दिवस चालला होता. अंगांत भयंकर अशक्तता आली होती पण देवी प्रसन्न करून घेतल्याशिवाय अनुष्ठान मात्र सोडावयाचें नाहीं, असा पण त्यानें केला होता. ह्या जगांत त्याला कोणीच थारा देत नव्हतें म्हणून त्यानें शेवटीं देवीचे पाय धरले होते. अठ्ठाविसाव्या दिवशीं अशक्ततेमुळें त्याला ग्लानी आली. त्या ग्लानीतच त्याला एक स्वप्न पडलें व देवजीबुवांच्या पत्नीच्या रूपांत देवी येऊन तिनें त्याला विचारलें ' तूं कां उपास करीत आहेस ? ' बाळकृष्णानें उत्तर दिलें " आपण मला शिकूं दिलें नाहीं, घरांत राहूंहि दिलें नाहीं; म्हणून मी जोशीबुवांकडे गेलों; पण त्यानींहि शिकविण्याचें नाकारलें. ज्या विद्येची मला इतकी आवड ती तर मला कोठें मिळत नाहीं, तर अशा स्थितींत जगून तरी काय करावयाचें आहे ? तेव्हां असाच उपवास करून देवीच्या चरणी देह ठेवावा म्हणून ही उपवासास सुरवात केली आहे. " हें ऐकून गुरुपत्नीच्या रूपानें आलेल्या देवीनें आशिर्वाद दिला. " तूं काशीस जा, तेथें तुला जोशीबुवा भेटतील व ते तुला शिकवतील. "

बाळकृष्ण ग्लानींतून थोडा शुद्धीवर आला, त्याला हुशारी वाटूं लागली, व ह्या देवीच्या दर्शनामुळें अंगांत थोडें बळहि आल्यासारखें त्याला वाटूं लागलें. त्यानें पुन्हां मनापासून प्रार्थना केली. दोन चार दिवस गांवांत भीक मागून जमलेल्या धान्यांतून त्यानें देवीला प्रसादहि केला, व तो सरळ काशीकडे जाण्यास निघाला. थोड्याच अंतरावर त्याला एक अपरिचित गृहस्थ भेटला. त्यानें बाळकृष्णाची विचारपूस करून त्याला कपडे व रोख पांच रुपये दिले. बाळकृष्णाला ह्या गोष्टीचें आश्चर्य वाटलें पण देवीच्या आशिर्वादामुळें आपले ग्रहहि पालटूं लागलें अशी त्याची खात्री झाली. तो काशीस पोंचल्यावर त्याला समजलें कीं दोन दिवसापूर्वीच जोशीबुवा काशींत आले असून आंग्रेयांच्या वाड्यांत उतरले आहेत. बाळकृष्ण दुपारी साडेतीन वाजतां तेथें जाऊन हजर झाला. जोशीबुवा नुक्तेच उठून ' बुटी ' तयार करण्याचे विचारांत होते. त्यांनीं बाळकृष्णाची विचारपूस करून त्यासा बुटी तयार करण्यास सांगितलें. बाळकृष्णानें भांगेची गोळी बरोबर आणलीच होती. बुवासाहेब खूष झाले व म्हणाले " मागें झालें ते झालें, पण आतां मात्र मी तुला गाणें शिकविणार आहे. " त्यानीं तंबोरी काढून जुळविली व मुहूर्त म्हणून लागलीच त्याला त्यांनीं एक

रामाचें पद शिकविलें. बाळकृष्णालाही अत्यंत आनंद झाला व तो गुरूंच्या सानिध्यांत राहून तत्परतेनें गुरुसेवा करूं लागला पंधरा दिवस जोशीबुवा काशींत राहिले व ग्वाल्हेरास जाण्यास निघाले. जातांना बाळकृष्णाला बरोबरच घेऊन जाण्याचा त्यांचा विचार होता. पण दोघांच्या भाड्याला पुरतील एवढे पैसे त्यांचेकडें नव्हते, व त्यामुळें ते थोडे विवचनेंत दिसले. बाळकृष्णानें त्यांना सांगितले कीं, " आपण पुढें जा थोड्याच दिवसांत मी आपल्याकडे येतों " जोशीबुवा निघतांना म्हणाले " तूं लवकर ये व विद्या शिकवितो म्हणून तुला दिलेल्या वचनांतून मला लवकर मोकळा कर "

बाळकृष्णानें गावांत गाणीं करून जरूरी पुरतें पैसे मिळविले व तो ग्वाल्हेरास जाऊन पोंचला. गुरुजींची सेवा उत्तम करून त्यांची मर्जी तो प्रसन्न राखांत असल्यामुळें जोशीबुवा बाळकृष्णावर खूष झालेच होते. ते त्याला मनापासून शिकवूं लागले. ते त्याला सकाळीं ३।४ तास तालीम देऊन मग स्नानास उठत असत. नवीन आलेल्या विद्यार्थ्यांनां बाळकृष्ण तालीम देऊं लागला, व त्यांतच त्याचाहि अभ्यास होऊं लागला. सकाळची तालीम झाल्यावर तो स्नान करून माधुकरी मागण्यास जाई असा शिक्षणाचा क्रम अव्याहत सहावर्षे चालला होता.

संगीतप्रेमी श्रीमंत जयाजीराव महाराज

ग्वाल्हेरचे राजेसाहेब श्रीमंत जयाजीराव महाराज हे संगीत कलेचे मोठे चाहते होते, व म्हणूनच ग्वाल्हेर म्हणजे संगीताचें माहेरघर अशी त्यांच्या राजधानीची प्रसिद्धी सर्व हिंदुस्थानभर पसरली होती ! एक दिवस श्रीमंतांच्या एका घरीं मोठी मेजवानी होती. बाळकृष्णास ही गोष्ट माहीत नसल्यामुळें तो नित्याप्रमाणें त्या घरीं माधुकरीस गेला. तो माधुकरी मागून जिन्यापर्यंत जाण्यास व जिन्यावरून श्रीमंत जयाजीराव उतरण्यास एकच गांठ पडली. महाराजानां वाटलें कीं, बिचाऱ्या माधुकरी ब्राह्मणास, आपला स्पर्श झाला असावा त्यांनीं विचारलें, " भटजी मी तुम्हांला शिवलों तर नाहींना ? " बाळकृष्णाला कांहीं स्पर्श झाला नव्हता, पण महाराजांनीं त्याला सांगितलें कीं, ' येथेंच जेवण करून जा. ' बाळकृष्णानें उत्तर दिलें कीं, " माझी माधुकरीची भरती झाली आहे. तरी मी जेवत नाहीं " महाराजांनीं सांगितलें, तुमची माधुकरी आम्हास वाढा व तुम्हींहि येथेंच जेवण करा. " बाळकृष्णाचा नाइलाज झाला. माधुकरी थोडी थोडी सर्वांच्या पानांवर वाढली. पण आपलें पान वगळलें आहे हें पाहतांच महाराजांनीं आपल्याहि पानावर माधुकरी वाढण्यास सांगितलें, व जेवण सुरू झालें ! बाळकृष्णानें एक श्लोक म्हटला व तो ऐकून महाराज खूष झालें. गाणें शिकण्यासाठीं हा मुलगा घरदार सोडून इतक्या लांब आलेला पाहून महाराजांना त्याचें कौतुक वाटलें " तुमची हद्दुखांकडे शिकण्याची सोय करूं कां ? ह्या त्यांच्या प्रश्नास बाळकृष्णानें उत्तर दिलें " माझें शिक्षण जोशीबुवांच्याकडे उत्तम चाललें आहे. मला त्यांची सर्व विद्या मिळाल्यानंतर मी हद्दुखांकडे शिकेन " ह्या प्रसंगानंतर जयाजीराव महाराज बाळकृष्णाची नेहमीं विचारपूस करूं लागले !

महंमदखां यांच्या साथीचा योग

आतां बाळकृष्ण उत्तम तयार झाला होता. पूर्वींच ग्वाल्हेरमध्यें हस्सुखांचे एक अंध शिष्य बाळकृष्णबुवा होते, तेव्हां ग्वाल्हेरमध्यें ते थोरले बाळकृष्णबुवा व आपला बाळकृष्ण छोटे बाळकृष्णबुवा ह्या नांवानें हे दोन बाळकृष्णबुवा ओळखले जाऊं लागले.

हद्दुखां ह्यांच्या दुसऱ्या पत्नीपासून झालेल्या एका मुलीचें लग्न प्रसिद्ध बीनकार बंदेअली यांच्याबरोबर व्हावयाचें होतें. दोन्हीहि घराणी गायकांचीच असल्यामुळें कित्येक गुणीलोक ग्वाल्हेरमध्यें जमा झाले होते. लग्नसमारंभ आठ दिवसपर्यंत चालला होता. दररोज रात्रीं गाणीं बजावणीं झडत असत. एक दिवस ' महंमदखां ' (कुरुंदवाड येथें असलेले रहिमतखां यांचे वडील बंधु) ह्या हद्दूखां यांच्या वडील मुलाचें गायन झालें. तंबोऱ्यावर एका बाजूस विष्णुपंत छत्रे व दुसऱ्या बाजूस छोटे बाळकृष्णबुवा होते. गाणें बहारीचें झालें व बाळकृष्णबुवानींहि साथ फारच उत्तम केली. महंमदखां बाळकृष्णबुवावर खूष होऊन म्हणाले, " एक आमचा शिष्य व दुसरा आमचा नातु आहे. " गावांतील इतर लोकांस ही प्रशंसा खपली नाहीं. त्यांनी महंमद खां यांना प्रश्न केला कीं, ' तुमचा नातु स्वतंत्र गाऊं शकतो कां ? ' महंमदखां यानीं ' होय ' म्हणून उत्तर दिलें. व बाळकृष्णाची स्वतंत्र मैफल ठरली. या मैफलींत बाळकृष्णबुवांचें गायन इतकें चांगलें झालें कीं, महंमदखां त्यांच्यावर वहाल खूष झाले. जोशीबुवांना ही हकीगत समजल्यावर त्यांनाहि आनंद झाला. अशा तऱ्हेनें बाळकृष्णबुवांची सर्वत्र वाहवा होऊं लागली. बाळकृष्णबुवा

जोशीबुवांची गायकी इतकी हुबेहूब गात असत कीं, कित्येक वेळां ते गात असतांना जोशीबुवाच गात आहेत कीं काय, असें लोकांना वाटे. पुढें कांहीं महिने गेल्यानंतर एके दिवशीं बाळकृष्णबुवांना जोशीबुवानीं सांगितलें, " आतां तूं दक्षिणेंत जा व लग्न करून पुढील शिक्षणासाठीं परत ग्वाल्हेरास ये. " गुरुआज्ञेप्रमाणें बाळकृष्ण-बुवा दक्षिणेस येण्यासाठीं निघाले.

महंदमअलीखां साहेबांची तालीम

बाळकृष्णबुवा ग्वाल्हेर सोडून निघाले तें ' धौलपूर ' मार्गानें मुंबईस येऊन पोंचले तेथे त्यानी ऐकलें कीं, विद्याराम भाईचे वाडींत ' महंमद खां ' यांचा जलसा होणार आहे. बाळकृष्णबुवा तेथें जलसा ऐकण्यासाठीं जाऊन एका कोपऱ्यांत बसले. त्यादिवशीं खां साहेबांस त्यांच्या सोबत्यांनीं खूप दारू पाजली होती व त्यांची शुद्धी जवळ जवळ नाहींशी झाली होती. ते गावयास बसले पण गातां येईना. शेवटीं खां साहेबांचें गाणें होत नाहीं म्हणून कोणा सामान्य गायकास गावयास बसविण्याचे बेत होऊं लागले. बाळकृष्ण-बुवा हे सर्व पाहत होते.

महंमदखांसारख्या गुणी माणसानंतर कोणींहि बसून गावें ही गोष्ट त्यांना खपली नाहीं. ते उठून उभे राहिले; व जमलेल्या श्रोतृगणास म्हणाले, " आज खांसाहेबांची तब्येत ठीक नाहीं, ते गाण्याच्या स्थितींत नाहींत हें आपण पाहीलेंच आहे, तरी आजचा जलसा बंद ठेवा. महंमद खां सारख्या गायका-नंतर कोणत्याही हलक्या सलक्या गवयानें गावें ही गोष्ट बरी नाहीं. " श्रोतृ समाजांतील, कांहीं लोक रागावले व म्हणाले कीं, तुम्हीं कांहीं गाऊं शकतां कां ? त्यावर बाळकृष्णबुवानीं उत्तर दिलें, ' मीहि हद्दु हस्सूखांच्या घराण्यांतीलच एक शागीर्द आहे व अशा तऱ्हेनें आमच्या घराण्याचा होत असलेला अपमान पाहून मला बरें वाटत नाहीं. " त्यावर त्यांना श्रोतृसमाजाकडून अशी सूचना करण्यांत आली, कीं तुम्हांला जर आपल्या घराण्याचा एवढा अभिमान असेल तर तुम्हींच गावयास बसा. बाळकृष्णबुवा लागलीच तयार झाले व बैठकीवर जाऊन बसले. महंमदखांनां नमस्कार करून त्यानीं गाण्यास सुरवात केली. ऐन तारुण्याच्या जोमांत असल्यामुळें ते तीन तासपर्यंत अशा तयारीनें गायले की, प्रत्येक तानेस त्यांना वाहवा मिळूं लागली. व अशा रीतीनें त्या दिवशी त्यांनीं आपल्या गुरुघराण्याची अब्रू राखली. दुसरे दिवशीं ते खांसाहेबांस भेटावयास गेले. महंमद खां त्यांच्यावर फार खूष झाले होते. बाळकृष्णबुवानीं आपण कोण याची ओळख खां–साहेबांस पटविल्यानंतर खां साहेबानीं त्यांस आपल्याबरोबर फिर-तीस येण्याविषयीं सांगितलें. बाळकृष्णबुवानीं ही गोष्ट आनंदानें मान्य केली व वासुदेवराव जोशींना पत्र लिहून ही गोष्ट त्यांच्या कानांवर घालण्यास सांगितलें. जोशीबुवानींहि उदारपणें लागलीच परवानगी दिली.

याप्रमाणें ते महंमदखांबरोबर फिरतीस निघाले व फिरत फिरत बडोद्यास पोहोंचले. खां साहेबांबरोबर असतां, बाळकृष्ण–बुवांचा कार्यक्रम असा होता. ते भाऊमहाराज शिरगांवकर यांचे-कडे राहत असत, व रोज त्यांना दोन प्रहरीं गाण्याची तालीम देत असत. पहाटे लौकर उठून स्नानसंध्या आटोपून खांसाहेबांच्या घरीं जाऊन मेहनत सुरू करीत. बाळकृष्णबुवांचें गाणें सुरू झाल्या-नंतर महंमद खां निजून उठत व गाण्यास येऊन बसत असत. अशा तऱ्हेनें हें गाणें ११ वाजेपर्यंत चालत असे. पुन्हां सायंकाळीं सहा वाजतां जें गाणें सुरूं होई, तें १०–११ वाजेपर्यंत चालत असे. असा कार्यक्रम १ वर्षपर्यंत चालू होता. व या काळांतच आपली चांगली मेहनत होऊन आवाज खूप तयार झाला असें बाळकृष्णबुवा म्हणत असत. महंमदखांचें जलसेहि पुष्कळ होत असत. प्रत्येक वेळीं बाळकृष्णबुवा त्यांची साथही चांगली करीत असत. पुढें पुढें खां साहेबांभोंवती व्यसनी लोक जमूं लागले; व खां साहेबही अधिक अधिक त्यांचे आहारीं जाऊं लागले. बाळकृष्णबुवा-बद्दल जवळच्या लोकांना वैष्यम्य वाटूं लागले. व पुढें परिस्थिति ठीक नाहीं हें ओळखून महंमदखांची परवानगी घेऊन ते पुण्याकडे वळले. पुण्यांत पांचसहा महिनें राहिले, या काळांत तेथें त्यांचीं गाणींही पुष्कळ झालीं. तेथून ते भोर मार्गानें साताऱ्यास आले. सातारचे महाराज त्यांचें गाणें ऐकून इतके खूष झाले, कीं त्यांनीं बाळकृष्णबुवांना नोकरी देऊन आपलेकडेच ठेऊन घेतलें.

विवाह

बाळकृष्णबुवांचा दक्षिणेंत येण्याचा मुख्य हेतु गुरु आज्ञेप्रमाणें लग्न करून पुढील शिक्षणासाठीं परत ग्वाल्हेरास जाणें हा होता. परंतु साताऱ्यास एक वर्ष राहिले तरी त्यांचें लग्नच जमेना. हैद्राबाद येथील बळवंतराव निढळकर नांवाचे एक गवयी "निढळ" या आपल्या मूळ गांवीं कांहीं कारणानें आले होते. बाळकृष्णबुवांची कीर्ती ऐकून ते त्यांचें गाणें ऐकण्यासाठीं साताऱ्यास गेले. दोघांनीं एकमेकांना गाणीं ऐकविलीं, व दोघेही खूष झाले. बाळकृष्णबुवांचें लग्न व्हावयाचें आहे हें ऐकताच आपली बहीण करून घेण्या-

बद्दल निढळकरांनीं त्यांना आग्रह केला, व सातारा येथेंच बाळकृष्ण बुवांच्या २८ साव्या वर्षी हें लग्न मोठ्या थाटामाटानें झालें. लग्नानंतर एक वर्ष बुवा सातार्‍यासच राहिले.

बुवासाहेबांचे गुरूजी हे आपल्या अलीबाग तालुक्यांतील नांगांव या आपल्या मूळ गांवीं आले होते. तेथून ते सातार्‍यास गेले. यावेळीं जोशीबुवांना ५००० रुपये कर्ज झालें होतें, व तें फेडण्यासाठीं ते फिरतीवर जाणार होतें. सातारच्या महाराज-साहेबांची परवानगी मिळवून बाळकृष्णबुवाहि त्यांचेबरोबर फिरतास निघाले. दक्षिण महाराष्ट्रांतील-कर्‍हाड, कुरुंदवाड, इचलकरंजी, कोल्हापूर, मिरज, सांगली, फलटण वगैरे गांवांत जोशीबुवांना चांगला मान मिळून अडीचहजार रुपये जमा झाले. जोशीबुवांच्या साथीस त्यांचे पुत्र भैय्यासाहेब व शिष्य बाळकृष्णबुवा असल्यामुळें त्यांचीं गाणींहि प्रत्येक ठिकाणीं रंगत असत. यानंतर धार, इंदोर-वरून ही मंडळी परत ग्वाल्हेरास पोहोंचली. ग्वाल्हेरास दहा बारा दिवस राहून पुन्हां निघाले ते सरळ कलकत्त्यास पोंचले. कलकत्ता येथें त्यांना फार मोठा मान मिळाला. कलकत्त्याहून वाटेंत दरभंगा, गिधोर, व बिटाया या मार्गानें ते नेपाळमध्यें पोंचले. नेपाळ येथें जोशीबुवा, त्यांचे पुत्र भैय्यासाहेब, व शिष्य बाळकृष्णबुवा यांच्या प्रामाणिकपणाची व शीलाची परिक्षा पहिल्यानंतर त्यांचीं गाणीं होऊं लागली. नेपाळांत जोशीबुवांचा मुक्काम तीन चार महिने पडला, पण त्यांना तेथील थंड हवा सोसेना म्हणून ते परत ग्वाल्हेर येथें आले. ग्वाल्हेरला पोंचल्यानंतर जोशीबुवानां अतिसाराचा विकार झाला व ते अंथरुणांस खिळून पडले. अतिसाराचा विकार असल्या-मुळें वरचेवर जोशीबुवांचीं वस्त्रें घाण होत असत, व बाळकृष्णबुवा तितक्याच वेळां तीं धुवून वाळवून आणीत असत. घरांतील मंडळी या आजारास कंटाळलीं पण बाळकृष्णबुवांनीं मात्र गुरूसेवेंत यत्-किंचितही कसूर केली नाहीं. सहा महिन्यांच्या दीर्घ आजारानंतर जोशीबुवा मरण पावले. मरतेसमयीं बाळकृष्णबुवांनां जवळ बोलावून मनापासून आशिर्वाद दिला कीं, 'तुझ्या गाण्याचा कधींही बेरंग होणार नाहीं.

जोशीबुवांच्या मृत्युनंतर बाळकृष्णबुवा मुंबईस आले. नेपाळां-तील थंड हवेमुळें त्यांना यावेळीं दम्याचा विकार जडला होता. मुंबईस बाळकृष्णबुवांनीं एक गायन शाळा सुरू केली होती. त्यांच्या गायन शाळेंत कै. डॉक्टर भांडारकर, महादेव चिंतामण आपटे, रा. रा. कुंटे व न्यायमूर्ती तेलंग यासारखी बडी बडी मंडळी गायन शिकण्यास येत असत. मुंबईकर बाळकृष्ण बुवांच्या गाण्या-वर खूष झालें होते. व त्यामुळें त्यावेळच्या मोठ्या मोठ्या लोकांत त्यानां मान मिळत असे. याच काळांत प्रसिद्ध सतारवादनकार कै. विश्वनाथ रामचंद्र काळे यांच्या साह्यानें, 'संगीतदर्पण' नांवाचें पूर्णपणें संगीतास वाहिलेलें एक मासिक सुरू केलें या मासिकांत सतार वादन व गायन या विषयीं बरीच माहिती येत असे. बाळ-कृष्णबुवा मुंबईंत असेंपर्यंत तें मासिक चांगल्या तर्‍हेनें चाललें होतें. मुंबईंत त्यांचा दमा वाढूं लागला. व मोठ्यामोठ्या डॉक्टरांच्या औषधानें देखील गुण येईना. म्हणून त्यांना मुंबई सोडून पुण्यास यावें लागलें. पुण्यांतही दम्यानें जोर धरल्यामुळें ते सातारा महाराजांकडे जाऊन नोकर राहिले.

त्यावेळीं, दाक्षिण महाराष्ट्रांतील संस्थानांत मोठे मोठे उत्सव होत असत व बरेच गवयी जमत असत. या सर्व गवयांवर बाळ-कृष्णबुवांच्या तयारीनें इतका प्रभाव केला, कीं, ते त्यांना तान-बहादुर म्हणूं लागले. अशाच एका उत्सवाचे प्रसंगीं बाळकृष्णबुवा औंध येथें गेले असतां, तेथील राजेसाहेब त्यांच्यावर इतके खूष झाले कीं, त्यानीं आग्रहानें त्यांना तेथेंच ठेऊन घेतलें. तेथें त्यांना पगार २५ रुपये व सर्व कच्चा खर्च मिळत असे. औंध येथें त्यांचा दमा फारच वाढला, व शेवटीं त्यांना जिना चढणेंही मोठ्या त्रासाचें होऊं लागलें.

मिरजचे अधिपती कै० बाळासाहेब पटवर्धन यांचेकडे कोणा एका पहिलवानानें दम्यावर दिलेले औषध होतें. बाळकृष्णबुवा-सारखा नामांकित, गुणी, व तय्यार गवई निव्वळ दम्यानें निकामी होणार ! म्हणुन कुरंदवाड येथील, रामभाऊ छत्रे यांना अत्यंत वाईट वाटलें. त्यांची व श्रीमंत बाळासाहेब पटवर्धन यांची फार ओळख होती. रामभाऊ छत्रे यांच्या आग्रहामुळें बाळासाहेबांनीं बाळकृष्णबुवांना औषध देण्याचें कबूल केलें त्याप्रमाणें बाळकृष्ण-बुवांना मिरज येथे आणण्यांत आलें. यावेळीं बाळकृष्णबुवांचा दमा इतका वाढला होता कीं, चालतां चालतां दम घेण्यासाठीं त्यांना बसावें लागे. बाळासाहेबांनीं बाळकृष्णबुवांची जेवण्याची व राहण्याची सोय राजवाड्यांतच केली होती. औषधाचें पहिलें सप्तक घेतांच, त्यांना बराच गुण आला. तें औषध घेत असतांना, अति कडक पथ्यानें वागावें लागे. पहिलें सप्तक झाल्यानंतर एक महिन्यानें दुसरे सप्तक औषध देण्यांतआलें. पुन्हां दोन महिन्यांनीं त्यांनी आणखी दोन सप्तकें घेतलीं. यानंतर बाळकृष्णबुवांचा दमा पार

नाहींसा होवून ते थोडी थोडी गाण्याची मेहनतही करूं लागले आणि दोन तीन महिन्यांत त्यांची प्रकृति अगदीं निकोप झाली, व त्यांचा आवाज पूर्ववत काम देवूं लागला. मिरजेची हवा त्यांना पसंत पडल्यामुळें तेथेंच राहण्याची आपली इच्छा त्यांनीं बाळा–साहेबांना दर्शविली, व बाळासाहेबानींहि लागलीच त्यांची दरबार गवई म्हणून नेमणूक केली.

मिरज येथील वास्तव्य व शिष्यशाखेस प्रारंभ

मिरज येथें वास्तव्य केल्यानंतर बाळकृष्णबुवांकडे शिष्य–गणहि जमूं लागला. औंध येथील गुंडोबुवा औंधकर व कै० पंडित विष्णु दिगंबर पलुस्कर हे बुवासाहेबांचे पहिले शिष्य होत. ह्या नंतर आणि बरेच शिष्य हळू हळू जमा झाले, पहिल्या शिष्यांपैकीं पं. अनंत मनोहर, कै० निळकंठबुवा (मिरज), पं. वामनबुवा चाफेकर, ही मंडळी विशेष नांवारूपास आली. पं. अनंत मनोहर हल्लीं औंध येथें राहात असून ७० वर्षांच्या वृद्धाव-स्थेंत सुद्धां लोकाग्रहामुळें गेल्या वर्षांपासून मुंबई रेडिओ केंद्रावर गाऊं लागले आहेत. कै. निळकंठबुवा हेहि उत्तम शिक्षक म्हणून प्रसिद्ध होते, व हल्लींच प्रसिद्ध गायक प्रो. मल्लिकार्जुन मन्सूर यांना त्यानींच शिकवून तयार केलें होतें. ह्या शिष्यांव्यतिरिक्त अनेक शिष्य बुवासाहेबांच्याकडे मिरज येथें शिकत असत. पं. अनंत मनोहर सांगतात कीं, आमच्या बरोबर १५–२० विद्यार्थी तालमीस बसत असत. ह्यापैकीं कोणीहि बुवासाहेबांना शिकवि-ण्याबद्दल फी देत नसे. सर्वांनाच घरांतील कामें करावीं लागत. पाणी भरण्यापासून ते थेट स्वैपाकापर्यंतची कामें विद्यार्थ्यांकडूनच करून घेतलीं जात. कै० निळकंठबुवा हे जातीनें जंगम असल्या-मुळें त्यांना घरांत जातां येत नसे, म्हणुन दररोज लागणारें 'शेण' पुरविण्याचें काम त्यांचेकडे असे आणि म्हणून इतर गुरूबंधु त्यांना ' शेणैया ' म्हणत असत, व पुढें तर त्यांचे नांवच ' निळकंठबुवा शेणैया ' पडलें. मिरज येथें कांहीं गाइकाहि बुवासाहेबांच्याकडे शिकत असत, मात्र त्यांना बुवासाहेबांचे घरीं यावें लागे ते गाइ–कांच्या घरीं जात नसत. त्या प्रत्येकीं महिना रु. ३० देत असत पण त्यांनाहि शिक्षणासाठीं इतर विद्यार्थ्यांबरोबरच बसावें लागे. बुवासाहेब सकाळीं ६॥–७ वाजतां तालीम सुरू करीत तीं ९ पर्यंत. सकाळीं १० वा. ते सरकारी वाड्यांत जात व तेथें पं• विष्णु दिगंबर यांना शिकवीत. बुवासाहेबांचें जेवण सरकारी पंक्तीस असे व त्यांचेसाठीं कसदार खाणें (तुपानें ओथंबलेला शिरा वगैरे) मुद्दाम देण्याची व्यवस्था करण्यांत आली होती. थोडावेळ वामकक्षी केल्यानंतर विष्णु दिगंबर त्यांना भांग बनवून देत. ती घेऊन पुन्हां तालीम सुरू होई. ह्या वाड्यांतील तालमीला मात्र विष्णु दिगंबरच एकटे असत. ह्या वेळीं विष्णु दिगंबर व औंधचे गुंडोबुवा ह्या दोघां गुरुबंधूंमध्यें चुरस असे. श्रीमंत बाळासाहेब यांचेमुळें विष्णु दिगंबर यांना खास तालीम मिळे, तर गुंडोबुवा सेवा करून गुरूंना खूष करून त्याच चिजा घरीं शिकून घेत. बुवासाहेबांना शिकविण्याचा कंटाळा नसे, पण हें शिक्षण मात्र त्यांच्या लहरीप्रमाणें चाले !

कै. निळकंठ बुवानीं मला एक गोष्ट सांगितली होती. एकदां मिरजेंत चोऱ्या होऊं लागल्या होत्या, व त्यासाठीं लोक रात्रभर जागून सावध राहूं लागले. बाळकृष्ण बुवानींहि रात्रभर जागें राहा-ण्याचें ठरविलें. ते रात्रीं सरकारी वाड्यावरून १० वाजतां परत घरीं आल्यावर विद्यार्थ्यांना तालीस देऊं लागले. ही तालीम व त्यांचें गाणें पहाटें ४ वाजेपर्यंत चालत असे. असा कार्यक्रम ४ महिने चालला होता. व चार महिन्यांत विद्यार्थ्यांचा फार फायदा झाला. निळकंठबुवा म्हणत असत कीं, " जेव्हां चोऱ्या बंद झाल्या त्यावेळीं आम्हांला फार वाईट वाटलें, आम्हाला वाटे कीं बाराही महिने गांवांत चोऱ्या, दरवडे चालूच राहावें, म्हणजे आमचें शिक्षण तरी उत्तम होईल ! पण गांवांत स्थिरस्थावर झाल्यावर आमची रात्रीची तालीमही बंद झाली. "

मधून मधून बुवासाहेब फिरतीवर जात असत. व त्यावेळीं विष्णु दिगंबर त्यांचे बरोबर असत. मिरज येथें असतानांच बुवा-साहेबांनां पुत्ररत्न झालें, व तेच पुढें अण्णाबुवा या नावानें प्रसिद्ध झालें. पुढें १८९६ साली विष्णु दिगंबर मिरज सोडून उत्तर हिंदु-स्थानांत गेले, व गुंडोबुवा धंद्यासाठीं निघून गेले. इकडे मिरजेंचे राजे-साहेब व बुवासाहेबांचे संबंधही दुरावत चालले होते. इचलकरंजीचे राजेसाहेब श्रीमंत बाबासाहेब घोरपडे हे बाळकृष्णबुवांच्या गाण्या-वर पहिल्यापासूनच खूष असत. ते वरचेवर त्यानां इचलकरंजीस बोलावून त्यांची गाणीं ऐकत असत, व इचलकरंजीसच येऊन राहाण्याबद्दल त्यांचा आग्रह चालूच होता. इकडे मिरज मुक्कामींच बुवासाहेबांची प्रिय पत्नीही वारली व लहान मुलें पोरकी झालीं, त्यामुळें बुवासाहेबांचेंहि मन मिरज येथें रमेनासे झालें. ह्यावेळीं

मात्र इचलकरंजीच्या राजे व राणीसाहेबांच्या आग्रहास मान देऊन बुवासाहेबांनीं मिरज सोडली व इचलकरंजीस ते राहावयास गेले, व अखेरपर्यंत तेथेंच होते.

बुवासाहेबांचें शिक्षण देण्याचें काम अव्याहत चालूच होतें. इचलकरंजीचे राजेसाहेब बुवासाहेबांना फार मान देत असत व वारंवार त्यांचीं गाणीं ऐकत असत. तेथेंहि बुवासाहेबांच्याकडे शिष्य जमा होऊं लागले व त्यांतील विशेष नावांरूपास आलेले, कै. अण्णा बुवा (बुवासाहेबांचे चिरंजीव), पं. मिराशीबुवा, कै. भाटेबुवा, कै. दत्तोपंत काळे हे होत. शेवट शेवटच्या शिष्यवर्गापैकीं प्रो. बाळुबुवा कासार हे इचलकरंजी येथें एक गायन शाळा चालवीत आहेत. या शिवाय मिरज व इचलकरंजी येथें दोनचार वर्षे शिकून गेलेले शिष्य कितीतरी ठिकठिकाणीं भेटतात.

१९२५ पर्यंत बाळकृष्णबुवांचा काल एकंदरींत चांगला गेला. त्यांचे चिरंजीव अण्णाबुवा चांगले तयार झाले होते व त्यानी कोल्हापूर येथें एक संगीत समाज सुरू केला होता. पण सन १९२५ मध्यें अण्णाबुवा एकाएकी आजारी पडले व मृत्यु पावले. ह्या गोष्टीचा बुवासाहेबांवर फार परिणाम झाला व ते खंगत चालले. त्यांनाहि ताप येऊ लागला व १९२६ मध्यें इचलकरंजी मुक्कामीं हा गायनांतील भीष्माचार्य इहलोक सोडून गेला.

त्यांचें ' चरित्र '

इचलकरंजीचे राजे बाबासाहेब ह्यांना पं. बाळकृष्णबुवाबद्दल फार आदर असे. बुवासाहेबांचा बराच वेळ राजे साहेबांचे संगतीत जाई व त्यावेळीं ते आपल्या आठवणी त्यांना सांगत असत. ह्या सर्व आठवणी लिहून बुवासाहेबांचें चरित्र प्रसिद्ध केलें जावें, असें राजेसाहेबांना वाटत असें. राजेसाहेबांच्या आग्रहामुळें बुवासाहेबांनी ' नेपाळ ' पर्यंतची हकीकत आपले शिष्य दत्तोपंत काळे यांना सांगितली व ती त्यानीं लिहून ठेवली. बुवासाहेबांच्या मृत्यु नंतर हें चरित्र लेखनाचें काम तसेंच राहून गेलें. पुढें प्रो. केशवबुवा इंगळे (कै. पं. गुंडोबुवा औधकर यांचे चिरंजीव) हे इचलकरंजी येथें दरबार गवई झाल्यावर, बुवासाहेबांचें चरित्र लिहिण्याचें काम त्यानीं हौसेनें पत्करलें. बुवासाहेबानीं स्वतःच सांगितलेली माहिती' तयार होतीच. त्याशिवाय त्यांनीहि ठिकठिकाणी फिरून बरीच माहिती गोळा केली, व " गायनाचार्य कै. बाळकृष्णबुवा इचलकरंजीकर यांचें चरित्र हें पुस्तक १९३६ मध्यें प्रसिद्ध केलें. ह्या महतकार्याबद्दल संगीत प्रेमी लोक कै. बाबासाहेब घोरपडे (इचलकरंजीचें अधिपती) प्रो. केशवबुवा इंगळे यांचे सदैव ऋणी राहातील.

स्वभाव व गायकी

पूर्वीच्या गायकांच्या रिवाजाप्रमाणें बुवासाहेब ' गलमूछ ' (कल्लेदार मिशा) ठेवीत व त्या अखेरपर्यंत कायम होत्या. डोक्यावर लाल पगडी, अंगांत बंदांचा काळा लांब आंगरखा, धोतर, उपरणें, हातात एक काठी व पायांत जोडा असा त्यांचा पेहराव असे. ते हाडापेरानें सुदृढ असून ऊंचीहि भरपूर असल्यामुळें फारच रुबाबदार दिसत. ते स्वभावानें शांत असल्यामुळें त्याना सहसा राग येत नसे, पण जर कां तो एकदा आला तर मात्र तो त्यांना आवरता येत नसे ! विष्णुपंत छत्रे यांनीं त्याना एकदा असाच राग आणवून त्यांच्या गाण्याचा बेरंग केला होता. अमकेच पैसे द्याल तर मी गाईन अशी अट त्यानीं कधींच घातली नाहीं, उलट कोल्हापूर येथील देवल क्लब या संस्थेनें त्यांना त्यांच्या एकाच खेपेतील तीन गाण्यांची बिदागी रु. ६० पाठविली तेव्हां ते म्हणाले " देवल क्लब सारख्या संस्थेनें इतके पैसे पाठविण्याचे काय कारण होते ? " देवापुढील बिदागी नसलेलें गाणे असो, गरीबाकडील थोड्या बिदागीतील गाणें असो अगर राजवाड्यांतील भरपूर बिदागीचें गाणें असो, त्यांनीं आपल्या गाण्यांत कधीं अंगचोरपणा केला नाहीं. सर्व ठिकाणीं सारखेंच मन लाऊन एकाग्रतेनें ते गात असत. त्याना लिहिण्याचा अत्यंत कंटाळा असे, व कशीबशी मोठीं मोठीं अक्षरें काढून सही केली म्हणजे एकदाचें आपण सुटलें असें त्याना वाटे. ते भोळे व प्रामाणिक होतें. बिदागीचे मिळालेले पैसेही ते मोजीत नसत. एकदां त्यांना सांगलीच्या उत्सवांत चांदीच्या रुपयांत मिळालेली बिदागी मोजण्याची लहर आली. त्यांनीं दोनदा मोजण्याचा प्रयत्न केला. एकदां रुपये ५० पेक्षां जास्ती झाले तर एकदा कमी झाले, तेव्हां त्यानीं तो नाद सोडून आपल्या विद्यार्थ्याला सांगितलें " हे रुपये मोजून घे, ते जास्त असतील तर परत कर व कमी असतील तर मागून घे." दुपारी ते नियमितपणें कांहीं वाचन करीत. भक्त चरित्रें व तुळशीदास रामायण हे त्यांचे आवडते ग्रंथ होते. कधीं कधीं दोनतीन वर्षा मागील एकादें वर्तमान पत्र त्यांच्या पोथींत बांधून ठेवलेले असे व तेंच ते नेहमीं वाचीत असत. जुने वर्तमानपत्र कां वाचतां म्हणून कोणीं विचारल्यास ते उत्तर देत " रोज थोडें मराठी वाचावयाचें ह्या माझ्या नियमाला एकादें जुनें वर्तमानपत्रही पुरें होतें, मला गवयाला काय करावयाचें आहे तुमचे ताजें राजकारण घेऊन ?

मरहूम खांसाहेब अल्लादिखां, खांसाहेब अबदुल करीमखां, गायनाचार्य कै. पं. भास्करबुवा बखले, व कै. पं. रामकृष्णबुवा वझे हे सर्व

गुणी लोक बुवासाहेबांना फार मान देत असत, व सभेमध्यें ते आले म्हणजे ही सर्व मंडळी उठून उभी राहात. मरहूम खां साहेब रहिमत खां यांनाहि बाळकृष्णबुवांचें गाणें आवडत असें. या विषयीं पुण्याचें प्रो. ग. ह. रानडे यांनी मला एक पाहिलेली गोष्ट सांगितली आहे. एकादा काशिनाथपंत छत्रे आपल्या सर्कशीसह सांगलीस गेले, व बरोबर खां साहेब रहिमत खां होतेच. आबासाहेब सांबारे यांचेकडे त्यांची गाणी करण्याचें ठरलें व त्यांच्या साथीसाठीं बुवासाहेब व त्यांचे चिरंजीव अण्णाबुवा यांना मुद्दाम इचलकरंजीहून बोलावण्यांत आलें. तीनचार दिवस रोज गाणी होत होती पण आपली साथ कोण करीत आहे याची खांसाहेबांना दादहि नव्हती. पाचवे दिवशी खांसाहेब बाळकृष्ण बुवांकडे मान वळवून त्यांनाच विचारूं लागले, "अजि वो बालकिसन कहां है? मेरा भाई मंहमद खांकी गायकी वो कितनी अच्छी गाता हैं, इनको एक दफे बुला लो. खां बाळकृष्णबुवांनीं सांगितलें, 'मींच तो बाळकृष्ण खांसाहेब म्हणाले, "मुझे माफ करो, बालकिसन मैंने तुमको पहेचानाही नही. अच्छा आज तुम गाओ और मुझे मेरा भाई मंहमदखांकी याद दिलाओ." त्या दिवशीं बालकृष्णबुवाच गायले व खांसाहेबांनी ते गाणे ऐकून डोळयांतून अश्रू ढाळले!

बाळकृष्णबुवांची गायकी अस्सल ग्वाल्हेरची होती, ग्वाल्हेरची म्हणजे हद्दु हस्सुखां यांच्या वेळच्या ग्वाल्हेरची. हस्सुखां यांचे तीन ब्राह्मण शिष्य (१) अंध किंवा मोठे बाळकृष्णबुवा (२) वासुदेवराव जोशी व (३) बाबा दीक्षित, हे फार नामांकित गवई होऊन गेले. वासुदेवराव जोशी अथवा जोशी बुवा यांची प्रसिद्धी त्यांच्या जवळील अस्ताई अंत्र्यांसाठीं विशेष होती व त्यांच्या जवळ चिजांचा भरणाहि फार मोठा होता. त्यांचे चिरंजीव भय्यासाहेब हे शेवटीं शेवटी मिरज सांगलीकडेच राहिले होते व मी त्यांना लहानपणीं पाहिलेहि होते त्यांनीं एकेक रागाच्या ३०–४० चिजा गायलेल्या पुष्कळ लोकांनी ऐकिलेल्या आहेत. हस्सूखां कडील गायकी बाळकृष्ण बुवांना जोशीबुवांकडून मिळालीच होती व बडेमहंमदखांकडून त्यांना मिळालेली तालीमहि त्यांना विशेष फलदायी झाली.

घराण्यांतलि परंपरेप्रमाणें प्रत्येक चिजेची दोनदां अस्ताई व एकदां 'अंतरा भरल्याशिवाय ते गायकीस सुरवात करीत नसत. त्यांच्या गायकींतहि एक विशिष्ट शिस्त असे. मध्य षडजापासून तार सप्तकांतील मध्यम पंचमापर्यंत एकेक स्वर घेऊन आलाप करणें नंतर अंतरा पुन्हा सुरू करून अंतऱ्याचे आलाप करणें, स्वायीवरील बोल–अंग व शेवटीं तानबाजी असा त्यांच्या गायकीचा क्रम होता. मोठा ख्याल संपल्यावर त्याच रागांतील एक जलद चीज व शेवटीं एक तराणा गाऊन तो राग ते संपवीत असत. त्यांच्या मोठ्या ख्यालाची लयहि ग्वाल्हेर पद्धतीप्रमाणें जरा जलदच असे. उजव्या हातानें स्वतःच डग्गा वाजवून तासां-तास ते मेहनत करीत. केव्हांहि वेळ मिळाला कीं त्यांचे चिजांचे मनन सुरू होई. असेच एकदां 'गांधर्व महाविद्यालयां'च्या तिसऱ्या मजल्यावर आम्हीं उभें असतां खालीं बुवासाहेब पगडी घालून उभे होते, व वेडीवांकडी पगडी मधून मधून हालतांना वरून पाहून आम्हांला हसू कोसळलें. तेव्हां गुरुजी आमच्याजवळच उभे होते याची आम्हांला दादहि नव्हती. थोड्या वेळानें गुरुजी आम्हांला म्हणाले, 'पोरांनों, तुम्हीं वामट आहांत; बुवासाहेब चिजांचें चिंतन करीत आहेत व त्यामुळें तालांतील समे खाली प्रमाणे व चिजेतील स्वरांप्रमाणें त्यांची मान हालत आहे. नुसती मान व पगडी हलवायला बुवासाहेब कांहीं वेडे नाहींत.

त्यांची गायकी साधी व निर्मळ असे. त्यांच्या त्या साधेपणांत विलक्षण सौंदर्य भरलेलें असे. त्यांच्या गायकींत उच्छृंखलपणा नसून त्यांत दरबारी गांभीर्य असे. त्यांच्या गायकींत श्रद्धालु भाविकपणा होता व डोंगरी किल्याचा साधेपणा व मजबूतपणा होता. त्यांची गायकी म्हणजे कलाकुसरीनें नटविलेलें दक्षिण हिंदुस्थानांतील देवालय नव्हतें. ते तालांत कच्चे होते असा आरोप त्यांचेवर त्यांचे प्रतिस्पर्धी ध्रुपदिये करीत असत. मृदंगविशारद बळवंतराव वैद्य हे गांजाच्या भरांत बाळकृष्णबुवांचा अस्त उपहास प्रामुख्यानें करीत, परंतु या बळवंतरावांनीं मिरज येथें खुद्द आपले गुरूजी नानासाहेब पानसे यांनाच "जरा लयके तरफ देखो" म्हणून घमेंडींत सांगितलें होतें व नानासाहेबांनीं तेथेंच त्यांना "अरे मींच तुला लय शिकविली आहे रे" म्हणुन दाबलें होतें होतें, ही गोष्ट ध्यानांत घेतली म्हणजे त्यांच्या विधानाला कितपत किंमत द्यावी हें वाचकांच्या ध्यानांत येईल. ख्याल गायनाला अवश्य इतका लयकारीचा पक्केपणा बुवासाहेबांमध्यें होता ही गोष्ट अनेकवेळां त्यांचें गायन ऐकलेल्या मार्मिक श्रोत्यांनीं मला सांगितली आहे.

बुवासाहेबांची चिज भरण्याची तऱ्हा वाखाणण्याजोगी असे व त्यांनीं गायलेला कोणताहि मोठा ख्याल कितीहि वेळां ऐकला तरी त्यांतील स्वरांच्या योजनेंत व ताल विभागांत यत्किंचितहिं फरक दिसून येत नसे ! ही त्यांची कडक शिस्त ज्या दुसऱ्या गवयांना साधत नसे ते त्यांच्या चिजांना ' छापील चिजा ' असें कुत्सितपणें म्हणत असत. आपल्या एकुलत्या एक व आवडत्या चिरंजीवांच्या मृत्यूनंतर ते विशेष दुःखी दिसत. मुलगा मेल्याचें दुःख तर खरेंच, पण त्याला शिकवलेली आपली सर्व विद्या त्याचेबरोबर या जगांतून नाहीशी झाली याचेंच त्यांना विशेष दुःख होत असे. मुलाच्या मृत्यूनंतर आपला नातू चि. राम याला त्यांनी त्याच्या आठव्या वर्षीच गायन शिकविण्यास सुरवात केली होती. शिकवितांना ते त्याला समोर बसवीत व त्याचेकडे पाहून त्यांच्या डोळ्यांच्या अश्रु वाहत असत ! ते हात जोडून ईश्वराला प्रार्थना करीत कीं, ' मला आणखीं १० वर्षे तरी आयुष्य दे म्हणजे माझ्या या नातवाला माझी सर्व विद्या मला देतां येईल व आपण कष्टानें मिळवलेली विद्या या जगांत राहील. सगळेच शिष्य आपापल्या मार्गाला लागल्यामुळें जवळ शिल्लक राहिलेली विद्या शिकण्यास आपल्याकडे कोणीच येत नाहीं म्हणून त्यांना फार वाईट वाटे.

महाराष्ट्रांत अस्सल हिंदुस्थानी गाण्याचा फैलाव करण्याचें श्रेय बाळकृष्णबुवांनाच द्यावें लगेल. स्वत: कष्टानें मिळविलेली विद्या त्यांनीं शिष्यांना मुक्त हस्तानें देऊन मोठी शिष्यपरंपरा तयार केली. त्यांच्याच पं. विष्णु दिगंबरसारख्या पराक्रमी शिष्यानें अनेकवेळां हिंदुस्थानभर प्रवास करून हें संगीत विद्येचें लोण समाजाचा सर्व थरापर्यंत नेऊन पोहोंचाविलें व जागोजागीं गायन विद्यालयें स्थापन केली. गायनांतील 'भीष्माचार्य,' ' गायनाचार्य 'वगैरे पदव्यांचा वर्षाव जनतेनें स्वयंस्फूर्तीनें या थोर कलाकारावर केला याहून त्यांच्या तपश्चर्येचें व यशाचें निराळे रहस्य तें काय ?

राग:— भूपाली ताल–त्रिताल,

स्वरकार: प्रो. लक्ष्मण श्री बोडस सं. प्रविण

सा रे ग ध प ग रे | सा सा सा ध सा रे सा ग ग ग रे
च म क च लो मा ऽ | ल ती बी ऽ ज ली या ह र गो दे
\+ ० १ ३ + सां सं

ग प ध प | ग रे ग रे सा रे सा ग ग रे ग प ध ध |
ला ऽ ऽ वो | स ब फू . या नी या हूं ड न नी क सी च |
० १ ३ + ७

सां ध सां ध प ग रे || ग ग ग प सां ध |
ली आ प ने पी या ऽ || रं ग कूसुं बो की |
१ ३ + ७

सां सां सां सां रें सां ध ध ध सां सां रें |
सा डी प रा ऽ ऽ इ ग ळ मो त न की |
१ ३ + ७

सां रें गं रें सां ध प प ध ग रे ग |
हा ऽ ऽ र सु हा व नी सं या सं या |
१ ० २ + ७

सां सां रें सा ध प प प ग रे ग प ध सां |
क रे हू पु का ऽ ऽ र मै ऽ प रो गी ता |
१ ३ + ०

सां सां ध प ग रे सा |
रे ऽ पे ऽ या ऽ ऽ |
१

राग–सारंग–त्रिताल

(काव्य-स्वर–श्री. भाई अंबर्डेकर, संगीत मंदीर, वेंगुर्लें.)

मनमोहिनी, जगाला मोहि।
सुरदानवा, जगिं मानवा, देऊी नवा, प्रमोदा पाहि ॥ ध्रु.॥
संगीतकला रूप तियेचें। गीत वाद्य नृत्यामधिं साचें।
आनंदि आनंद जगास देई ॥ १ ॥

म प नि सां नि | सां ऽ रें सां रें सां नि प नि प म रे सा
म न मो ˙ हि | नी ˙ ज गा ˙ ˙ ˙ ला ˙ ˙ ˙ मो हि
७ | १ २ +

नि सा म रे म | ऽ म प नी प नी ऽ म प सां नि |
सु र दा न वा | ˙ ज गिं मा न वा ˙ दे ˙ ई न |
७ | १ २ ७ |

सां ऽ रें सां रें सां नी प नि प म रे सा || म प नि सां नि |
वा ˙ प्र मो ˙ ˙ ˙ दा ˙ ˙ ˙ पा हि || म न मो ˙ हि |
१ २ + || ७ |

सां ऽ रे सा रे सा नी प नि प म रे सा म म |
नी ˙ ज गा ˙ ˙ ˙ ला ˙ ˙ ˙ मो ही सं गी |
१ २ + ७ |

प प नी सां सां सां रें नी सां रें मं रें सां |
त क ला रू प ति ये ˙ चें गी त ˙ वा |
१ २ + ७ |

रें सां नी सा प नि सां रें सां नी प सां रें सां रें नी |
˙ द्य नृ ˙ त्या ˙ म धिं सा ˙ चें आ ˙ नं ˙ दि |
१ २ + ७ |

नि सां नि सां प नी प म रे सा |||
आ ˙ नं ˙ द ज गा स दे ई |||
१ २ + |||

अभिनंदन

भारत के प्रथम भारतीय गव्हर्नर जनरल श्री. चक्रवर्ती **राजगोपालाचार्य** को 'संगीत–कला–विहार–परिवार' की ओर से हार्दिक अभिनन्दन ! भारतके आन्तिम वायसराय और गवर्नर जनरल लॉर्ड माउन्टबेटन के कार्यकाल की समाप्ति के बाद २१ जून से राजाजी ने शासनसूत्र अपने हाथों में लिया है। इस सम्बन्ध में सभी एक मत हैं कि वर्त्तमान समय में प्रत्येक दृष्टि से उनका गवर्नर जनरल बनाया जाना भारत के हित में है। भारतीय नेताओं में उनका दृष्टिकोण, विशेष रूप से भारतीय संस्कृति और सभ्यताकी परम्पराओंके अधिक अनुकूल है। हमें आशा है कि भारतीय संस्कृति के अनिवार्य रूप से आवश्यक अंग, संगीत की ओर वे आवश्यक ध्यान देंगे और उनके शासन काल में राज्याश्रय प्राप्त करके यह कला विशेष रूप से उन्नति कर सकेगी। अन्त में फिर एक बार भारत की संगीतप्रेमी जनता की ओर से हम राजाजी का हार्दिक अभिनन्दन करते हैं।

बीन-तरंग

भोंवताल सामसूम
अेकलाच छेडितोस
रोज तुझा हाच चाळा
तडतडा उकलीशी
तोडी, भैरव, पूरीया,
करुण गम्भीर राग—
तालाची न तुला साथ
विलम्बित आलापींत
उगाच कशाला तरी
अन्तरींचे गूढ भाव
लाजरे जे मूक भाव,
अन्तराच्या गाढ तळीं
जाणीवेच्या पवनाची
ज्यांचे तरंग यावया
अशा निःशब्द भावांचें
आतें कोमल संगीत
आणि वाटावें तयांना
सूर केवळ तयांचा
ज्यांचा प्रवाह वहावा
ज्यांनी बीनेची निर्जीव
झरावा तो अन प्रवाह
स्पर्श-मात्रेंच तारांना
स्वर-रूप होऊनीया
आसमन्तीं घुमवीती
गम्भीर-प्रकृति बीन
वातावरणीं उठती

+

लागली तुलाही तन्द्री
तुझ्या देहीं संचरली
आरोहीं नि अवरोहीं
बहरून येअी काया
कांही अबोध वेदना
उरांत जी साठलेली
निशिदिनीं श्वासांतून
जयामध्ये नाहलेल्या
छेडतांच सूर सूर
आणि बान्ध फुटोनिया

होतां काढूनीया बीन
विसरून सारें भान १
रोज तुझा हाच छन्द
रोज हृदयाचे बन्ध २
जोगिया की आसावरी
रागिण्यांची लयकारी ३
तरी भरलें लयींत
कांही तरी गूढ गीत ४
हवें तालाचें बन्धन ?
तालावरी नाचती न. ५
निगूढ ज्या अनुभूति,
थर त्यांचे साकळती ६
झुळुक न चाळवली
मनःसागराच्या वरी ७
अेक निःशब्दच व्हावें
ज्याने हृदय झरावें ८
शब्द-रूपही कठोर
स्वाभाविक आविष्कार ९
अंगुलीच्या वाहिन्यांत
तार व्हावी मुखरित १०
जशी नाचते अंगुली
आकळावी मूक-बोली ११
तया बोलीचेच नाद
मन्द्र गोड पडसाद १२
खर्जातले झणकार
वीचि अनन्त गम्भीर १३

+ +

गीतमय तुझा जीव
कोणा गन्धर्वाची माव ? १४
साज सुरांचा चढतां
चित्तवृत्ति धुन्दावतां १५
तुडुम्बशा डोहापरी
तींत माजते काहुरी १६
आंतबाहेरी वाहती
वायु-लहरी जगतीं १७
जणुं मारी कोणी तीर
लागे ओसंडाया धार १८

छेडतांच सूर सूर
शत तरंग उठती
छेडतांच सूर सूर
हृदयाच्या तळांतून
चाळवते कांही तरी
कळावा न मुळीं जिचा

+

अपुन्या आशा-आकांक्षा,
भंगलेलीं सुख-स्वप्नें,—
कशावरी तरी जीव
अल्प तरी अमोल त्या
उन्मत्त नी पिसाटसे
जयीं कवळाया जातां
जया मागे लागूनीया
पंख झडून पडती—
कांही धुकाळ क्षितिजें,
जया डोळे लोभावले
आणि वेड्या मृगापरी
जाती दूरच क्षितिजें,—
निबळतां पुढें शक्ति
कोठे निवान्त रमावें,—
' जीवन ' तें याचें नांव,
त्याचें काय हें संगीत ?
जया हेतु आकळेना
साऱ्या शब्दांच्या अतीत

+

तरी अशीच तूं तार
मीही माझा मिळवीन
हेंच अेक संजीवन
ह्यांत सारी जादुगिरी
मी न गायक पट्टीचा
तरी चालेल जाहलें
अेक संगीताचें वेड
चल टाकूं सख्या ह्यांत

कोणी खडा मारीलासा
पोहे वरी जीव-मासा १९
उकलीत भाव भाव
जागतसे नवा जीव २०
खोल खोल हुरहूर
जाणीवेला कांही नूर २१

+ +

अपेक्षाही कोळपल्या,
तयांच्या का ह्या सावल्या ? २२
विसावला क्षणभरी
घडीची का ही माधुरी ? २३
मनीं कांही भरलेलें,
हात भागले पोळले; २४
झेपावून वरी वरी
तयाची का ही भरारी ? २५
कांहीं तेजाळ त्यांवर
ज्याची ओढ अनावर; २६
ऊर फुटे तों धावतां
हीच का ती विफलता ? २७
वृत्ति जागीं स्थिरावून
त्याचें का हें समाधान ? २८
जगणें हा कर्मभोग;
बाजवणें कला-राग ! २९
जया अर्थ लागती ना
ज्याची भासे संवेदना ३०

+ +

रहा सन्तत छेडीत
गळा बीनेच्या सुरांत ३१
तुला मला जगताला
जरी अगम्य सर्वाला ३२
तूं न वादक कुशल
जरा बेसूर बेताल ३३
अेक संगीताची धून
काळ सारा बुडवून ! ३४

— पारधी

श्री. केसरबाई केरकर

लेखक—
एकलव्य

श्री. केसरबाई व मोगुबाई यांचे गायन ज्यांनीं ऐकलें असेल, त्यांना हें खात्रीनें पटेल कीं अतरौलीवाले आल्लादियाखाँसाहबांचें गाणें ह्या दोघींत आज निरनिराळया प्रकारें जिवंत आहे. खाँसाहेबांच्या शागीर्दांत गायकींमध्यें केसरबाई अग्रेसर म्हणून गणल्या गेल्या आहेत. आमच्या महाराष्ट्रीय गायिकांमध्यें कितीतरी जणी खानदानी गवयांच्या शिष्यीणी होऊन गेल्या, व आजहि त्यांतील कित्येक हयात आहेत. कै. भास्करबुवांच्या शिष्या श्री. ताराबाई शिरोडकर व हिराबाई पेडणेकर नजरखांच्या अंजनीबाई, नथ्थनखांच्या बाबलीबाई, अल्लादियांचे बंधु हैदरखां यांच्या मोगुबाई, लक्ष्मीबाई बडोदेकर, चंदाबाई नार्वेकर, वझेबुवांच्या तानीबाई, तुंगासानी, दत्ताबाई, बाळकृष्णबुवांच्या दत्ताबाई, विलायतखांच्या इंदिराबाई वाडकर, सरस्वतीबाई फातर्फेकर, श्रीमती नार्वेकर, महमदखाँच्या बाळाबाई बांदोडकर, वहितखाँच्या हिराबाई बडोदेकर, मन्नाबाई, इत्यादि गायिका मशहूर आहेत. हिंदुस्थानी संगीत जीवंत ठेवण्याचें श्रेय हद्दखाँ, हसूखाँ, निसार हुसेखाँ, फैजमहमदखाँ नथ्थनखाँ, बाबा दिक्षीत, देवाजीबुवा, जोशीबुवा, बाळकृष्णबुवा, रामकृष्णबुवा वझे, भास्करबुवा बखले अबदुल करीमखाँ, विष्णु दिगंबर पलुसकर, पटवर्धनबुवा, सवाई गंधर्व इत्यादि गवयांकडें जसें जातें तसेंच त्यांच्या शिष्य शिष्यिणींकडेहि जातें. वरील गवयांनीं स्त्री–पुरुष, जात–पात ह्या भेद न ठेवतां आपली कला आपल्या शिष्यांना आस्थेनें शिकविली. त्याबद्दल रसिक त्यांचे कौतुक करतीलच. परंतु कित्येक दुराग्रही सोवळया कल्पनांना उराशीं कवटाळणारे अकुंचित वृत्तीचे गवई अशा कलायंत स्त्रियांना गाणें शिकविणें कमीपणाचें मानतात, व आपण " सुशिक्षित व घरंदाज स्त्रियानांच " गाणें शिकवितो असा टेंभा मिरवितात, त्यांच्या कोत्या मनाची कींव करावीशी वाटते. वरील सर्व गायिकांनीं कलेच्या प्रेमामुळे आपल्या धनाचा विनियोग चांगल्या चांगल्या उस्तादांकडून गायनाच्या तालीम घेण्यांत खर्च केला. ज्यांनीं कलेच्या व्यासंगांत तपें घालविलीं त्या कलावंतीणींना कमी व हलके लेखणें, त्यांच्याकडे तुच्छतेनें पाहणें, म्हणजे स्वतःकडे नसता मोठेपणा व पवित्र्य घेणें आहे. कला व विद्या यांच्या वातावरणांत जात--पात, स्त्री--पुरुष, असा भेद ठेवण्याचा काल गेला आहे हें अशा क्षुद्रवृत्तीच्या लोकांनीं ध्यानांत घ्यावें. आमची नवी पिढी अशा सोवळ्या व अकुंचित विचारापासून अलिप्त आहे ही त्यांतल्यात्यांत आनंदाची गोष्ट आहे.

उल्लेख केलेल्या स्त्रियांनीं गवयाच्या चरितार्थाची अडचण दूर करून त्यांच्या कलेचें रक्षण प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रीतीनें केलें आहे. या बद्दल वास्तविक आपण त्यांचें आभारी असणें उचित आहे. बाबलीबाईनीं गायनाच्या आवडीनें नथ्थनखाँची उत्तम बडदास्त ठेऊन इतकी उत्तम गायकी मिळविली कीं, तिच्यापुढें गायला गवईसुद्धां कांपत असत. त्याचप्रमाणें केसरबाईनींही अल्लादिखांची तालीम, पुष्कळ पैसा खर्च करून, त्यांची खूप सेवा करून घेतली. ख्यालाच्या गायकींत बाबलीबाई, अंजनीबाई ताराबाई यांनीं पूर्वी जी किर्ति मिळविली आहे. ' तीच त्यांच्यानंतरच्या काळांत केसरबाईनीं मिळविली आहे. ख्यालाची भारदस्त गायकी निसर्गतः स्त्रियांच्या नाजुक आवाजाला न पचणारी ! परंतु तिच्यांत सुद्धां प्राविण्य संपादून रसिकांकडून वाहवा मिळविणें ही सोपी गोष्ट नव्हें. त्याकरितां जशी विलक्षण कलाप्रियता असावी लागते; तशीच चिकाटी व अविश्रांत व्यासंग–परायणताहि अंगी असावी लागते. थोडीशी गायकी मिळाल्यावर ग्रामोफोन रेकॉर्डसच्या जोरावर कांहीं काळ नांव झालें म्हणजे अस्सल 'ख्यालीये' म्हणून मिळविणारे अहमंन्य गवई पुष्कळ आहेत. परंतु तपेंच्या तपें मेहनत करून निरनिराळया अस्सल उस्तादांकडून त्यांच्या घराण्यांच्या गायकी मिळविणें विलक्षण कलाप्रियतेशिवाय शक्य नाहीं. अर्ध्या हळकुंडानें पिवळें होणारे, तुटपुंजा ज्ञानावर शेखी मिरविणारे गायक पुष्कळ आहेत. परंतु केसरबाई, बाबलीबाई, लक्ष्मीबाई ह्यांच्या सारख्या उभें आयुष्य कलेच्या व्यासंगांत, मेहनतींत घालविणाऱ्या गायक गायिका किती आहेत ? द्रव्याची अनुकूलता, गाण्याचीहि अनुकूलता असून पुष्कळसे गायक व गायिका आपल्या ऐन उमेदींत कलेपासून पेन्शन घेतात. तेव्हां आश्चर्य तर वाटतेंच पण त्यांची कींवही येते.

केसरबाई अत्यंत कलाप्रिय आहेत. आजच्या घटकेला सुद्धां त्यांची मेहनत चालू आहे. मेहनती शिवाय गाणें व्यर्थ आहे. "गाता गळा" अशी आपल्यांत एक म्हण आहे मेहनतीच्या जोरावर केसरबाईंना आपल्या गाण्याची हटकून छाप पाडतां येते हवेसारखी सहज सर्वगामी व अवघड फिरत मेहनतीशिवाय येणें कठीणच! कल्पनेच्या जोरावर एखादी फिरत जुळवील, पण ती गळयांतून सफाईनें काढण्यास तिला मेहनतीची गरज असतेच. मेहनतीशिवाय गळयावर म्हणूं तशी हुकमत गाजवितां येत नाहीं तानेची स्वच्छ फिरत करतां येत नाहीं, मन मानेल ते स्वर हलवितां येत नाहींत. मेहनतीनें गळयाची तयारी किती अचाट करतां येते याचा उत्तम आदर्श म्हणजे केसरबाई!

अल्लादिया खांसाहेबाकडे तालीम घेण्यापूर्वी त्यांनीं कै. रामकृष्णबुवा वझे, कै. भास्करबुवा बखले, अबदुल करीमखां व बरकत उल्लाखां यांच्याकडे तालीम घेतली होती. असें कळतें. पण आज मात्र त्यांचें गाणें अल्लादिखांसाहेबांच्या घराण्याचें आहे. गुरुंची एकनिष्ठेनें सेवा करुन, त्यांची तबीयत राखून केसरबाईनें विद्या संपादन केली.

डोकीवर पदर घेऊन उजव्या हातानें तंबोरा छेडीत असलेल्या केसरबाई, उजव्या बाजूंस बाईचें बंधु, अथवा विष्णुपंत शिरोडकर तबल्यावर, डाव्याबाजूंस अमळ मागें मजीदखां सारंगीवर अशा थाटांत त्यांची मैफल सुरु होते. अलिकडे स्वर भरण्याची तंबोरा–पेटी त्या घेवूं लागल्या आहेत. दोन तंबोरे चित्रविचित्र हातवारे करणारा पेटीवाला, सारंगीवाला, आजूबाजूंस "माशाल्ला" "सुभानअल्ला" वगैरे उद्‌गाराची वेळी अवेळीं खैरात करून 'कल्लोळ' करणारी शिष्यमंडळीं, जराशी बिकट तान घेतली कीं, ती अत्यंत 'मुश्किल' आहे असें म्हणणारे स्तुतिपाठक अशा लोकांमध्यें होणाऱ्या जाहिरातवजा मैफलींची, बाईंच्या जरूर तितक्याच साथीवर चाललेल्या साध्यासुध्या पण वैशिष्ट्यपूर्ण तयार संगीतानें शोधलेल्या मैफलींशीं रसिकांनी तुलना करावी. साथीची खरी मजा मजीदखां सारंगीवाला अथवा हल्लीं अमीरबक्ष असतांना ऐकावयास मिळते. या दोघांची साथ बाईंच्या गाण्याला रंग भरणारी असते. मजीदखांची सारंगी केसरबाईंच्या गाण्याबरोबर तितक्याच तयारीनें फिरत असते. ती त्यांचा सुरेल आवाज झांकून टाकत नाहीं किंवा मागें पुढें होत नाहीं. अगदीं सावगळ्याप्रमाणें बरोबर असते. मध्यंतरी बाई गात असल्या कीं, त्यांनीं काढलेली आलापी किंवा तान मजीदखां त्यांच्याप्रमाणें हुबेहुब काढतो. सारंगीच्या साथीवर आमचें हिंदुस्थानी संगीत अत्यंत शुद्ध स्वरुपांत ऐकावयास मिळतें केसरबाई एकाच तंबोऱ्याच्या साथीवर आपल्या मोठ्या पण सुरेल आवाजानें किती उत्तम गातात तें ऐकण्यासारखें आहे. फाजील साथीच्या गोंगाटांत गाणाऱ्याच्या आवाजाचें निर्भेळ स्वास्थ श्रोत्यांना चाखावयास मिळत नाहीं. बेताच्यासाथींचे केसरबाईंचें भरपूर गाणें साथींच्या गोंगाटांत स्वतः बेतानें गाणाऱ्या गवयांना सडेतोड उत्तरच आहे म्हणायचें!

केसरबाईचा आवाज बायकांच्या मानानें जरा ढालाच आहे. तो हिराबाईपेक्षां मोठाला कमी असला तरी बराच सुरेल असून त्याला उंची चांगली आहे. मेहनतीमुळें त्याला बांधेसूदपणा व गोलाई आली आहे. त्या तीनही सप्तकांतील स्वर आकारानें सहज सारख्या मापाचे व रुंदीचे लावतात. त्या मुक्तकंठातून निघालेल्या 'आकारांतून' स्वरांची उपज पहिल्या प्रथम श्रोत्यांचें लक्ष वेधतें. त्यांच्या स्वर लावण्यांत अत्यंत सहजता व मेहनतीचें सौष्ठव आहे. त्यामुळें त्यांची कष्टरहित आलापी, तान अत्यंत आल्हाददायक वाटून श्रोत्यांच्या वृत्ती त्या स्वरालापाबरोबर तरंगत हेलकावें खात असतात. अत्यंत मेहनतीनें ही सहजता त्यांनी हस्तगत केली आहे. त्यांच्या आलापींत दोन दोन, तीन तीत, चार, चार स्वर अनुक्रमें अलटून पालटून हलविलें जातात. तेंत वैचित्र्यहि असते. त्यांची आलापी अत्यंत श्रवणीय आहे. या आलापीनेंच त्या बिलंपत करतात. बरकत उल्लाखांची तालीम असतांना त्या फार सुरेख आलापत असत. असें त्या काळच्या एका संगीततज्ञ श्रोत्यानें मला सांगितलें आहे. १९३० सालीं मी स्वतः त्याचीं रेडिओवरील गाणीं ऐकली आहेत. त्यावेळीं मियाच्या मल्हारांतील आलापी बाईनीं इतक्या तऱ्हतऱ्हेनें केली कीं, मला माझ्या मित्राच्या म्हणण्याची सत्यता तावडतोब पटली. या आलापीमध्यें चीजेचे तोंड म्हणत म्हणत त्या सहजपणें समेवर येतात. त्यांची तान अत्यंत स्वच्छ व सहज आहे. तिच्यांतील प्रत्येक स्वरांचा बांधीवपणा व गोलाई अभंग असते. तानेचे जाणें येणें सपाट, सरळ नसतेच. दोन दोन, तीन तीन, स्वरांचे गट

बांधून घेऊन तें मधून मधून स्वरांनीं जोडून त्या ताना गुंफतात. कित्येक ताना एकएक स्वर अनुक्रमें हलवून, एकादे वेळेस मध्य सप्तकांत ताना सुरु करुन, त्या तार सप्तकांत जातात, पुन्हां खालीं उतरून दोन दोन, तीन, तीन स्वरांच्या गुंडाळा करून वर जातात. व पुन्हां खालीं येऊन चीजेचा मुखडा म्हणून समेला भिडतात. दुक्की तान त्यांचीं फार आवडती दिसतें. तानेचा संचार मध्य व तार सप्तकांतील पंचमधैवतापर्यंत सहज चालतो. तानेंतील वैचित्र्य हें त्यांच्या घराण्यांतील गायकीचें वैशिष्ट्य आहे. मंजीखांप्रमाणेच स्वरांची बिलंपत लहान लहान अलापांतून, स्वरांतून स्वर अविच्छिन्नपणें बाहेर काढून केसरबाई करतात. धिम्या त्रितालांत किंवा आडा चौतालात किंवा झपतालांत चीजा गाउन त्या लयींच्या दुप्पट चौपटींत फिरत करण्याची त्यांच्या घराण्याची पद्धत केसरबाईच्या गाण्यांत उत्कृष्टपणें दिसून येते. शद्बाबरोबर स्वरांची उपज चालू असतें. सुंदर स्वराभरणांनीं या घराण्यांतील चीजांचें बोल बांधण्यानें मुळांत तें खुलून दिसावेत या दृष्टीनेंच बांधलें आहेत. परंतु केसरबाईचें उच्चार स्वच्छ व मोहक नसल्यामुळें ही शोभिवंत आभरणें फुकट जातात. त्यांच्या उलट त्याच घराण्यांतील मंजीखांच्या मोहक, स्वच्छ उच्चारामुळें चीजांचे बोल स्वराभरणांनीं द्विगुणींत सौंदर्यानें शोभिवंत वाटतें. केसरबाईना स्वच्छ व सार्थ उच्चाराचें महत्व न कळल्यामुळें किंवा त्यांच्या गुरुंनीं त्यांना तें कधींही न पटविल्यामुळें त्यांच्या गाण्यांत हा ठळक व अक्षम्य दोष आजपर्यंतीह राहिला आहे. गायिकेची चीज ऐकून आली नाहीं तर श्रोत्यांनीं आस्वाद कशाच्या घ्यावयाचा ? आपली चीज कोणी उचलील अशी भीती तर या गायि॰ केला वाटत नसेल नां ? परंतु केसरबाईनीं हें ध्यानांत ठेवावें कीं, चीजेचें नुसतें बोल आलें कीं, तिची गायकी थोडीच आली ! ही भीती निराधार आहे. त्यांच्या घराण्याच्या गायकीतील तिलककामोदांतील एका चीजेंत (सुर-संगीत-गम विद्या) 'सुधवानी' चा उल्लेख आहे, हें त्यांस सुहितच आहे. कारण ही चीज त्या गातात. गातांना त्या जशी 'सुधमुद्रा' ठेवतात तशी 'सुधवानी' कां उच्चारीत नाहींत ? परंपरागत आलेल्या अशा चिजांची तालीम देतांना अल्लादियाखांसाहेबासारख्या बुद्धिमान व विद्वान म्हणुन गणल्या गेलेल्या उस्तादाला 'सुधवानीचें' महत्त्व कळूं नये, हें त्याच्या परंपरेच्या अभिमानाला शोभतें काय ? खुद्द-खांसाहेबच मैफलींत गातांना-त्यांना नको असलेले अंते समोर असले म्हणजे चीज स्वच्छ म्हणत नसत. अंतराच गात नसत व रागस्वरूपहि वर्ज्यस्वर लावून गलत करीत असत असें त्यांच्या सहवासांतील जाणणाऱ्या लेखकाच्या वरील लेखनांत लिहिलें गेलेलें नुकतेंच वाचलें. असला प्रकार खांसाहेबांच्या तथाकथित विद्वत्तापूर्ण आत्मविश्वासाशीं सुसंगत आहे असें वाटत नाहीं. शिवाय अशा रीतीनें आपण आपल्याच विद्येशीं व कलेशीं प्रतारणा करत आहोंत, हेंहि त्यांच्या केंव्हांहीं ध्यानांत आलें नाहीं. त्यामुळें जाणते लोक त्यांचे गाणें गलत आहे असा आक्षेप नेहमीं घेत. हा आक्षेप खुद्द खांसाहेबांजवळ फारसा पोंचत नसे. एकदां खांसाहेब गप्पामारित असतां एका गृहस्थानें हा आक्षेप बोलून दाखविला तेव्हां खांसाहेब म्हणाले, "आमच्या गाण्याची 'सरगम' होऊं शकत नाहीं तेव्हां तें गलत तुम्ही कसें ठरविणार?" तेव्हां तें गृहस्थ म्हणाले " असें असेल तर मग ते बरोबर आहे हेंहि तुम्ही म्हणतां त्याच कारणाकरतां ठरवितां येत नाहीं." " तेव्हां खांसाहेब हंसत म्हणाले '' अरे भाई जाने दो यह बहस " असें म्हणून त्यांनीं तो विषय बदलला. " सुधमुद्रे " बरोबर " सुधवानी '' नसल्यामुळें आपल्या गायनांतील एक महत्वाच्या सौंदर्यास केसरबाई पारख्या झाल्या आहेत. या दोषामुळें बहुजन समाजाला त्यांच्या गाण्याचें आकर्षण वाटत नाहीं. अल्लादियाखाँचेच चिरंजीव मंजीखाँ शुद्ध वाणीनें गात असत. आणि खाँसाहेबाच्या पुढील पिढींतील फैयाजखाँ शुद्ध वाणीनें गातात. खुद्द अल्लादियाखाँना मात्र वर्षांनुवर्षे तालीम देतांना ही दृष्टी नसावी ही आश्चर्याची गोष्ट आहे.

केसरबाईच्या स्वर लावण्याच्या पद्धतींत माझ्या मतें एक दोष असा आहे कीं त्यांचे स्वर एकाच वजनानें व मापानें (Volume) सतत लागतात त्यांत रसदृष्ट्या कमीजास्तपणा (Modulation) नसतो. कित्येक रागांना अवश्य असणारा गळ्याचा नाजुकपणा हलुवारपणा किंवा स्वरांचा सूक्ष्मपणा नसतो. रस निर्माण करण्यास किंवा छायाप्रकाशाप्रमाणें परिणाम घडवून आणणाऱ्या दृष्टीनें स्वर कमीजास्त वजनानें (Volume) लावणें. अत्यंत इष्ट व उपयुक्त असते. केशरबाईचा वरचा षड्ज सूक्ष्म व स्थूल या दोन्ही मानानें न लावतां फक्त स्थूलमानानेंच लागतो. सहज व तयार तानक्रियमुळें त्यांच्या गायनांत चमत्कृति निर्माण होत असली तरी निरनिराळ्या मापांच्या स्वरांच्या आंदोलनालापाभावी व पुष्कळदां अगदीं खडे ठोकल्याप्रमाणें स्वर लावूं

नये. त्या रागांत (ललत, जौनपुरी, मालकंसांतील त्यांच्या नवीन रेकॉर्डस ऐकाव्या) लावल्यामुळें त्यांचे गाणें फार रुक्ष लागतें, त्यांत रस मुळींच निर्माण होत नाहीं. ललत, जौनपुरी-मध्यें धैवत त्या दर्जाप्रमाणें न लागल्यामुळें त्या रागांचें रागत्व निर्माण होत नाहीं. त्याशिवाय स्वच्छ, मोहक, व सार्थ उच्चारांच्या व मधुर स्वरांच्या अभावींही त्यांचे गाणें पुष्कळदां यांत्रिक, तंत्राच्या आहारी गेलेलें रटाळ, व बेचव लागतें. संगीताचा मूलभूत हेतूच त्यांना समजावलेला दिसत नाहीं.

त्यांच्या तानेमध्यें वैचित्र्य, बिकटपणा, सहजता हे गुण जसें प्रामुख्यानें दिसतात, त्याचप्रमाणें सहज समेवर येणें हा त्यांच्या घराण्याचा विशेषहि दिसतो. सम घेतल्यावर लगेच तान घेण्यास सुरवात करून निरनिराळ्या लयींनें मध्य व तार सप्तकांत फिरत करून अलगत समेवर येणें म्हणजे त्यांच्या हातचा मळ आहे. आलापी करूनहि अशाच तऱ्हेनें पाहातां पाहातां त्या समेवर उतरतात, इतकी त्यांची मोजमापाची व हिशेबी तनयत आहे. गाढ परिश्रमाचें हें चीज आहे. आलापींत व तानेंत सहजता, स्वरांचा बांधीवपणा, रचनासौंदर्य, विविधता हे सर्व गुण दमछाकीशिवाय कसें साध्य होतील ? समेवर येण्यापूर्वी आतां त्यांचा दम सुटतो कीं काय असें वाटतें न वाटतें तोंच सहजपणें श्वास न सोडतां त्या समेवर येतात व लगेच वाढत्या तयारीच्या व पुष्कळ आवर्तनांच्या फिरतीला सुरवात करतात. असा प्रकार सारखा चालू असतो. गाढ मेहनतीनें आणि परिश्रमानें गळा तयार केला केसरबाईनींच ! यामुळें ख्यालाच्या अवघड गायकीत त्यांनी फिरतीचे कमालीचें प्राविण्य मिळविलें आहे. एक एक, दीड दीड तास एकादा राग वैचित्र्यपूर्ण ढंगानें श्रोत्यांना त्या चकीत करून सोडतात. मी मंजीखांकडे त्यांचे गाणें ऐकलें त्यावेळीं भीमपलास एक तास त्या अशाच वैचित्र्यपूर्ण गायल्या होत्या. भीमपलास, मालकंस, सिंधुरा, ललत, गौरी, तिलककामोदासारखे प्रचलित पण रंजक राग त्या फार तयारीनें गातात. अलिकडे यांतील कांहीं रागांतील त्यांच्या रेकार्डस उपलब्ध झाल्या आहेत. त्या वाचकांनी अवश्य ऐकाव्यात. सर्वसाधारण यांतील विलंबत जरी पकड घेत नसली तरी आलापी व तऱ्हेतऱ्हेची फिरत उठावदार झाली आहे. केसरबाईंच्या बऱ्याच मैफली ऐकून व त्यांच्या रेकॉर्डसहि ऐकून मला वाटतें कीं त्यांचें गाणें द्रुतालाप व तानांचें सद्दे सुरू झाले म्हणजेच रंगू लागतें. त्यांच्या तयार तानेमुळें चमत्कृति खूप निर्माण होते. पण तें गाणें तादात्म्य निर्माण करूं शकत नाहीं. श्रोत्यांना देहभान विसरावयास लावूं शकत नाहीं. त्यामुळें मैफलींतून उठल्यावर त्या गाण्याचें गोड गुंजन कानांत रहात नाहीं. श्रोत्यांस चुकल्या चुकल्यासारखें वाटत नाहीं. अन्य व्यवसाय चालू असतांना मध्येंच त्या गाण्याची आठवण होऊन ते व्यवसाय थबकून रहात नाहींत. थोडक्यांत सांगावयाचें म्हणजे अंतःकरणाची पकड घेणारें केसरबाईंचे गाणें होत नाहीं. त्यांत तानबाजींत रसोत्कटतेपेक्षां गळ्याची करामतच विशेष दिसते. त्यांच्या गाण्यांत जेव्हां राग-नियम पाळले जातात, तेव्हां बुद्धीची करामत चांगली दिसते. रागनियम तुडविले जातात तेथें नुसतीच शुष्क गळेबाजी दिसते.

बसंतबहार, काफीकानडा, नटबिहाग, सावनी, कल्याण, हेमनट, मारुबिहाग, मीयांचा मल्हार, नायकी कानडा, खोकर, वसंतकेदार या सारखें मिश्र व अनवट रागहि केसरबाई गातात. अलिकडे बहुतेक मैफलींत त्यांचे खोकर, सावनीकल्याण, हेमनट, काफीकानडा, मारुबिहाग मला वारंवार ऐकावयास मिळाले आहेत. गळ्याची तयारी अजून कायम आहे. व आवाजहि या वयांत अगदीं निर्मळ आहे. वरील राग गातांना विशेषतः काफी कानडा, मारुबिहाग मध्यें रागाचें स्वरूप शुद्ध रहात नाहीं आणि या रागाच्या रेकॉर्डसहि (काफी कानडा—'सुखकर आई', ब्रॉडकास्ट कंपनीची रेकॉर्ड आणि 'मारुबिहाग'—हिज मास्टर्स व्हाईस कंपनीचे रेकार्ड) उपलब्ध असल्यामुळें वाचकांना या ऐकूनच माझा आक्षेप पडताळून पाहतां येईल. त्या रेकार्डसमधील काफी कानडामध्यें कानड्याचें अंग दिसत नाहीं. आणि मारुबिहागमध्यें शंकरा भूपालीचें अंग तानेत फार वेळां आलें आहे. त्याप्रमाणेंच जौनपुरीमध्यें चिजेचे तोंड म्हणण्यापूर्वी जो एक विशिष्ट स्वर समूह वारंवार त्या घेतात. त्यांत अवरोहांत कोमल धैवत वर्ज करून त्या तोंड म्हणुन समेवर येतात, तेथेंहि रागिणीचा तोंडवळा साफ बदलून ही जौनपुरी नाहीं याचा प्रत्यय येतो. हा स्वर तर या रागिणीचा प्राणस्वर आहे. तोहि हलुवारपणें आंदोलित लावावयाचा असतो. हा जौनपुरीचा विशिष्ट धैवतहि त्यांना बरोबर लावतां आला नाहीं. कारण तशी तालामच पोंचली नाहीं. त्यामुळें या रागिणीचें मूळचें सौंदर्य व

हलवारपणा केसरबाईंच्या गाण्यांत प्रतीत होत नाहीं. त्यांच्या ललिताच्या खड्या धैवताच्या मालकंसांतील खड्या निषादाचाहि उच्चार चुकीचा तर आहेच पण कर्णकटूही आहे. गौड मल्हार-मधील (मानन करिये) अंत्रा गातांना 'हारी हारी' शद्बांवर मीया मल्हारांतील (म ध नी ध नी) सुरावट घेतली आहे. रेकॉर्डस् देतांना केसरबाईनीं दूरवर विचार करुन आपलें नांव व कीर्ति ध्यानांत घेऊन जबाबदारीनें या रेकॉर्डस् दिल्या आहेत असें वाटत नाहीं. ही त्यांतील खेदजनक गोष्ट आहे. यावर विस्तृत चर्चा मुंबईच्या 'मौज' साप्ताहिकांत शुद्धसारंगानीं दोनवर्षांपूर्वी विस्तारानें केली आहे. तिकडेंही वाचकांचें लक्ष मी वेधूं इच्छितो एकंदरींत केसरबाईच्या तयार गळ्याला रागनियमांचें वळण असतें, स्वरसौंदर्याची दृष्टी असती: निरनिराळ्या रागांतील स्वरांचे दर्जे माहित असते. तर त्या खऱ्या अर्थानें विदुषी व सामान्य गायिका म्हणून अजरामर झाल्या असत्या. इतकी वर्षे तालीम देतांना त्यांच्या गुरुजींनीं रागरागिणींच्या नियमांचें सुस्पष्ट ज्ञान त्यांना दिलें नसावें-- याचा पुरावा केसरबाईंच्या वरील रेकॉर्डस-नीच दिला आहे. गुरुभगिनी मोगुबाईंची जयभारतमधील नायकी कानड्याची रेकॉर्ड (मेरोपीया) ऐकतांना त्यांतील शुद्ध धैवताचा व एकदां आंदोलित कोमल धैवताचा उपयोग ऐकून माझ्या वरील बिधानास आणखी पुष्टी मिळते. त्याशिवाय रेडियोवर केसरबाईचे व या गुरुभगिनीचें गाणें ऐकतांनाही असे चुकीचे गायनाचे पुरावे मला पुष्कळच मिळाले आहेत. बिभास गातांना मध्यसप्तकांत कोमल ऋषभ व तारसप्तकांत आरोहावरोहांत तीव्र ऋषभ मोगुबाईनीं लाविलेला मी अनेकदां ऐकला आहे. रागाचे नांव 'गांधारी' सांगून सरळ आरोहावरो-हांत 'जीवनपूरी' त्या गायल्या. (सांचि कहत है सदारंग-ही चीज) सूरदासीमल्हारींमध्यें तानेंत धैवत वर्ज्य करणें-- हे प्रकार शुद्ध गायिकीचे समजावयाचें कीं काय? याशिवाय त्यांच्या घराण्यांतील लक्ष्मीबाई, सरदारबाई करडगेकर निवृत्तीबुवा सरनाईक यांचें गाणें रेडियोवर ऐकून वाचकांना चुकीच्या गायकीचे हेच नमुनें व हीच उदाहरणें घरबसल्या पुष्कळच सांपडतील. बडोद्याच्या लक्ष्मीबाईंच्या नायकी कानडा व कामोद या रेकॉर्डस ऐकल्या. मोठ्या उच्च समजल्या जाणाऱ्या गायन घराण्याच्या गायकीचें असें धिंदवडे व्हावेत हें पाहून मनाला खेद होतो. या घराण्यांतील गायकांनीं आपली गायकी शुद्ध ठेवावी इतक्याच हेतूनें ही चर्चा केली आहे. या घराण्यांतील गायक गायिकांना 'सम्राट' 'विद्वान्' अशा पदव्या जबाबदार लेखकांनीं उत्साहाच्या भरांत बहाल करुन त्यांच्यावर फारच मोठ्या त्यांनी जबाबदाऱ्या टाकल्या आहेत. श्रोत्यामध्येंही त्यांच्या गायनाबद्दल विशिष्ठ अपेक्षा निर्माण केल्या आहेत. याची जाणीव जरी त्या लेखकांना नसली तरी ऐकणाऱ्यामध्यें त्यांनी निर्माण केली असल्यामुळें तितक्याच चोखंदळ कानानें त्यांच्या गायकीचें परिक्षण श्रोत्यांनी केले तर त्यांत त्यांची काय चुक आहे. 'परमेश्वरा अशा मित्रापासून वांचव' अशी म्हणण्याची पाळी येते ती अशाच प्रसंगीं! आपली गायकी शुद्ध आपल्या घरा-ण्याच्या राग-नियमांना धरून ठेवणें हेंही गुरुंचें व शिष्यांचें कर्तव्य ठरतें. मरहूम अल्लादियाखाँ साहेबांसारख्या 'संगीत सम्राटानें' आपल्याच घराण्याची गायकी चुकीची शिकवावयाची यासारखी आश्चर्यकारक गोष्टच असूं शकत नाहीं!

रागरागिणी मधील वर्ज्यावर्ज्याचें वक्रत्वाचें, स्वरसौंदर्याचे, स्वरांच्या दर्जाचे सर्व नियम पाळूनच जो गायक आपल्या गळ्याची तयारी, स्वर रचनेचे सौंदर्य, वैचित्र्य व माधूर्य आपल्या गायनांत दाखवितो त्यालाच 'विद्वान' म्हणावें; त्यालाच 'कसबी' म्हणावें, त्यालाच 'सम्राट' म्हणावें. क्रिकेटमध्यें त्या खेळांचे कायदे पाळूनच जो खेळाडू आपल्या बॅटची किंवा बॉलची करामत करुन दाखवितो. तोंच "उत्कृष्ट खेळाडू" त्यालाच 'क्रिकेटचा राजा' म्हणतात. नुसत्या तयार गळ्यावरच विद्वत्तेचा आरोप करणें म्हणजे त्या शब्दाचा दुरुपयोग करणें आहे. अज्ञान्याला विद्वान् म्हणण्यासारखेंच आहे.

मात्र अल्लादियाखाँसाहेबांची एका बाबतींत मी फारच तारीफ करतो. केसरबाईंना त्यांनीं बोलतान फारशी शिकविली नाहीं. ही ती बाब होय! एकंदरींत स्त्रियांच्या गायनांत 'बोलतानेची झटपट कानाला गोड लागत नाहीं; सौंदर्यपूर्ण वाटत नाहीं असे अनुभवानें मला वाटते. खाँसाहेबांना या बाबतींत मी धन्यवाद देतो. ही दृष्टी त्यांनीं व त्यांच्या बंधूंनी (हैदरखाँनी) मोगुबाईच्या बाबतींत ठेवली असती तर बरें झालें असतें. केसरीबाईचें निर्मळ गळ्याचे 'गायन' तरी वाटते पण मोगुबाईचें मात्र स्वरांशीं 'भांडण' वाटते. बोलतानेच्या हव्यासामुळें त्या स्वरांशीं भांडत आहेत असे वाटते. त्यांची जयभारत मधील जयजयवंती व नायकी कानडा ही रेकॉर्ड अवश्य ऐकावी.

लयकारी आवडणाऱ्या मंडळींना हा प्रकार फार आवडत असावा पण मला मात्र या बाबतींत केसरबाईंचे गाणें मोगुबाईच्या पेक्षां जास्त सौंदर्यपूर्ण वाटतें, परंतु मोगुबाई केसरीबाईपेक्षां कांहीं विशेष कार्य गातांना करत असतील तर घराण्याच्या नियमांना पूर्णपणें अनुसरून त्या अस्ताई अंतरा गातात-भरतात. हें होय. याबद्दल घराण्याच्या गायकीच्या अस्सलपणाचें रक्षण करीत असल्याबद्दल मी त्यांची प्रशंसा करतो. त्याच्या उलट एकदाच केसरबाई अस्ताई अंतरा नुसता म्हणून बाकीचा वेळ चिजेचे नुसते तोंडच म्हणून विस्तार करतात. त्यामुळें घराण्याची परंपरा बिघडते, रागाची छाया पडत नाहीं. व गाणें कंटाळवाणें होऊं लागते, या बाबतींत केसरबाईंनीं फैयाजखां चिजेचा अस्ताई अंतरा कसा रंगदार व डौलदार भरतात, त्यांतही निरनिराळ्या ओळी साथ शब्दोच्चारांनीं कशा तऱ्हेनें नटून गायनांत रंग भरून श्रोत्यांना कसें मजेंत डुलायला लावतात हें ऐकण्यासारखें आहे.

१९३० साली प्रचारांतील तिलक कामोदांतील 'सुरसंगत रागविद्या' (मम सुखाची ठेव देवा—'स्वयंवर' नाटक) तयारीनें गायल्या होत्या. या सातमात्रांच्या तालामध्यें निरनिराळ्या लयींत दमछाकीनें फिरत करून त्या सहज समेवर येतात. मालकसांतील मध्य सप्तकांतील विषादावर सम असलेली एक अनवट चीज त्या फार उत्तम गातात. ही चीज त्यानीं रेकॉर्डमध्यें दिली असती तर हल्ली दिलेल्या रेकॉर्डमधील चिजेंपेक्षां (मैं सन मीत) नाविन्यपूर्ण वाटली असती.

ठुंबरींमध्यें केसरबाईनीं ख्यालाइतकें प्राविण्य मिळविलें नाहीं. ठुंबरींत त्यांचे शब्दोच्चार स्पष्ट नसतात, भावपूर्ण नसतात. त्यामुळें त्यांची ठुंबरी मजीखां, फैयाजखाँ, सुन्दराबाई, गोहरजानप्रमाणें रसीली होत नाहीं. भावनाप्रधान संगीतांमध्यें कलावंताला रसोत्पत्ती करतांना स्वत:ला भावनानुभूति व्हावी लागते. म्हणजे चिजेंचा भाव व रस स्वत: समजून अनुभवावा लागतो. त्याच्याशीं समरस झाल्यावर तशींच भावना श्रोत्यांच्या मनावर साथ शब्दोच्चारांनीं अनुकूल व परिपोषक स्वरालंकारांनीं उमटविणें हें कलेचें दुसरें कार्य असतें. केसरबाई स्वत: गातांना रंगलेल्या मी एकदांही मैफलींत पाहिल्या नाहींत. मग श्रोत्यांवर त्या कसा परिणाम करणार ? ख्यालाच्या मानानें ठुंबरी भजनांतील त्यांचे उच्चार जास्त स्पष्ट असले तरी ते साथ, मोहक, रसानुकूल नसल्यानें ऐकणाऱ्याच्या अंत:करणावर त्यांच्या ठुंबरीचा आसर पडत नाहीं. त्यांच्या ठुंबरींत गायकी पुष्कळ, पण तिचा आत्मा म्हणजे भावना परिपोष नसतो.

मंजीखाँच्या मृत्युनंतर अल्लादियाखाँच्या घराण्यांत मल्लिकार्जुनाशिवाय योग्यतेचा दुसरा गायक आज कोणीही दिसत नाहीं. व होईलसेंही दिसत नाहीं. मंजीखाँ, भुर्जीखाँ यांची मुलें या विद्येंत तयार होत असल्याचें माहित नाहीं. पण शिष्यिणींमध्यें केसरबाई, मोगुबाई, सरदारबाई, आजमबाई यांच्यांत खाँसाहेबांचें गाणें जीवंत आहे. मोगुबाई आपल्या मुलीला गाणें शिकवितात ही अत्यंत आनंदाची व समाधानाची गोष्ट आहे, कारण पुढील पिढींत हें गाण्याचें लेण पोंचत आहे. केसरबाईंची मुलगी शिकून डॉक्टर झाल्यामुळें हा प्रश्न रहात नाहीं. परंतु केसरबाईनीं आपली विद्या कोणाहि लायक शिष्यिणीस शिकविली तर त्या कलेचें व आपल्या गुरुचें कलाविषयक ऋण फेडतील.

मुंबई पुण्यांत केसरबाईंना वाखाणणारे पुष्कळ आहेत. परंतु त्यांच्या कलेबद्दल समजस व जाणता आदर कितीजणांना आहे, हा प्रश्नच आहे. पुण्यांतील नुकत्याच झालेल्या त्यांच्या एका मैफलींत एक अनवट राग गात असतांना एका श्रोत्यानें शेजारी बसलेल्या केसरबाईंच्या मार्मिक व जाणत्या म्हणून गणल्या गेलेल्या दुसऱ्या एका श्रोत्याला 'हा राग कोणता' असें विचारलें. तेव्हां त्यानें बराच विचार करून 'हा एक मल्हाराचा प्रकार आहे' अशी नक्की माहिती दिली. तेव्हां पहिले गृहस्थ म्हणाले, 'ते दिसतेंच आहे हो ! पण तो कोणता त्याचें नांव सांगा ना ! " तेव्हां उत्तरच मिळालें नाहीं. ही समजणार म्हणून गणले जाणाऱ्या लोकांची स्थिति ! तेव्हां 'इतरे जनांची' अवस्था काय ? बहुतेक लोक केसरबाईंच्या तथाकथित कीर्तिला व नांवालाच दिपून मुकाट्यानें त्यांचें गाणें ऐकतात. त्यांतील त्यांना सहजता, गळ्यातील निर्मळपणा, तानेची तयारी व वैचित्र्य, सुरेल आलापी वगैरे ठळक गुण आवडतात. परंतु त्यांच्या गळ्यातील रागज्ञान व शास्त्रीय चमत्कार, स्वरज्ञानी व रागज्ञानीच जाणू शकतात. त्यांच्या गाण्याची रंगत तशा लोकांच्या मैफलीतच खरी ऐकावयाला मिळते. व त्यांच्या गाण्याची खरी पारखही तेथेंच होते.

——:०:——

आग्रा घराण्याची परंपरा . . .

लेखक— प्रो. प्रल्हाद गानू

हाजी सुजान खां

अकबर बादशहाचे दरबारी हाजी सुजानखां नांवाचे उत्कृष्ट धृपद गाणारें गवई होऊन गेले. यांना दरबार कडून गौंधपूर नांवाचा गांव तनखा म्हणून जहागिरी मिळालेला होता. यांच्या संबधाची ही माहिती अब्दुल फजल यांनी लिहिलेल्या आयनें–अकबरी या ग्रंथांत मिळतें. हे नोहारवाणी पैकी होते. अशी गोष्ट सांगतात कीं, एकदां गाण्याचा दरबार भरला असतां बादशहाकडून दीपक राग गाण्याचा फर्मायश केली गेली. परंतु अवेळीं दीपक राग गाईल्यामुळें अंगाचा दाह होतो म्हणून कोणीही गवई दीपक गाण्यास तयार होईना. शेवटीं हाजी सुजानखां हे तयार झाले. त्यांनीं आपल्या सभोंवती विझलेले दिवे ठेविले व स्वतः थंड पाण्याच्या हौदांत बसून दीपक राग गावून दिवे पेटवून दाखविले. त्यां काळांत हे एक उत्कृष्ट धृपदीये होऊन गेले, त्यांची धृपदे आजपर्यंत चालू आहेत. यांना अलकदास, खलकदास, लवंगदास मलकदास असे चार मुलगे होते.

मलकदास यांना सरसरंग व शामसरंग असे दोन मुलगे होते. शामसरंग यांच्याकडुन ग्वाल्हेरचे नथ्थनपीरबक्ष यांनीं कांहीं धृपद धमार घेतले होते. नथ्थनपीरबक्ष यानीं धृपद धमाराच्या धर्तीवर ख्याल अस्ताई चिजा बांधल्या. त्यामुळें त्या चीजा वजनदार व राग शुद्ध स्वरूपाच्या बांधल्या गेल्या; श्रोत्यांच्या मनावर नवीनच परीणाम करणारा हा प्रकार निर्माण केला गेल्यामुळें तो सर्व हिंदुस्थानमध्यें फार प्रसिद्ध झाला

खां साहेब धग्गे खुदाबक्ष

शामरंग यांना जगुखां, सस्सूखां, गुलाबखां व धग्गे खुदाबक्ष असे चार मुलगे होते. या चौघापैकीं पहीलें तीन हे धृपद धमार गाण्यांत फार तयार होते. चौथे धग्गे खुदाबक्ष याचा आवाज चांगला नसल्यामुळें त्यांच्या बंधू पैकीं कोणीही त्यांना गाणे शिकविलें नाहीं. त्यांच्या मतें धग्गे खुदावक्ष यांना गाणें येणे शक्य नाहीं. परंतु धग्गे–खुदाबक्षांना गाणें शिकण्याची तीव्र इच्छा होती व त्यांनीं त्यासाठीं फार प्रयत्न केलें पण कांहीच जमेना ! विचार करतां करतां त्यांना नथ्थनपीरबक्ष यांची आठवण झाली. नथ्थन पीरबक्ष त्यावेळीं ग्वाल्हेर दरबारी नोकरीस होते, म्हणून धग्गे खुदाबक्ष कोणालाही न सांगतां ग्वाल्हेरला पळून गेले. तेथें त्यानां नथ्थनपीरबक्ष यांची भेट घेतली. धग्गे खुदाबक्षांना पाहिल्याबरोबर नथ्थन परिबक्ष यांना आश्चर्य वाटले ! त्यांचे यथायोग्य आदरातिथ्य करून त्यांना ग्वाल्हेरला येण्याचे कारण विचारलें. तेव्हां धग्गेखुदाबक्षानीं आपली सर्व परिस्थिती सांगून गाणें शिकण्याची तीव्र मनीषा प्रगट केली. नथ्थन परिबक्ष यानीं त्यांना गाणें शिकविण्याचे कबूल केले. फक्त आवाजांत फार दोष असल्यामुळें मेहनत फार करावी लागेल असें त्यांना सांगून आपल्या घरीं ठेवून घेतलें. धग्गेखुदाबक्षांना पाहीजे असलेली संधी मिळाल्यामुळें त्यांना फार आनंद झाला ! व त्यानीं कसून मेहनत करण्यास सुरवात केली. सतत सुमारें पंधरा वर्षे नथ्थन परिबक्ष यांची उत्तम प्रकारची तालीम व कसून मेहनत यामुळें धग्गेखुदाबक्षांचा फारच चांगली तयारी झाली. नंतर गुरूंचा आशिर्वाद घेऊन धग्गेखुदाबक्ष बाहेर पडले. ठिकठिकाणीं गाणां होऊन धग्गेखुदाबक्षांची फार प्रसिद्धी होऊं लागली. त्यांच्या गाण्यांत सहोसही परिबक्ष याचं गाणं दिसू लागलं नथ्थन परिबक्ष याचे नातू हद्दुखां यांनीं धग्गे खुदाबक्षांचे गाणे म्हणजे सहीं सहीं आपले आजोबा नथ्थन परिबक्ष याचे गाणें असें पुष्कळ वेळां म्हटले आहे. थोडयाच दिवसांत याचं नांव सर्व हिंदुस्थानभर झाले. त्याचं नांव ऐकून अलवार संस्थानचे महाराज सौदानसींग यानीं आपल्या दरबारांत धग्गे खुदाबक्षांचे गाणें केलें. गाणें ऐकून महाराज फार खुष झाले व त्यांनीं धग्गे खुदाबक्षांना जयपूरचे महाराज सवाई रामसींग यांचेकडे पाठविलें. त्यावेळीं जयपूर दरबारांत बिनकार, रजबअली खांसाहेब, सतार नवाज अमृतसेनजी, कवाल बच्चे मुबारकअली, प्रसिद्ध धृपदीया, पंडित बहीरामखान या सारखे नामांकित विद्वान व गुणी लोक होते. महाराज सुद्धां स्वत: चांगलें गात असत. त्यांना रजबअलीखां साहेबाची चांगली तालीम मिळाली होती. हे सर्व गुणी लोक व स्वतः महाराज धग्गेखुदाबक्षांचे गाणें ऐकून फार खूष झाले व महाराजानीं खां साहेबांना आपल्या पदरीं ठेवून घेतलें.

एकदां रामपूरचे नबाब कलबे अल्ली खां यांच्या जवळ त्यांच्या पदरीं असलेलें गवई बहादूर हुसेन खां यांनीं नबाबसाहेबाजवळ धग्गेखुदाबक्षांची तारीफ केली. स्वतः नबाबानीं सुद्धां गाण्याचा चांगला अभ्यास केला होता. धग्गेखुदाबक्षांची तारीफ ऐकून नबाबानी त्यांना आमंत्रण केलें व त्यांचा गाण्याचा प्रोग्राम आपल्या अगदी खाजगीमध्यें ठरविला. गाण्याला मोजके लोक बोलाविलें होते. हे दिवस उन्हाळ्यांचे व गाण्याचा वेळ दुपारीं एक वाजण्याच्या सुमाराचा असल्यामुळें नबाबानीं ही बैठक आपल्या खसखान्यांत ठेवली. खसखान्याच्या चारी बाजूनीं केवडा गुलाबपाणी शिंपडलेलें होते व वाळ्याचें पंखे चारी बाजूनीं वाऱ्यासाठीं हालत होतें. त्यामुळें खसखान्याची हवा मनपसंत थंड झाली होती. अशा सर्व थाटांत खांसाहेबांचे गाणें सुरू झालें. खांसाहेबानीं आपला अगदी आवडता हातखंडा गौडसारंग राग गाण्यास सुरवात केली. पण या हवेच्या गारवातावरणामुळें खांसाहेबांच्या आवाजावर परीणाम झाला व कांहीं केल्या आवाज लागेना. नबाब साहेब गाणें ऐकून कंटाळलें, खांसाहेबानीं कसून प्रयत्न केला पण छे मजाच येईना. नबाब साहेबाच्या शेजारीच मागच्या बाजूस धग्गे खुदाबक्षांची तारीफ करणारें गवईबहादूर हुसेन खां बसले होतें. त्याच्या बरोबर नबाब साहेबांचे कुजबुजणें सुरू झालें. आणि खां साहेबांना इकडे आतां आपली अब्रू जाते म्हणून दरदरून घाम सुटलेला ! इतक्यांत खांसाहेबांच्या मागें तंबोरा घेऊन बसलेलें त्यांचे चिरजीव गुलाम आबास यांनीं खांसाहेबांची मध्येंच एक तान पकडून फार मजेदारपणें पुरी करण्याचा सुंदर प्रयत्न केला. या गोष्टीचा खांसाहेबांना राग येऊन त्या रागाच्या आवेशात जोरकस आवाज लावला व त्या जोरकसपणामुळें घशांत आलेला दोष निघून गेला. मग काय विचारतां जी मजा येण्यास सुरवांत झाली, वा ! खां साहेबांचे गाणें पुढें इतकें रंगलें कीं, नबाबसाहेब, " शुभान अल्ला क्या कहूं ! " असे म्हणून खांसाहेबांच्या अगदी जवळ येवून बसले.

खां साहेब धग्गे खुदाबक्ष जन्मभर जयपूर दरबारींच होते. दरबारचे सर्व गुणी लोक खां साहेबावर फार प्रेम करीत व त्यांच्याबद्दल अभीमान बाळगीत असत. महाराज रामसींगच्या दरबारांत नेहमीं गाणें हे चालत असेच पण मधुन मधुन गायन विषयावर चर्चाही होत असे. अशीच एकदां गाण्याची मैफल होती, तेव्हां बहीराम खांसाहेब स्वतःबद्दल मोठ्या अभीमानानें म्हणालें "महाराज ईश्वर जेव्हां गायन विद्येचे दान करीत होता तेव्हां त्या ठिकाणीं फक्त मीं एकटांच हजर होतो. बाकी कोणींही त्या ठिकाणी नव्हते. त्यामुळें खरी गाण्याची शैली मलाच मिळाली आहे. " हे खां साहेबांचे बोलणें धग्गे खुदाबक्षांना रुचलें नाहीं व ते म्हणालें महाराज " खां साहेब म्हणतात ते खरे आहे ! पण गायन विद्येचे दान जेव्हां परमेश्वर करीत होता, तेव्हां त्या ठिकाणीं फक्त मीच एकटा हजर होतो बाकी हे सर्व त्या ठिकाणी गैरहजर होते " हें ऐकून महाराज खुष झालें.

खां कल्लन खां

धग्गे खुदाबक्षांना गुलाम आबास व कल्लन खां असे दोन मुलगे होते. गुलाम आबास हे नथ्थन परिबक्षांचा ख्याल गायकी अगदी सही सही गात होते. त्यांना हिंदुस्थान मधील सर्व राजे लोकांकडून नोकरीसाठीं आमंत्रण होते पण ते स्वतंत्र वृत्तीचे असल्यामुळें कुठेच नोकरीस राहीले नाहींत. खां साहेब कल्लन खां यांना जयपूरचे न्यायाधीश विश्वंबरदीनय ह्यांकडून संगीत शास्त्र ग्रंथांतील चांगली माहीती मिळाली होती. विश्वंबरदिन हे धग्गे खुदाबक्षांचे शागीर्द होते. खां साहेब कल्लन खां यानी गायनाचा फार प्रचार केला. आपल्या सर्वांच्या सुपरीचीत खां, फैयाज खां, गु. विलायत हुसेन खां, गु० खादीन हुसेन खां यांना कल्लन खां यांची तालीम मिळाली आहे. कल्लन खां जयपूर दरबारी नोकरीस होते.

खां साहेब शेर खां

जंगु खां साहेबांचे चिरंजीव शेर खां हे फारच तयारीनें व तडफदारीनें गात असत. ते फार महत्वाकांक्षी व हिम्मतवान होते. ते एकदां मुद्दाम आपलें गाणें खां साहेब हद्दू खां यांना ऐकविण्यासाठीं ग्वाल्हेरला गेले, तेथें तें एका सराईमध्यें (लॉजींग बोर्डींग) उतरलें व तेथेंच गाईले. त्यांचे गाणें ऐकण्यासाठीं खां साहेब हद्दू खां हत्तीवर बसून सराईमध्यें आलें व शेर खांचे गाणें ऐकून फार खुष झालें, आपल्या गाण्यांत नथ्थन पीरबक्ष यांचे गाणें दिसते असें हद्द खां यानीं बोलून दाखविलें. नंतर त्यानीं शेरखांना आपल्या घरीं नेवून त्यांचे योग्य आदरातिथ्य केलें.

खां साहेब फैयाज खां

गुलाम आबास यांना फक्त दोन मुली होत्या. त्यांच्या मोठ्या मुलीचे चिरंजीव फैयाज खां यांच्या वडीलांचे नांव सफदर हुसेनखां, हे चांगलें ख्याल गायक होते. परंतु हे फार तरूणपणी वारल्यामुळें फारसे प्रसीद्धीस आलें नाहींत. खां साहेब रमझान खां रंगीले यांचे

चिरंजीव महंमद अली यांचे चिरंजीव सफदर हुसेन खां. रमझान रंगीले हे उत्तम कवी सुद्धां होते. यांच्या चीजा अजून आपणास ऐकण्यास मिळतात. त्यांच्या चीजांत त्यानीं रंगीले हे नांव दिले आहे. सफदर हुसेन खां अकालीं वारल्यामुळें फैयाज खां यांचे शिक्षण त्यांच्या आजोळी त्यांचे आजोबा गुलाम अबास यांच्या जवळ झालें. त्याचप्रमाणें फैयाज खां यांना कल्लन खां यांची सुद्धां तालीम मिळाली आहे.

खां फैयाजखां यांचे १९०७ साली दसऱ्यास म्हैसुरच्या महाराजानीं दरबारमध्यें गाणें केलें त्यावेळीं साथीला तंबोरा घेवून गु० विलायत हुसेनखां बसले होते. म्हैसुरचे महाराज गाणें ऐकून फार खुष झालें व खांसाहेबांना सुवर्ण पदक व पोशाक बक्षीस देवून त्यांचा त्यांनी गौरव केला,

बडोद्याचे जुने दरबार गवई फैज महंमदखां वृद्ध झाल्यामुळें श्रीमंत सयाजीराव महाराजानीं हिंदुस्थान मधून चांगला योग्य गवई शोधून आणण्यासाठीं फैज महंमदखां यांना पाठविलें. ते सर्व गवयांना ऐकत ऐकत शेवटीं आग्र्याला आले व तेथें त्यानीं फैयाजखां यांचे गाणें ऐकलें. गाणें ऐकून खुष होऊन ते बडोद्यास गेले. नंतर श्रीमंत सयाजीराव महाराजांची भेट घेऊन त्यानीं फैयाजखां यांची स्तुती केली व बडोदें दरबारला फैयाजखांच फक्त लायक असल्याबद्दल सांगितलें. तेव्हां श्रीमंत सयाजीराव महाराजांनी फैयाजखां यांना बोलावून त्यांचे गाणें ऐकलें व दरबारमध्यें दरबार गवई म्हणून ठेवल्यास काय पगार घ्याल म्हणून विचारलें. त्यावेळीं फारच स्वस्ताई होती. चांगला गवय्या असला तर त्याला फार फार झालीं तर रु. ५० बिदागी मिळत असे. अशी परिस्थीती होती तरी खांसाहेबांनी शंभर रुपये पगार घेईन म्हणून सांगितलें. खांसाहेब घरीं आल्यावर त्यांचे दत्तक वडील गुलाम अबास यांना ही गोष्ट समजली. तेव्हां ते फार रागावलें कारण हा पगार फारच कमी होता. शेवटी ठरल्याप्रमाणें खांसाहेब फैयाजखां हे बडोदे दरबारी नोकरीस राहिलें. श्रीमंत सरकार सयाजीराव महाराज जाणकर असल्यामुळें पुढें पुढें त्यांनीं खांसाहेबांच्या पगारांत वेळोवेळीं वाढ केली. फैयाज खांसाहेबांची बऱ्याच ठिकाणीं राजे रजवाड्यांत गाणीं होऊन त्यांना पुष्कळ मानाचे किताब व बक्षिसें मिळाली आहेत. म्हैसुर दरबारकडुन आफताबे मुसीकी (संगीत भास्कर) असी पदवी मिळाली. लखनौ मॉरीस कॉलेजमधून संगीत रत्नाकर, बनारस कॉन्फरन्समध्यें संगीत चुडामणी मुंबईच्या मेयर साहेबाकडुन संगीत सम्राट, कलकत्त्याला गायन सम्राट गायकवाडकडुन ज्ञानरत्नअश्या बऱ्याच पदव्या फैयाजखां यांना मिळाल्या आहेत.

इंदोरच्या तुकोजीराव महाराजानीं मौल्यवान हिऱ्याचा कंठा बक्षिस दिला. त्याचप्रमाणें खांसाहेबांना इंदूर, म्हैसूर, बडोदा दरबारमध्यें मानाची खुर्ची मिळाली आहे.

एकदां हर हायनेस चिमणादेवी (बडोदे) यांच्याबरोबर पं० भातखंडे काश्मीरला गेले होते. फैयाजखां सोबत होतेच तेथें ही सर्व मंडळी गुलमर्गमध्यें एक महिना होती तेथें फैयाजखां यांचे गाणें एक महिना सारखें चालू होतें. पं० भातखंड्यांना त्यांनी साधा यमन दररोज निरानिराळ्या तऱ्हेनें सतत एक महिना ऐकविला. पं० भातखंडे त्यांच्या गाण्यावर बेहद्द खुष झालें, ते ज्यावेळीं मुंबईस आलें त्यावेळीं गु० विलायत हुसेनखां यांना चौपाटीवर भेटलें. तेव्हां त्यांनीं फैयाजखांबद्दल फार तारीफ केली. पाहिल्यापासून पं० भातखंडे यांच्यावर खां फैयाजखां यांच्या गाण्याची छाप होतीच, पण काश्मीरच्या मुक्कामामुळें त्यांच्यावर आणखीं परिणाम झाला. ते म्हणालें मी पुष्कळ गवई ऐकलें परंतु फैयाजखां सारखें रत्न फार विरळा. पं० भातखंडे यांनी आपले पट्टशिष्य श्री. रातंजनकर याना खां फैयाजखांकडे पाठवून तीन वर्षे त्यांच्या जवळुन तालीम घेवविली व पुढें ते सध्यां लखनौ मॉरीस कॉलेजचे प्रिन्सीपॉल आहेत. श्री. कृष्णराव रातंनजनकर, दिलीपचंद वेदी (हे पंजाबला असतात) एस. के. चोबे हे (लखनौ) आता हुसेनखां हे त्यांचे मेहुणे सध्यां कलकत्त्याला आहेत. असदअल्लीखां दिल्लीला आहेत. स्वामी वल्लभदास अहमदाबादेस वगैरे खां साहेबाचे नामांकीत शिष्य सर्वांच्या परिचयाचे आहेत.

लखनौच्या बाजूस सोजस्वानी म्हणून मुसलमानी धर्मामध्यें मोहरमची गीते म्हणून म्हणतात. ती सुद्धां खांसाहेब फार सुंदर गातात. एका मोहरमच्या प्रसंगीं लखनौचे प्रसिद्ध गाणारे मर्से अरव्वानी आसोसवाले यानी खांसाहेबांना मोठा मान देऊन एक हजार रुपये बिदागी दिली.

खां फैयाज खां यांनीं पुष्कळ रागांत बऱ्याच चिजापण बांधल्या आहेत. जैजैवंती, गारा, सुतसारंग, सुरमल्हार, मालकौंस, तिलक कामोद, रामकली, बिहारी, कल्याण वगैरे रागातील अनेक चीजा प्रसिद्ध आहेत. त्यांनी आपल्या चीजांत "प्रेम पीया" हें नांव दिलें आहे.

खां साहेब तसद्दु हुसेनखां

कल्लनखां साहेबांचे चिरंजीव तसद्दु हुसेनखां, यांना संगीत शास्त्राची फार चांगली माहिती होती. त्यांनी आपले आयुष्य संगीत संशोधनात घालविलें. पुष्कळ परिश्रम करून त्यांनी संगीत शास्त्रावर एक चांगला ग्रंथ लिहिला, पण त्यांचा अंत झाल्यामुळें तो ग्रंथ प्रसिद्ध होऊं शकला नाहीं.

खांसाहेब नथ्थनखां

शेरखांचे चिरंजीव नथ्थनखां लहानपणापासूनच फारच चांगले तयारीनें गात होते. यांना त्यांचे चुलते गुलाम आबास यांच्या कडून चांगली तालीम मिळालेली होती. शिवाय यांचे दुसरे चुलते ख्वाजाबक्ष दिल्ली दरबारचे गवई व दुसरे घसदिखां होरी धमार गायक यांच्याकडुन सुद्धां फार चांगली भरपूर तालीम मिळाली होती॰ या तीघांच्या तालमीमुळें खांसाहेब नथ्थन खां यांची फारच चांगली तयारी झाली होती. यांची लयीची तान, आकार तान बोलताना असी साफ व भरदार होती कीं, सर्व मोठमोठ्या गवयांनी ती मानली आहे. त्यांच्या साथीस साधारण तबलजी बसण्यास धजत नसे असे ते लयीचे फार पक्के होते व फार आड लयीनें गात असत. उत्तर हिंदुस्थानांतून महाराष्ट्रात येऊन महाराष्ट्रीयांना यानीच गाण्याची चटक लाविली. यांच्या नामांकित शिष्यांत दोन अग्रगण्य शिष्य म्हणजे स्व० भास्करबुवा बखले व गोव्याच्या बावलीबाई भास्करबुवानीं आपल्या घराण्याची फार कीर्ती वाढविली, यांनी सर्व दक्षिण व उत्तर हिंदुस्थानात ठिक-ठिकाणीं गाऊन कमालीचे नांव कमविले व आपल्या गाण्यानें लोकांना तल्लीन करून सोडले. त्यांचे शिष्य, मा० कृष्णराव फुलंब्रीकर, बालगंधर्व, श्री. गोविंदराव टेंबे वगैरे पुष्कळ नामांकित लोक आहेत. नथ्थन खां हे शेवटीं म्हैसुर दरबारी नोकरीस राहीलें तीथे सतरा वर्षे नोकरी करून शेवटीं तेथेच त्यांनी देह ठेवला. ते कोल्हापूरला फार जात असत. त्यांना आपल्या शिष्याबद्दल फार अभिमान व प्रेम असे. खांसाहेब नथ्थनखां यांचे मोठे चिरंजीव महमदखां हे मोठे विद्वान होते. यांच्याजवळ चिजांचा फार भरणा होता. एक गोष्ट सांगतात कीं, कोणाहीं गवयास कोणतीही चीज पाहीजे असल्यास ती महंमदखांजवळ मिळे. परंतु ते स्वभावाचे फारच तापट होते, कोणी चीज मागण्यास गेला तर पहील्यानें त्यला चार शिव्या हासडुन त्याची पहिली हजेरी घेत व मग त्याला चीज सांगत, मात्र केव्हांही त्यांनीं कोणाला विन्मुख पाठविलें नाहीं. त्यांचे मागचे बंधु अबदुल्ला खां हें सुद्धां फार तयारीनें गात असत. हे एकदां दिल्लीच्या प्रसिद्ध मैफलित गाऊन त्यांनीं आपलें गाण्यानें तेथील सर्व गवई लोकांना थक्क करून सोडले आहे. यांच्या गाण्याची छाया अजून फैयाज खां यांच्या गाण्यांत दिसते. यांच्या मागचे बंधु सदीकखा परंतु हे फार तरुणपणी वारले.

गुरुवर्य खांसाहेब विलायत हुसेनखां

खांसाहेब नथ्थनखांचे चौथे चिरंजीव म्हणजे गु० विलायत हुसेन खां यांचे शिक्षण पहील्यानें जयपूरचे महंमदबक्ष यांच्याकडे झालें. गु० विलायत खांसाहेबांनीं आजोबाच्या चुलत भावानें म्हणजे खांसाहेब महंमदबक्ष यांनीं दत्तक घेतलें. ते जयपूरला नोकरीस होते म्हणून गु० विलायत खांसाहेबांना त्यांनी जयपूरला नेलें व अलापीला सुरवात केली. परंतु हे फार वयस्कर असल्यामुळें त्यांचा जास्त वेळ ईश्वर प्रार्थनेंत जात असे, त्यामुळें त्याना मुलाना तालीम देण्यास वेळ पुरत नसे म्हणून त्यानीं आपल्या भावाचे शिष्य करामतखां यांना गु० विलायतखां यांना तालीम देण्यास सांगितलें. करामतखां हे जयपूरलाच नोकरीस होते. यांच्याकडेच नोम थोम, ध्रुपद, धमार याचा तालीम मिळाली व दूसरे चुलत आजे कल्लनखां यांच्याजवळ अस्ताई ख्यालाची तालीम मिळाली. त्याच वेळीं हींदी उर्दु पाठ शाळेत गु० विलायत खां यांना पाठविण्यांत आलें. तेथें थोडे फार शिक्षण झालें. वयाच्या विसाव्या वर्षापासून गु० खां विलायतखां यांनीं आपल्या विद्वत्तेनें व गाण्याच्या तयारीनें, लोकांना खुष केलें बऱ्याच ठिकाणीं यांना बक्षीसें व पदव्या मिळाल्या आहेत म्हैसूर दरबार कडून यांन संगीताचार्य, बनारसला संगीत रत्नाकर अशी पदवी मिळाली आहे. खांसाहेबांना म्हैसूर व जयपुर दरबारीं नोकरी होती, परंतु तिथे त्यांचे मन लागेना म्हणून त्यानीं त्या नोकऱ्या सोडुन ते मुंबईस येऊन शिकवण्या करूं लागले. खासाहेबांनीं बऱ्याच सुंदर चिजा, ध्रुपद धमार, पण बांधलें आहेत. त्यांच्या परी, मोरी, नांव, मारूबिहाग, 'मैं वारी वारी जाऊंगी' यमन, 'अजहून आये शाम' भिमपलास अशा बऱ्याच चिजा प्रसिद्ध आहेत. त्यांनीं चिजात प्राण हे आपलें नाव दिलें आहे गु० खा० विलायतखां यांचा शिक्षण देण्याची पद्धत फारच चांगली आहे. ते आपल्या शिष्यांना फार प्रेमानें शिकवितात. त्यांच्यासारखी शिकविण्याची हातोटी हल्लीच्या लोकांत कमी असेल असें मला वाटते. गु० विलायत खां याची तालीम माझी पत्नी सौ० सुशीलाबाईनां मिळत असल्यामुळें त्यांच्या तालमिंत शिष्य कसे चांगल्याप्रकारे लौकर तयार होतात हा मला स्वतःला अनुभव आहे. लोकांना कदाचित ही अतिशयोक्ती वाटेल, पण माझे मात्र खांसाहेबाबद्दल वरील प्रांजल मत आहे. खां साहेबांचा शिष्यवर्ग फार मोठा व प्रसिद्ध आहे. इंदिराबाई वाडकर, सरस्वतीबाई फातर्पेकर, श्रीमती-बाई नार्वेकर, रत्नकांत रामनाथकर, हे ध्रुपद धमार अस्ताई ख्याल फार चांगले गातात. कोल्हापूरचे श्रीगजाननबुवा पुरोहीत, श्रीकागल-करबुवा, पेटीवादन पटु वाळवेकर, श्री. सीताराम फातर्पेकर असा बराच मोठा शिष्यवर्ग आहे. परमेश्वर खां साहेबाना उदंड आयुष्य देवो अशी परमेश्वरचरणी प्रार्थना करून मी वाचकांची रजा घेतो.

राग मीन

[स्वरकार:– गो. तु. भातकुलीकर " संगीतकलाभिज्ञ "
संगीत अध्यापक–नेशनल हाईस्कूल काँधला (मुजफ्फरनगर)]

दोहा:— धैवत री गंधारमृदु, मध्यम–नी कर हीन।
प स वादी संवादि ते, गावत गुनी जन मीन ॥

यह एक अप्रसिद्ध 'तोडी' मेलोत्पन्न राग है। इसे स्वर श्री. गुरुवर्य पं. विष्णु दिगम्बर पलुस्करजी के शिष्य व मेरे पूज्य पिता पं. तुकारामपंत भातकुलीकरजी 'संगीतविशारद' ने प्रचार में लाया। इस में मध्यम व निषाद स्वर संपूर्णत: वर्ज हैं, तथा रिषभ, गंधार व धैवत स्वर कोमल है। इसका वादी-स्वर पंचम और संवादी स्वर षड्ज है। रे प; ग ध ऽ प; यह स्वर संगतियाँ इस में अत्यंत रोचक व आवश्यक है। यह राग अत्यंत धीर-गंभीर, शान्त तथा गमक और मीड प्रधान है। समय दीनका पहला प्रहर है। पकडा:- ग रे ऽ ग रे ऽ सा ऽ ऽ ऽ, ध सा रे ग ऽ रे प ऽ ऽ ग ध प ऽऽ रे ग रे सा ऽ ऽ ऽ।

राग मीन–एकताल (लक्षण–गीत)

मृदु गंधार-री धैवत। प स वादी संवादि कहत ॥धृ॥
तोडीमें म–नि त्यजत। 'गोविंद' प्रात मीन भणत ॥

स्थाई

ध सा^स	रे^ग – ग	— रे	रे प	^प ग ध	प प
मृ दु	गं धा	ऽ र	री ऽ	धै ऽ	व त
×	०	२	०	३	४
प सां	^सं ध –	प ग	^सं ध प	^प ग रे ग	रे सा
प सा	वा ऽ	दी सं	वा ऽ	दि क ऽ	ह त
×	०	२	०	३	४

अन्तरा

^प ग रे	प —	^प ग ध	प ग प	ध रे	सां सां
तो ऽ	डी ऽ	मैं ऽ	म नी ऽ	त्य ज	ऽ त
×	०	२	०	३	४
गं रें गं	^गं रें सां	– ^सां ध	प ध	प ग प	ग रे स
गो ऽ वि	न्द प्रा	ऽ त	मी ऽ	न म ऽ	ण ऽ त
×	०	२	०	३	४

——

राग मीन–त्रिताल [मध्यलय]

अब का सोवै सखि! जाग जागे।
रैन बिहात जात रस बिरियाँ, चोलीके बँद ताग ताग॥धृ॥
जोबन उमँग सफल कर बौरी, आन–कान सब त्याग त्या।
ललित किसोरी लूट अनँदवा, पीतम के गर लाग लाग॥

स्थायी

^प ग रे
अ ब

^रे प – ^ग –रे ग	रे सा ग रे	ग प ग ध	प प, ग रे
का ऽ सो ऽ	वै ऽ स खि	जा ऽ ग जा	ऽ ग अ ब
×	२	०	३
ग ध ध ध	प – प ^प ग	प ग ^ग –रे ग	रे रे सा –
रै ऽ न बि	हा ऽ त जा	ऽ त र स	बि रि याँ ऽ
×	२	०	३
सा रे ग –	^ग –रे ^ग –रे सा सा	ग रे रे प	ध प, ग रे
चो ऽ ली ऽ	के ऽ बँ द	ता ऽ ग ता	ऽ ग, अ ब
×	२	०	३

अन्तरा १

^सं ध – प प	ध प ^प ग प	ध ध प ध	^गं –रें – सा –
जो ऽ ब न	उ मँ ग स	फ ल क र	बा ऽ री ऽ
×	२	०	३
^गं रें – ^मं रें सां	– सां ^मं ध प	ग प ग ध	प प, ग रे
आ ऽ न का	ऽ न स ब	त्या ऽ ग त्या	ऽ ग, अ ब
×	२	०	३

अन्तरा २

^पं ग प ^सं ध सां	^गं रें – सां –	ध सां रें गं	रें पं ^गं रें गं
ल लि त की	सो ऽ री ऽ	लू ऽ ट अ	नँ द वा ऽ
×	२	०	३
रें गं ^गं –रें ^गं –रें	सां — ध प	^प ग प ग ध	प प, ग रे
पी ऽ त म	के ऽ ग र	ला ऽ ग ला	ऽ ग, अ ब
×	२	०	३

——

★ रेडिओ केंद्रे व कलावंत ★

(लेखक— स. कृ. जोशी, बी. ए. एलएल. बी. वकील, सातारा.)

आधुनिक युगांत रेडिओ हें ज्ञान प्रसाराचें व कलाप्रसाराचें फार मोठें व प्रभावी साधन आहे. जगांत सर्व मोठमोठ्या देशांत अनेक ठिकाणीं रेडिओकेंद्रे आहेत. हिंदुस्थानांत ऑल इंडिआ रेडिओ या सरकारी व्यवस्थतेखालीं—दिल्ली, जालंदर, मुंबई, कलकत्ता, लखनौ, पाटणा, कटक, त्रिचनापल्ली व मद्रास या ठिकाणीं रेडिओकेंद्रे असून शिवाय हैद्राबाद, औरंगाबाद, म्हैसूर व बडोदे वगैरे ठिकाणीं संस्थानांतर्फे चालविलीं जाणारीं रेडिओ-केंद्रें आहेत.

रेडिओ कार्यक्रम ऐकणाऱ्या जनतेला (Listeners) रेडिओ कार्यक्रम ऐकण्यापलिकडे प्रत्यक्ष रेडिओ केंद्रांची व्यवस्था व कलावंतांचें तेथील प्रत्यक्ष अनुभव यांचा कांहींच माहिती नसते. मात्र ते जाणण्याची अनेकांना उत्सुकता असते. माझासंबंध मुंबई रेडिओ केंद्राशी बऱ्याच वर्षांचा असल्यामुळें सदर केंद्राची माहीती अनुभव व कांहीं सूचना संगीतप्रेमी वाचकांपुढें मांडल्यास अस्थायी होणार नाहींत असें वाटते.

मुंबई रेडिओ केंद्र

मुंबईचें रेडिओकेंद्र क्विन्सरोडवर मरीन लाईन स्टेशनपासून अर्ध्या फर्लांगाचे अंतरावर सेंट्रल गव्हर्मेंट बिल्डिंगमध्यें तिसऱ्या व चवथ्या मजल्यावर आहे. तिसऱ्या मजल्यावर रेडिओ ऑफिसच्या निरनिराळ्या शाखाधिकाऱ्यांच्या कचेऱ्या असून चवथ्या मजल्यावर स्टुडिओ व वेटिंगरूम्स आहेत. निरनिराळ्या कार्यक्रमाकरता सुमारें १२ साउंडप्रुफ व एअरकंडिशन्ड असे अत्यंत सुसज्ज स्टुडिओ आहेत. याठिकाणीं फक्त कार्यक्रम घेतले (Receive) केले जातात परंतु सर्व कार्यक्रम वरळी येथील (Transmitting Station) मधून ध्वनिक्षेपित (broadcast) केले जातात.

संगीत कार्यक्रम

रेडिओकेंद्रावर कार्यक्रम मिळविण्याकरतां कलावंतांची प्रथम चाचणी (Trial) घेतली जाते. या चाचणींत पसंत नसलेल्या लोकांना ' आवाज मायक्रोफोन ला योग्य नाहीं ' असे ठराविक साच्याचे उत्तर पाठविले जाते. त्यांतून ज्यांना निवडले जाते ' सवड होताच कार्यक्रम देऊ ' असे कळविले जाते. कलावंत निवडण्याबाबत रेडिओ चालकांचे निश्चित धोरण काय आहे तें कळत नाहीं. कारण कांहीं लोकांना पसंत कां केले जाते तें समजत नाहीं व कांहीं पसंत होण्यासारख्या लायक लोकांना कार्यक्रम मिळत नाहींत. याबाबत एखादी तज्ज्ञांची कमेटी असणे जरूर आहे. अशा पसंत केलेल्या कलावंतांची सुमारें ९०० ते १००० एवढी नोंद मुंबई रेडिओ केंद्रावर आहे असे समजतें. याकलावंतांचे पैकीं कांहीं कायमचे (Permanent) व कांहींना कधीतरी कार्यक्रम मिळतात असे (Cadual) दोन प्रकारचे कलावंत आहेत. तसेच धंदेवाईक (Professional) व हौशी (Amateurs) असेही दोन प्रकारचे कलावंत असतात. प्रथमतः रेडिओकेंद्राकडून कलावंताकडे करारपत्र (Contract form) पाठविले जाते व त्यांत कार्यक्रमाची तारीख, वेळा व कलावंताचा मुशाहिरा कळविला जातो. यावर करारपत्राचे मागें अनेक अटी छापलेल्या असतात. कलावंतांचे पैकीं बरेचसे निरक्षर व इंग्रजी न जाणणारे असल्यामुळें या अटींची त्यानां माहिती नसते. यापैकीं कांहीं अटी कलावंताचेवर जबाबदारी टाकणाऱ्या व थोड्याफार नुकसानीच्या आहेत. त्याबाबत अर्थात कलावंतांचे कडून विचार विनिमय होऊन सामुदायिकरीत्या दाद लावून घेणे जरूर आहे. उदाहरणार्थ एक अट अशी आहे कीं कोणत्याहि कलावंताचा कार्यक्रम ध्वनिमुद्रिक करून (record) तो पुन्हा ध्वनिक्षेपित (Broadcast) करण्याचा हक्क रेडिओकेंद्राने आपणाकडे राखून ठेवला आहे. वास्तविक कलावंताचे दृष्टीनें ही नुकसानीची बाब आहे कारण कलावंतास अशा ध्वनिमुद्रित कार्य-

क्रम (Broadcast) करणेबद्दल फार कमी मुशाहिरा मिळतो. वरीलप्रमाणें अटींचा करारनामा कार्यक्रमाचे पूर्वी सुमारे १॥ ते २ महिने अगाऊ पाठविला जातो व कलावंताने ताबडतोब सदर करारनाम्यावर सही करून आपण कोणत्या चिजा गाणार त्याबाबत चिजा देऊन संपूर्ण माहिती कळवावी लागते.

कॉपीराईटची अडचण

चिजा पाठविताना कॉपीराईटची अडचण येते. सांप्रदायिक (Traditional) चिजाबाबत ही अडचण नसते. मात्र मराठी अगर तत्सम इतर भाषेतील चिजा गवयाच्या असल्यास त्या चिजा रचना करणारांची कलावंताने परवानगी घेऊन ती चिजासोबत पाठवावी लागते. ही गोष्ट कलावंताचेदृष्टीने त्रासदायक आहे. कांहीं नाटकांतहि पद्यांबाबत रेडिओ केंद्राने अलीकडे परवानगी घेऊन ठेवली आहे परंतु अशी पद्ये फारच थोडी आहेत. याबाबत रेडिओ केंद्राचे चालकांनी परस्पर व्यवस्थाकरून कलावंतांची गैरसोय दूर करणे जरूर आहे.

वरीलप्रमाणें करारपत्र व चिजा रेडिओ केंद्राकडे पाठविल्यानंतर कार्यक्रमाच अगोदर सुमारें १५ दिवस नक्की वेळा व कायम केलेल्या चिजा कलावंतास कळविल्या जातात. याहीबाबत रेडिओ केंद्राकडून जरुर ती तत्परता नेहमी पाळली जात नाहीं. कांहीं वेळा ही समज फारच उशीरा पाठविली जाते. तसेंच कलावंताने पाठविलेल्या चिजा (items) मध्ये बदल करून अगदीं निराळ्या चिजा त्यास आयत्यावेळीं कळविल्याजातात व अशा चिजा गाण्याची कलावंताची तयारी न होता त्या कशातरी गाईल्या जातात व कार्यक्रमाचा बेरंग होतो. याहीबाबत रेडिओ ऑफिसकडून दक्षता पाळली जाणें जरुर आहे.

कार्यक्रमाचा दिवस

प्रत्यक्ष कार्यक्रमाचे ठरलेल्या तारखेस कलावंतास कार्यक्रमाचे अगोदर अर्धातास रेडिओ केंद्रावर हजर रहावयाचें असते ही वेळ कार्यक्रमाचे तालमीकरतां (Rehearsal) योजिलेली असते, तथापि याप्रमाणे अगोदर अर्धातास क्वचितच तालीम घेतली जाते. कार्यक्रमाकरता कलावंतास वेळेवर स्टुडिओत नेण्याकरतां रेडिओ स्टेशनवर स्वतंत्र अधिकारी नेमलेलें असता याबाबत फारच अनास्था दिसून येते. जेमतेम १०–१२ मिनिटें अगोदर कलावंतास स्टुडिओत नेलें जाते. त्यानंतर हजर असतील त्या साथीदारांपैकीं कांहींना तेथें साथीकरता बोलावितात साथीदारांचे बाबतहि रेडिओ स्टेशनवर असावी तशी योजना मुळींच दिसत नाहीं. कलावंताचे मानाने त्यास साथीदार मिळतीलच असें नाहीं. साथीकरतां हार्मोनिअम हे वाद्य ऑल इंडिआ रेडिओने बहिष्कृत ठरविले असल्यामुळें स्वराचे तंबारे स्टॅंडर्ड व्हिसलवर घाईनें मिळविलें जातात. कांहीं वेळा अदमासानें ही तंबारे मिळवून दिले जातात व कलावंतास त्यामुळें योग्य तो स्वर न मिळाल्यामुळें कार्यक्रमाचा बेरंग होतो. साथीकरतां सारंगी व फिडल ही दोन वाद्यें असतात. सुरेल सारंगीची साथ ही खरोखर पोषक असते. परंतु सारंगी सुरेल मिळविण्याकरता जरुर तो पुरेसा अवधी न मिळाल्यामुळें कांहीं वेळां बेसुर साथीवर कलावंतास गावे लागतें व सुरेल हार्मोनिअमची माफक साथ यापेक्षां पुष्कळ बरी असेही वाटू लागतें. हार्मोनिअमचे साथीबाबत रेडिओकेंद्र चालकानी फेरविचार करणे जरुर आहे. श्री. बालगंधर्व व श्री. मास्टर कृष्णराव यांचे सारखे प्रथम श्रेणीचे कलावंत ऑर्गनचे साथीवर नेहमी गातात. परंतु अशाही कलावंतांना हार्मोनिअम बहिष्काराचा नियम रेडिओ केंद्रावर लागू करतात व इतर साथीचे गोंगाटात त्याना आपले कार्यक्रम पार पाडावे लागतात ! तसेंच संस्थानी रेडिओ स्टेशनवर व नेहमीचे गायनाचे कार्यक्रमास या साथीचा सर्रास उपयोग केला जात असताना रेडिओ केंद्रावर मात्र या वाद्यावर बहिष्कार कां असावा ? याहीबाबत कलावंताचेकडून सामुदायिक मागणी होणे जरूर आहे. फिडलचे साथीबाबतही कांहीं वेळां त्रासदायक अनुभव येतो. ही साथ करणारा अगाऊ वेळेवर न येता कार्यक्रम चालू असता मध्येंच प्रगटतो व कसेंतरी वाद्य टयून करून साथ करु लागतो. तबल्याचें साथीबाबतही असावी तशी व्यवस्था आढळत नाहीं. स्वराचा तबला न सांपडल्यास मध्यम अगर पंचमाचे तबल्यावर गावे लागते व विशिष्ट राग गायकीचे दृष्टीने ही साथ गैरसोयीची होते. साथी बाबतची अशा प्रकारची अनास्था दूर होणें अत्यंत जरूर आहे कारण त्यामुळे कार्यक्रमाचा बिघाड होतो. साथीची इतकी तंत्रे व्यवस्थित जमली तर कलावंतास आपला कार्यक्रम

व्यवस्थित पार पाडणें जमतें. तसेंच स्टुडिओमध्यें साथीदार व माईक पुढें कलावंत येवढीच माणसें असल्यामुळें 'कर्मण्येवाधिकारस्ते' या न्यायानें कलावंत आपला कार्यक्रम पार पाडीत असतो. कलावंतास लागणारें जरूर ते उत्तेजन देण्याकरता चार दोन माणसें हजर ठेवण्याची व्यवस्था झाल्यास कार्यक्रम अधिक उठावदार होतील, असे वाटते.

कार्यक्रमाच्या वेळा

कार्यक्रमाचे वेळाबाबतही निश्चित धोरण आढळत नाहीं. एकाच कलावंतास सकाळीं एक वेळ व संध्याकाळीं दोनवेळा असा कार्यक्रम कांहींवेळा दिला जातो. संध्याकाळचे दोन कार्यक्रमामध्यें बरेच अंतर असल्यास कलावंतास रेडिओ केंद्रावर तीन हेलपाटे मारावे लागतात. याबाबतही कलावंताचे सोयीचे दृष्टीने कार्यक्रमांची आखणी होणें जरुर आहे. कार्यक्रमास दिलेली वेळही बऱ्याच वेळा गैरसोईचा वाटतो. पंधरा मिनिटांचा अवधी मिळाला असल्यास त्यावेळात दोन चिजा गाणे धावपळीचे होते व एक चीज गाईल्यास कंटाळवाणी होते. विविधतेचे दृष्टीनेंही कार्यक्रमांत सुधारणा होणें जरुर आहे. रोज ठराविक वेळा त्याच त्या चिजा गाईल्या जातात व ऐकणारांना कार्यक्रम ठराविक साच्याचे व कंटाळवाणे वाटतात. तसेंच कलावंतासही त्यांची सुधारणा होणेचें दृष्टीनें त्याचे कार्यक्रमाचे गुण दोषाबद्दल सूचना मिळणें जरूर आहे व याकरता एखादी कमेटी असणे जरुर आहे.

कलावंतांचा मुशाहिरा

याबाबतची परिस्थिती तर वरील सर्व बाबीपेक्षां कमालीची असमाधानकारक आहे. कलावंतास मिळणाऱ्या मुशाहिऱ्याचें मान एकंदरीनें फारच कमी आहे. बरेंच कलावंत आपणास मिळणारा खरा मुशाहिरा सांगत नाहींत. सांगायचाच झाला तर तो फुगवून सांगतात. विशेषतः परगांवचें बऱ्याच कलावंताना प्रवासखर्च धरून मिळणारा मुशाहिरा फारच कमी मिळतो व तो दुसऱ्यास सांगणेंही कमीपणाचें वाटतें. याबाबत वैयक्तिक तक्रार केली असता दाद लागत नाहीं. तसेंच निरनिराळ्या कलावंताना मिळणाऱ्या मुशाहिऱ्याबाबत निश्चित धोरण कांहींच आढळत नाहीं. कलावंतांनीं सामुदायिकरीत्या याबाबत जोराचा प्रयत्न करून मुशाहिऱ्याची वाढ करून घेणे जरूर आहे.

पत्र व्यवहार

पत्र व्यवहाराबाबतही रेडिओ स्टेशनकडून मुळींच समाधानकारक व्यवस्था होत नाहीं. बहुतेक पत्रास उत्तरें मिळत नाहींत. करारपत्र पाठविल्यानंतर एखाद्या कलावंतानें योग्य कारणाकरता आपणास हजर राहाता येत नाहीं असे कळविले तरी त्यास बोलावणें केलें जातें. करारपत्र पाठविले असल्यानें त्यास नाईलाजानें हजर राहावें लागतें व प्रत्यक्ष तेथें गेल्यावर तुमचेंकरता बदली कार्यक्रमाची व्यवस्था केली आहे. तुम्हास येण्याचें कारण नव्हतें' असें त्यास वर सांगितलें जातें, हा सर्व घोटाळा पत्रव्यवहाराबाबत व्यवस्थितपणा नसल्यामुळें उद्भवतो व तो दूर होणें जरूर आहे.

संघटनेची जरुरी

कलावंतांना वरीलप्रमाणें अनेक प्रकारचें अनुभव येतात परंतु संघटणा नसल्यामुळें वरील तक्रारींची दाद कशी लागणार ! हल्लीचा काळ संघटनेचा आहे. परकीय सरकार जाऊन आपण स्वराज्यांत आहोंत. रेडिओ केंद्रांचे सुधारणेबाबत या स्वराज्याचें सुराज्य करणे कलावंतांचें कर्तव्य आहे याबाबत मुंबईचे स्थानिक कलावंतांनी संघटनेचा प्रयत्न प्रथम केला पाहिजे. परठिकाणचें कलावंत अशा संगटनेस जरुर येऊन मिळतील.

वरील विचार रेडिओकेंद्र संस्थेवर केवळ टीका म्हणून मांडलें नसून या संस्थेचें कारभारांत सुधारणा व्हावी याच केवळ प्रामाणिक हेतूनें दिलें आहेत. कलावंत वाचक याबाबत सहमत होतील व संघटणेस सुरवात करतील अशी लेखकास आशा आहे.

——:०:——

★ गांधर्व महाविद्यालय मंडल ✶

नासिक त्र्यैवार्षिक सम्मेलन का अहवाल

गांधर्व महाविद्यालय मंडल का त्र्यैवार्षिक सम्मेलन ता. २२–२३–२४ मई १९४८ तीन दिन तक नासिक पंचवटीमें बडी धूम-धाम से हुआ। प्रस्तुत सम्मेलन में मंडल के अंदाजन ६० सभासद उपस्थित थे। भारत वर्ष के अलग अलग प्रांतों मे से आये हुए सभासदों मे संगीत चर्चा, आपसमें परिचय, और गायन वादन के कार्यक्रम इत्यादि में तीन दिन कब निकल चुके इसका पताभी न चला। आपस का बंधुभाव दृढ हुआ, जिसको कहते हर्ष होता है।

प्रथम दिन ईशस्त-वन, परिचय-समारोह और स्वर्गस्थ बंधुओंको अंजलिदान देने के बाद चुनाव का कार्यक्रम हुआ। मंडलने चुने हुए निम्न-लिखित सभासदों और पदाधिकारिओं के नामः—

(१) श्री. बा. र. देवधर (प्रमुख)
(२) ,, व. य. राजोपाध्ये (प्रधान मंत्री)
(३) ,, शं. द. गद्रे (उप मंत्री)
(४) ,, शं. ग. व्यास (खजानची)
(५) ,, रावजीभाई पटेल सभासद
(६) ,, प्राणलाल शाह ,,
(७) ,, पुरुषोत्तम गांधी ,,
(८) ,, विनयचंद्रजी ,,
(९) ,, शं. श्री. बोडस ,,
(१०) ,, ग. का. निमकर ,,
(११) ,, भगवतीप्रसाद त्रिवेदी ,,

सम्मेलन में पास किये हुए प्रस्तावः—

(१) मंडल की प्राथमिक परिक्षाओंकी व्यवस्था सुसूत्र और व्यवस्थित करनेके लिये प्रमुख ऑफिस के अधिकार के नीचे और दो प्रांतीय सब दफ्तर खोले गये। जिसका स्थान अहमदाबाद (गूजरात) और दिल्ली में रहेगा। और यहाँ के स्थानिक सभासदो की एक कमिटी बनाके तद्वारा केवल–प्रवेशिका प्रथम, द्वितीय वर्ष और संगीत विशारद प्रथम वर्ष परिक्षाओंकी हरेक व्यवस्थाः–प्रश्न पत्रिका बनाना, परिक्षकोंकी योजना, परिणाम जाहिर करना और परिक्षाके बारेमें हरएक जातिका पत्रव्यवहार करना इत्यादि का संपूर्ण अधिकार कमिटीको दिया गया। केवल प्रमाण पत्र प्रमुख के स्वाक्षरी के रहेंगे। परिक्षा शुल्क, खर्च बाद करके हेड ऑफीस में भेजा जाय। मार्क–शीट डबल कॉपी बनाकर एक हेड ऑफिस को तर्फ भेजनी चाहिये। परिक्षक कमिटी हर तीन सालके बाद बदलनी चाहिये। प्रस्तुत सामान्य सभाकी तरफसे बनाई हुई कमिटीके सभासद निम्न लिखित हैः—

(महाराष्ट्र-मध्यप्रांत-और दूसरे प्रांत)

(१) श्री. व. य. राजोपाध्ये (प्रमुख)
(२) ,, द. ल. जंगम
(३) ,, ग. का. निमकर
(४) ,, के. रा. सोमण
(५) ,, म. रा. दाण्डेकर
(६) ,, बा. न. क्षीरसागर
(७) ,, शं. ल. सप्रे

(गूजरात काठियावाड)

(१) श्री. रावजीभाई पटेल (प्रमुख)
(२) ,, गोपाळराव जोशी
(३) ,, शं. द. गद्रे
(४) ,, पुरुषोत्तम गांधी
(५) ,, कालीदासभाई जोशी
(६) ,, सोमनाथ व्यास
(७) ,, रावसाहेब म्हसकर

(दिल्ली–युक्त प्रांत)

(१) पं. विनयचंद्रजी (प्रमुख)
(२) श्री. वा. ना. ठकार
(३) ,, शं. श्री. बोडस
(४) ,, महादेव देशपांडे
(५) ,, शं. र. कुलकर्णी

(२) परिक्षा परिणाम एवं अन्य बाबतोंमें कमिटीका एक मत न हुआ, तो अंतिम निर्णय गूजरात–काठियावाडका श्री. शं. द. गद्रे को देनेका अधिकार है, और युक्तप्रांतका निर्णय श्री. शं. श्री. बोडसजी देंगे। यदि गद्रेजी और बोडसजी निर्णय न दे सके तो आखिर मंडल के प्रमुख अंतिम निर्णय दे देंगे।

(३) सब केंद्रकी संगीत–विशारद संगीत–अलंकार और संगीत-प्रवीण यह उच्च परिक्षाओंकी व्यवस्थाकेंद्र व्यवस्थापक की ओर से मंडल के प्रधान-मंत्री करेंगे।

(४) परिक्षकों के भत्ते में निम्न लिखित निर्णय किया गया। हरएक परिक्षक को आठ घंटे काम के लिये रु. १० मिलेंगे। हरेक आठ घंटे के हफ्ते को रु. १० का हिसाब किया जायेगा।

(५) आजतक संगीत प्रचार की दृष्टिसे योग्य व्यक्ति को बिना परिक्षा दिये प्रमाणपत्र प्रदान करनेका अधिकार प्रमुख को था। भविष्य में **परिक्षा दिये बिना किसी व्यक्तिको प्रमाणपत्र नहीं मिलेगा।**

(६) बम्बई सरकार प्राथमिक, माध्यमिक और उच्च–शिक्षण संस्थाओंमे (स्कूल, हायस्कूल और कॉलेज) संगीत विषय जरूरी सिखलानेकी व्यवस्था थोडेही दिनमें करनेवाली है। इस लिये मंडलका पुराना बनाया हुआ अभ्यास क्रम चालू रहेगा। उसमें अभी बदल करनेकी जरूरत नहीं।

(७) बम्बई सरकारको तीनों दर्जे के शिक्षण संस्थाओं में संगीत का अभ्यासक्रम किस प्रकार से दाखिल करना चाहिये इसपर मत देनेके लिये जो कमिटी मुकर्रिर की है उसके सन्मुख मंडल की राय देनेके लिये (१) **शं. ग. व्यास** (२) **ना. ग. व्यास** (३) **व. य. राजोपाध्ये** और (४) **ग. का. निमकर** इन चार सभासदोंको आधिकार दिया है। इन्होंने कमिटी की तरफसे मेट्रिक परिक्षा तक बीस (२०) रागोंकी मंजूरी, संगीत शिक्षकके लिये संगीत विशारद पदवीधरोंको मंजूरी और उनको बी. ए. वालोंके स्केल के माफिक रु ७०–५–१२५ पगार स्केल मिलादेनेकी मंजूरी गांधर्व महाविद्यालय मंडल के नोटेशन पद्धतिको मान्यता मिलानेकी ओर कोशिश करनी चाहिये।

(८) मंडलका विद्यमान संगीत विशारदका कोर्स चार वर्षका है, वास्तव में वह पूर्ण होने को विद्यार्थीको पंच वर्ष लगतेहीं हैं। अन्य संस्थाओंके विद्यार्थिओंको इसी परिक्षाको पांच साल जरूर लगते है। मंडलका विशारद पदवीधर अन्य संस्थाओंके विशारद से अधिकतर योग्य रहता है। लेकिन केवल वर्षोंकी कम गिनती होनेकी वजहसे मंडलका विशारद कम गिना जाता है। इसलिये भविष्य में संगीत विशारदका कोर्स पांच वर्षका कर दिया जाय।

(९) सरकार और अन्य संगीत संस्थाओं की तरफसे मंडल के पदवी को मंजूरी और अन्य संस्थाओंकी तरफसे पदवीके बाबत अन्यायि न होने पाये उसका बंदोबस्त करदिया जाय।

(१०) पंजाबका लाहौर शहर पाकिस्तान में जाने की वजहसे वहाँके गां. म. विद्यालय की जमीन, मकान इत्यादिका जो नुकसान हुआ है उसकी भरपाई सरकार के पास मांगनेका इलाज किया जाय।

(११) मंडल के स्थायी द्रव्यनिधि में द्रव्य सहायता करनेके लिये हरएक शहरमें स्व. पं. विष्णु दिगंबरजीकी पुण्यतिथि मनानेकी प्रथा चालू करके, संगीत के विविध कार्यक्रम रख कर, जो द्रव्य आय होगा वह खर्च बाद करके मंडल की निधिमें जमा किया जाय।

(१२) मंडलके सभासद न होते हूए जो व्यक्ति अपना विद्यालय गांधर्व महाविद्यालय, इस नाम से चलाता हो और जो व्यक्ति मंडलकी पदवी गैर कायदा धारण करता हो तो क्या इलाज किया जाय इस बाबत कानूनी सलाह लेकर व्यवस्था की जाय।

(१३) मंडलने चलाई हुई मासिक–पत्रिका, संगीत–कला-विहार भविष्यमें (एक दो महीनेमें) केवल हिंदी भाषा में चलाया जाय, जिससे काफी ग्राहक मिल सकेंगे। मासिक पत्रिकाकी संपूर्ण जबाबदारी प्रो. देवधर (संपादक) श्री. प्राणलाल शहा और श्री. विनयचंद्रजी (सह संपादक) को सौंप दी जाय। और स्वयं ग्राहक बनके मासिकके ग्राहकोंकी संख्या बढानेका हरएक सदस्यको आग्रह किया जाय।

नोटः—यह प्रस्ताव पास होते ही उपस्थित सदस्योंने नगद या ग्राहकों द्वारा जुलाई १५ तारीखके अंदर रु. १५०० जमा करने की प्रतिज्ञा की। यह कहते हमें हर्ष होता है।

(१४) इलाहाबादके प्रयाग संगीत समितिको पत्र लिख के "विष्णु दिगंबर युनिव्हर्सिटी" का काम काज ६ महीने के अंदर पूरा कर देने को कह देनेका। सामितिके तरफसे यदी छे महीने में काम काज पूरा न हो तो मंडल अपनी स्वतंत्र युनिव्हर्सिटी बनाने की कोशिश करेगा इसके लिये खास जरूरत पडे तो इलाहाबाद को एक डेप्युटेशन मंडल की तरफ से शीघ्र ही भेजा जाय।

(१५) मंडल का बँक का अॅकाउंट खजांची और मंत्री के संमिश्र नाम से चलाया जाय।

(१६) आगामी त्रैवार्षिक सम्मेलन १९५० के डिसेंबर मास में अहमदाबाद के कार्य कर्ता ओं की तरफसे बुलाया गया है।

व. य. राजोपाध्ये
प्रधान मंत्री

वा. र. देवधर
अध्यक्ष

संगीत परीक्षा

गांधर्व महाविद्यालय मंडल की ओर से महाराष्ट्र के बम्बई, सातारा, नासीक, कराड इन केन्द्रोंपर संगीत की परीक्षा दिनांक ७ और ८ अगस्त १९४८ को होनेवाली है। परीक्षार्थी अपने अपने फॉर्म्स १५ जुलै के पहले मंडल के दफ्तर मे भेजे।

\+ \+ \+

● गुजरात और काठीयावाड की परीक्षा के सम्बंध मे प्रो. रावजीभाई पटेल, प्रिन्सीपल गांधर्व महा विद्यालय, एलीस ब्रिज, अमदावाद से पत्र व्यवहार कीजीये।

× × ×

● दिल्ली युक्तप्रांत के परीक्षा के संबंध मे पं. विनयचंन्द्र मौद्गल्य, प्रिन्सीपल गांधर्व महाविद्यालय कॉनॉट प्रेस, नई देलही, से पत्र व्यवहार कीजीये

× × ×

● महाराष्ट्र, नागपूर और नये केन्द्रो की परीक्षा के लिये प्रो. वसंतराव राजोपाध्ये, प्रधान मंत्री गांधर्व महाविद्यालय मंडल, व्यास भुवन, दादर, बंबई से पत्र व्यवहार कीजीये।

पै. गायन महर्षि
अल्लादियाखांसाहेब
— स्मारक समिती —

पूर्वी निवेदिल्याप्रमाणें पै. गा. म. अल्लादियाखांसाहेब यांच्या स्मारक समितिची नवीन घटना होऊन श्री. भालजी पेंढारकर अध्यक्ष व मेसर्स महेकर व सी. बालाजी हे कार्यवाह निवडण्यांत आले. समिति अध्यक्षासह ११ लोकांची निवडली गेली असून, त्यांत श्री. जामसांडेकर, चौगुले, वणकुद्रे, जमदग्नी, निवृतिबुवा आदि प्रतिष्ठित गृहस्थ व व्यापारी सभासद आहेत. नवीन पावती पुस्तकें वगैरे छापविण्यांत आली असून, पुतळ्याचें काम कलामहर्षि श्री. बाबूराव पेंटर यांनी स्वीकारलें आहे. गायनप्रेमी सज्जनांनी वारंवार आठवणींची अपेक्षा न ठेवतां, देऊं केलेल्या रकमा सत्वर पाठवाव्यात अशी विनंती आहे. समितिचे सदस्य अगर अध्यक्ष याजकडे देणग्या दिल्यास आभारपूर्वक स्वीकारल्या जातील. कळावे.

कार्यवाह,

पै. गा. म. अल्लादियाखांसाहेब,
स्मारक समिति.

कोल्हापूर

संगीत कला विहार

प्रथम वर्ष अंक ९ वा.] अनुक्रमणिका [वार्षिक शुल्क ६ रु.

मुख पृष्ठ व फोटो...गा. स्व. प विष्णु दिगंबर पलुस्कर

संपादकीय:—गा. प. विष्णु दिगंबर व उनकी कला
प्रो. बी. आर. देवधर

कै. गु. प विष्णु दिगंबर और संगीत प्रचार...
श्री. द. वि. पलुस्कर

इ. सो. फॉर कन्टैम्पोरेरी म्यूज़िक:—

शिवमत और हनुमत् मत के भेद...श्री. मृगेन्द्र सिंहजी

काल्पनिक–संगीत–नगर.........श्री. श. श्री. बोडस

हार्मो. का स्वीकार आवश्यक क्यों...श्री. सी. पंत वैद्य
और श्री. चैतन्य देसाई

मृदंगाचार्य गोविन्द रावजी देवरावजी...श्री. दास
कृष्णाजी तरडे

पत्र–व्यवहार, इत्यादि—

निम्नलिखित पते पर पत्र व्यवहार कीजिये।

परिक्षा और दूसरा काम

प्रो. व. य. राजोपाध्ये,
१४८, हिंदु कॉलनी,
दादर.

मासिक–पत्रिका

प्रो. बी. आर. देवधर.
स्कूल ऑफ इंडियन म्युजिक,
फ्रेंच ब्रिज गिरगाँव,
बम्बई.

विज्ञापन का शुल्क

कव्हर पेज न. ४	रु. १२५-०-०
न २ और ३	रु. १००-० ०
संपूर्ण पृष्ठ	रू ६०-०-०
अर्ध "	रू. ३०-०-०
पाव "	रू. १५-०-०
अर्धपाव पृष्ठ	रू. ७-८-०

प्रतिसमय

मुद्रित पृष्ठ ६" × ८" दो कॉलममें

कव्हर पत्र विज्ञापन के लिए व्यवस्थापक को लिखिये विज्ञापन हमारे पास प्रतिमासकी १५ तारीख के पहिले पहुँचना चाहिये।

व्यवस्थापक:—संगीत कला विहार कार्यालय
स्कूल ऑफ इंडिअन म्यूज़िक,
फेंच- ब्रिज, गिरगाँव बम्बई

लेखको कों सूचनाएँ

१ लेख कागज़ के एकही ओर सुवाच्य अक्षरोंमें, दूर-दूर, केवल ½ फुल-स्केप साईज पर लिखकर भेजिये।

२- लेख की पसंदगी या नापसंदगी का जवाब पंद्रह दिनके बाद लेखकों को मिलेगा।

३- पसंद किए हुए लेख यथावकाश प्रकाशित किये जायेंगे।

४ नापसंद लेख वापस मंगानेके लिये पोस्ट टिकिट भेजिये।

संपादक
प्रो. बी. आर. देवधर
सहसंपादक
प. विनयचन्द्रजी मौद्गल्य
प्रो. प्राणलाल शहा
व्यवस्थापक
प्रो. वसंतराव राजोपाध्ये

* संपादकीय *

परिवर्तनः—

जुलाई के अंकमें हमने लिखा था कि अगस्त से 'विहार' पूर्णतः हिन्दी में ही प्रकाशित होगा; तदनुसार यह अंक हम वाचकों के समक्ष हिन्दी–भाषा में ही रखते हैं। हर प्रान्त में सरकारी योजनाओं के अनुसार हिन्दी का ही दिन–दिन प्रसार तथा यथाशक्ति समावेश किया जारहा है, जो उपयुक्त ही है। इसी उद्देश्य को ध्यानमें रख कर हमने भी यह आवश्यक परिवर्तन किया है। अतः हमें पूर्ण आशा है कि वाचकों को यह परिवर्तन नितान्त प्रिय लगेगा और वे हमारे उद्देश्य की पूर्ति, संगीत–कला की सेवा, तथा समृद्धि के इस श्रेष्ठ–कार्य में कलाकार अथवा कला–प्रेमी होने के नाते अपना पूर्ण सहयोग देंगे।

'कला विहार' का प्रसारः–

कुछ दिन पहिले मैं एक जल्से में गया था। मध्यान्तर के विश्राम के समय मैं और मेरे परिचित कुछ गृहस्थ खड़े हुए चाय पी रहे थे। मैंने सहज ही उनसे प्रश्न किया, " क्या आपने हमारा मासिक देखा है? वह आपको कैसा लगता है? " तिस पर उन गृहस्थ ने कहा, " क्या संगीत विषय पर कोई मासिक भी है? और वह कहाँ से निकलता है? हमने तो वह आज तक देखा भी नहीं। " यह शब्द सुनकर मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ। हम पिछले सात महिनों से 'संगीत–कला–विहार' नियमित रूप से प्रकाशित कर रहे हैं; किन्तु बम्बई के समस्त संगीत-प्रिय लोगों तक भी उसकी सूचना अभी तक पहुँची सी प्रतीत नहीं होती। मैंने अपने हाथ में का अंक को उन्हें दिखाया। मासिक के बाह्य-स्वरूप की सबने प्रशंसा की और कुछ ने उसके कुछ पृष्ठ भी उलट कर देखे। आनंद की बात तो यह है, कि उसी स्थान पर दस नये ग्राहक हमें मिले। संगीत–सम्बधी मासिक की आवश्यकता सबको ही प्रतीत होती हैं, अतः हमारे वर्तमान ग्राहक यदि इस मासिक को अपने संगीत–कला-प्रेमी मित्रों के समक्ष रखने का कष्ट करें तो इसका प्रसार झट-पट हो सकता है।

नवीन-उपयुक्त-संस्थाः–

इस संस्था का परिचय आगे एक स्वतंत्र लेख में दिया है। यह संस्था संगीत–कला कारों की होने के कारण ही इसकी शाखायें हिंदुस्थान के प्रत्येक शहर में खुलना आवश्यक है। भिन्न-भिन्न घरानों का बढ़ा हुआ झगड़ा तथा संघर्ष एक ओर रख-कर, सबको एकता के बंधन में बाँधकर, संगीत की उन्नति तथा वृद्धि करने का सुअवसर अब आगया है। सब घरानों के गवैयों को एकत्रित करके, एक दूसरे का गाना सुनकर, अन्त में मत–भेद वाले रागों और राग स्वरूपों के विषय में निश्चित मत ठहराने के कार्य में इस संस्थाका बहुत अच्छा उपयोग होगा। अपने घराने का ज्ञान गुप्त रखने का समय अब बीत चुका है। इस संस्थासे हमारे कलाकार अवश्य लाभ उठावें।

नया उपक्रम 'पत्र व्यवहारः—

इस अंक से 'पत्र व्यवहार' यह नया विषय आरंभ करने में आया है। इसके मतों के लेखकही पूर्णता 'उत्तरदायी रहेंगे व्यर्थ की निन्दा अथवा बदनामी करनेवाले पत्र स्वीकृत नहीं किये जायेंगे, परंतु औचित्य पूर्ण शब्दों में लिखे हुए प्रमाणिक मतों अथवा विषयों को अवश्य स्थान मिलेगा।

गायनाचार्य पं. विष्णु दिगंबर
और
उनकी कला

[ले.—बी. आर. देवधर B. A., संचालक—'स्कूल आफ़ इण्डियन म्यूज़िक,' बम्बई]

ये कौन से राजा ?

सन १९१५ के मई महिने में मिरज के राजा साहब के दोनों राज कुमारों का विवाह–समारंभ धूम–धाम से चल रहा था। आसपास के संस्थाओं के राजा एवं पूना और बम्बई के बड़े–बड़े लोग इस समारंभ के लिये मिरज में इकठ्ठा हुएथे। रात को एक बड़ी बारात निकलने वाली थी। उसे देखने के लिये गाँव के हम लोग रास्ते के दोनों ओर खड़े थे। नौबत, घुड़सवार, सिपाही, बाजंत्री, बैंडवाले तथा उनके पीछे सब अमीर–उमरा धीरे –धीरे चले आरहे थे। हमारे पास ही के एक सज्जन इन बडे बडे लोगों के विषयमें परिचय देने लगे, और हम सब लडके पैरों की अँगुलियों के बलपर खड़े होकर ध्यान से उनलोगों की ओर उत्सुकतापूर्वक देखनें लगे। आगे जानेवाले लोगों की तरफ़ अँगुली दिखाकर वे कहने लगे, "यह देखो सांगली के राजा, वे उनके पीछे आनेवाले बुधगांव के राजा, उनकी दहिनी ओर चलने वाले जमखिंडी के राजा," इत्यादि। इन राजा लोगों में एक गोरेसे शानदार व्यक्ति सिरपर सुन्दर साफ़ा आँखोंपर चश्मा, अंगपर बंदगले का रेशमी कोट और कंधेपर ज़री-का दुपट्टा डाले चले आ रहे थे। इनके विषय में हमारे पास वाले सज्जन को कुछभी परिचय न देते देखकर, मैंने उनका ध्यान उस व्यक्ति की ओर आकर्षित करके कहा, "ये किस गाँव के राजा हैं, सो तो आपने बताया ही नहीं?" इसपर वे सज्जन हँसकर बोले, "वे कोई राजा–वाजा नहीं एक गवैये हैं और उनका नाम विष्णु दिगंबर पलुस्कर है।" विष्णु दिगंबर नाम कानों में पड़ते ही मुझे पिछलीबात याद आने लगी। उन्हें पहिले देख चुकनेपर भी मैं उनके इस ठाट–बाट में उन्हें नही पहचान सका।

मुझे बचपनसेही संगीत से प्रेम था। सन् १९१२ में नीलकंठ बुआ के गायन–समाजमें मेरा नियमित रूपसे शिक्षण आरंभ हुआ था। प्राथमिक स्वर–ज्ञान एवं १०–१२ चीज़ें ही हो पाई होंगी कि उस गाँव में प्लेग शुरू होगया और नीलकंठ बुआ शाला बंद करके दूसरे गाँव चले गये। इसके बाद १९१४ में पं. विनायकराव पटवर्धन राज–पुत्रों को संगीत सिखानेके लिये मिरज आये। उनकी शाला में ही पहिली बार मैने पं. विष्णु दिगंबर के नोटेशन तथा गानों की छपी हुई पुस्तकें देखीं। जब मैं वहा सीखता था, एकबार पंडितजी उस शाला में पधारे और उनके सामने मेरा गायनभी हुआ। 'गांधर्व महाविद्यालय' के अभ्यास–क्रम के अनुसार मेरा दो वर्षका अभ्यास–क्रम भी पूरा न हो पाया था, कि वे पं. विनायकराव भी मिरज छोड़कर फिर बम्बई के 'गांधर्व–महाविद्यालय' को लौट आये। इसी समय से मेरा तथा 'गांधर्व महाविद्यालय' का अप्रत्यक्ष रूप से संबध शुरू होगया।

कुछदिन बाद, अपने विद्यार्थियों सहित पंडितजी फिर जलसे करने के लिये मिरज आये। मैं भी उनके मुक़ाम पर जाकर विद्यार्थियों से मिलने–जुलने लगा। उन विद्यार्थियों के वे स्वच्छ सफ़ेद कपड़े, उनका अनुशासन और उनकी शिक्षा–पद्धति देख मुझे ऐसा लगा कि मैं भी विद्यालय मेंजाऊं; परन्तु घरके सब बड़े लोग मुझे गाना सिखाकर एक गवैया बनाने के खिलाफ़ थे। अतः, यह इच्छा इस बार मनकी मन में ही रहगई।

सन १९१७ में पं. विनायकराव किसी कामसे मिरज आये थे। उनके साथही मैं वापसी में बम्बई देखने के लिये गया और गांधर्व महाविद्यालय में ही उतरा। गणेशोत्सव का समय होनेके कारण

दूसरे विद्यार्थियों की तरह मैंनेभी गायन में भाग लिया। पंडितजी भी वहां थे, अतः पहिलीही बार उनका ध्यान मेरी ओरगया और उन्होंने मेरे विषय में पूछ–ताछकी। विद्यालयमें आनेकी मेरी बड़ी इच्छा है, यह बात उनके कानोंतक भी पहुंच गई। वापस लौटने के पहिले मैं उन्हें नमस्कार करने के लिये गया और उस समय उन्होंने कहा, "यदि तू घर से परवानगी लेकर आजाये तो मैं तुझे विद्यालय में ले लूंगा।" मुझे बड़ा आनंद हुआ, तथा यह बात मैंने अपने पालकों से कही; किन्तु, किसीने इस बातपर ध्यान तक न दिया। इससे मेरा मन फिर उदास होगया।

जैसा कि ऊपर कहा जाचुका हैं, पंडितजी को उस बारात में देखते ही मेरे मनने फिरसे एक उछाल खाई और दूसरे ही दिन उनके मुकाम पर जाकर मैं पण्डितजी से मिला। पहिले तो उन्होंने मुझे नहीं पहिचाना; परन्तु, बम्बई की याद दिलाते ही वे मुझे पहचान गये। उन्होंने कहा, "तेरे विद्यालय में आने के विषय में क्या हुआ?" मैंने उत्तर दिया, "मुझे घरसे परवानगी ही नहीं मिलती; परन्तु मैंने तो गवैया बनने काहीं निश्चय किया है।" पंडितजी हँस दिये और बोले, "तू अपने भाई को मेरे पास बुलाला, जिससे मैं उन्हें समझा सकूं।" मेरी हठ–वश, अन्तमें, मेरेभाई पंडितजीसे मिलने आये और मेरा विद्यालय में जाना निश्चित होगया। सन्. १९१५ के जून महिने में मैं विद्यालय में दाखिल हुआ, तथा इस प्रकार पंडितजीसे मेरा संबंध हुआ।

पंडितजी की कुछ याद रहने योग्य महफ़िलें:—

इस समय पंडितजीका काम बहुत फैल चुका था। अध्यापकगण छात्रालय के विद्यार्थी तथा नौकर इत्यादि सब मिलाकर विद्यालमें लोगों की संख्या १२५ से अधिक थीं। पंडितजीका सारा ध्यान मकान बनाने में हुए क़र्ज़ को चुकाने की ओर लगा होनेसे वे सालमें ७–८ महिने तो दौरे पर रहते थे। हम विद्यार्थियोंका शिक्षण दूसरे अध्यापकों के हाथ में था।

बुधवार, शनिवार की रात, तथा रविवारकी शाम, इस प्रकार सप्ताह में तीन जल्से नियमित रूप से रहते थे। पंडितजी बम्बई में होते तो अवश्य ही एक न एक जल्से में वे गाते थे। इन जल्से में हम विद्यालयके लोग ही सुनने वाले, तथा इस जल्से का हेतु हमारा शिक्षण भी होने के कारण पंडितजी हमें अलग–अलग समयके राग सुनाते थे। तबले के साथ के लिये 'मृदंग–विशारद' बाबूरावजी गोखले, श्रीपाद बुआ पुजारी, अथवा पंडित गोविंदरावजी, इनमें से कोई होता था। इन जलसों में हम बाद में आये विद्यार्थियों उनके गाने पूरी तौरसे सुनने को मिले। भीम–पलासी, मुलतानी–धनाश्री पूर्वी, मारवा, मिया–मल्हार व गौड मल्हार, ये उनके शाम के प्रिय राग थे। 'मग जैये हो' यहचीज़ (इसके राग के नाम के विषयमें मत–भेद हैं) उन्हें बहुत पसंदथी। इसे गाते समय वे स्वयं मग्न हो जाते थे। पंडितजी की आवाज़ बहुत बुलंद तथा उतनी ही मीठी थी। उसे क़ायदे के साथ बनाया था, अतः उसमें एक वज़न पैदा हो गया था। उनके साथ के लिये कभी–कभी चार–चार शिष्य बैठते थे। पंडितजी तार 'सा' पर जाते कि चारों सुर लगाते थे; परन्तु, पंडितजी सांस लेकर फिर ज्यों ही 'सा' लगाते कि चारों की आवाज़ कहां की कहीं लोप हो जाती और केवल पंडितजी की ही आवाज़ सुनाई पड़ती थी।

कोई सन् १९२१ की बात होगी। ऐसे ही रविवारके एक जल्सेमें पंडितजी गानेवाले थे। दूसरा कार्यक्रम समाप्त हो चुका था और ७ बजे शामको उनका गाना शुरू हुआ। वे हमेशा आनंद में ही रहते थे, पर उस दिन कुछ ज्यादह प्रसन्न थे। उसी समय श्री. माणिक प्रभु विद्यालय में ठहरे हुए थे। उनके सारे गवैये और कितने ही दूसरे नामी महमान इस जल्सेमें सुनने के लिये आये थे। सुनने वालों से दीवानख़ाना भर गया था। पंडितजीको कुछ बात याद आई सी जान पड़ी। उन्होंने कहा, "आज मैं गु. बालकृष्ण बुआजी की ख़ास तालीम सुनाऊंगा।" उन्होंने 'यमन' का 'बनरे बलैया,' यह ख्याल 'झुम्रा तालमें' शुरू किया। ख्याल भरने के बाद धीरे–धीरे आलापकी बढ़त शुरू की। सब तरह के आलाप समाप्त हो जाने पर बोल–अंग शुरू हुआ। वे प्रत्येक बोल अंग का शुरू करने से पहले नाम बताते थे। फिर 'सवाल–जवाब' इस जाति की बोल–तानें आरंभ हुईं। चीज़ के पहले शब्दोंको लेकर, पंडितजी एक बोल–तान शुरू करते, तो साथीदार उनके छोड़े हुए स्वर पर से चीज़ के अगले शब्द लेकर हाल ही उनके

नका उत्तर देता। पंडितजी उससे आगे के शब्दों में उन सुरों र से ही दूसरा प्रश्न शुरू करते तो दूसरा साथीदार उसका उत्तर ता और अन्त में सम के पास आते ही पंडितजी एक ज़ोर तान भरकर नीचे आते और उनकी तान समाप्त होते ही तीनों ोज़ का मुँह पकड़ कर सम पर आते थे। इसके बाद जलद-यकारी की बोल-तानें शुरू हुई और अधिकाधिक मज़ा आने गा। इतने ही में पंडितजीको कितने बजे थे, इसकी याद आई ौर जब यह मालूम हुआ कि ८ बजे थे, उन्होंने कहा, "आलाप ौर बोल तान समाप्त होते होते पूरा एक घंटा हो गया है, फिर ी अभी तानें बाकी रह गई हैं; परन्तु समय कम होने के कारण यह गाना यहीं बंद करना पड़ेगा।" उनके आलाप और बोल ंगों में उस दिन इतनी भिन्नता दिखाई देती थी कि, उसमें ुनरावृत्ति नहीं थी ऐसा कहा जाय तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। उनका वह अनोखा गाना मुझे आज भी पूरी तरह से याद है। इस विद्यालय के जल्सों में वे हमेशा महफ़िल की चीज़ें ही गाते थे। ज़ाहिर जल्से में जहां टिकिट लेकर आये लोगों में पारसी इत्यादि लोग अधिक होते उस समय उनका गायन कुछ दूसरे ही ढंग का होता था। एक दो रागदारी की चीज़े, उसके बाद अर्थपूर्ण साधु-संतों के भजन, फिर एक आध चीज इस प्रकार वे मिले जुले गाने गाते थे। ऐसे जल्सों के छपे हुए कार्यक्रम जल्से से पहले ही बाँट दिये जाते थे। सुनने वालों की पहचानी और उन्हें समझ में आ सकने वाली चीज़ों का गाना शुरू होते ही सुनने वाले तालियों के बादल गर्ज़ा देते थे। रागदारी की चीज़ जब चलती होती थी, तो ये सुननेवाले लोग गंभीर-भावसे उसे सुनते रहते थे।

मैंने जून सन् १९२२ में विद्यालय छोड़कर स्वतंत्रता-पूर्वक बम्बई में रहना आरंभ किया। विद्यालय पर क़र्ज़े का भार बढ़ जाने के कारण, बम्बई के विद्यालय की इमारत भी संस्था के हाथों से १९२३ में छिन गई और पंडितजी का मुक़ाम नासिक होना निश्चय किया गया। किन्तु, वे प्राय: बम्बई आते थे, तो मुझसे उनकी भेंट अवश्य होती थी। फिर वे भिन्न-भिन्न गाँवों में परिषद का प्रबन्ध करने लगे और ऐसे परिषदों में वे अपने सारे विद्यार्थियों को आमंत्रण देकर बुलाते थे। ऐसे अनेकों परिषदों में मैं भी हाज़िर रहता था। संक्षेप में, पंडितजी को मुझसे प्रेम होने के कारण मेरा और उनका संबंध उनके अन्त समय तक बहुत गहरा रहा।

मेरे विद्यालय छोड़ देने के बाद संगीत क्षेत्र के नये नये लोग से मेरा परिचय होने लगा। 'तुम्हारे गुरुजी (बालबोध) सीधे साधेही गाने गाते हैं और वे केवळ प्रचारक ही है; इस प्रकार की टीका भी मेरे कानों तक पहुंची। मैंने पंडितजीके बड़े अच्छे गाने सुने थे, अत: इस प्रकार की अनहोनी टीका पर मुझे आश्चर्य हुआ। इसके बाद, बम्बई के बाहर, दूसरे प्रांतों में जैसे-जैसे मेरा जाना हुआ वैसे-वैसे ही नये-नये घरानों के वृद्ध तथा जानकार गवैयों से मेरा परिचय हुआ, और उनमें से कुछने, जिनसे मेरा घनिष्ठ परिचय हो पाया था, पंडितजीके जवानी के गाने सुने थे। वे उनकी गायन कला की मुक्त-कंठ से प्रशंसा करते थे। परंतु, इन परस्पर-विरोधी मतों के कारण मैं कुछ समझ न सका, और इसी कारण मैं इस विषय में विशेष जानकारी मालूम करने लगा।

किसी भी कलावंत की कला की असलियत अच्छी तरह समझने के लिये, वह कला उसने कैसे प्राप्त की, उसे कैसे बढ़ाया, उसे उससे कुदरती शौक था अथवा उसके लिये उसके हृदय में प्रेम बाद में उत्पन्न हुआ, ऐसी अनेकों बातों को खोजना पड़ता है। पंडितजीने स्वयं अपनी कोई यादगार लिखकर नहीं रखी है; लेकिन १९२६ में जब वे अमृतसर में थे, तो पं. गुरु दित्ता खन्ना नामक सज्जन ने उनसे पूछ पूछ कर बहुत सी जानकारी एकत्रित की, और उन्होंने "पं. विष्णु दिगंबर जी का संक्षिप्त-जीवन-वृतांत" नामक ७६ पृष्ठोंकी एक पुस्तक प्रकाशित की थी। इसमें लिखी बातें पंडितजीकी स्वयं की कही हुई होने के कारण अधिक विश्वसनीय हैं। पं. बालकृष्ण बुआ के पास, जब पं. विष्णु दिगंबर गाना सीखते थे, तो पं. श्रीकृष्ण जी हिलेकर (बनारस) भी थे. और १८९६ में पंडितजीके ही साथ उन्होंने मिरज छोड़ा था। उनसे मुझे बहुत ही लाभकारी परिचय मिल सका। सन् १८९७ में पं. अनंत मनोहर (औंध) भी मिरज छोड़कर पंडितजी के पास गये, और ३-४ वर्षों तक उनकेही पास रहे। उन्होंने भी कितनीही बातें मुझे बताईं। इसके अतिरिक्त मेरे बड़े गुरु-भाई पं. व्ही. ए. कशालकर (इलाहाबाद)

और प्रिन्सिपाल बाबूराव गोखले [बम्बई] ने भी इस काम में मेरी बड़ी सहायता की। इस सब जानकारी ही का उपयोग मैंने इस लेख में किया है।

बालक पन तथा एक अपघातः—

पंडितजी का जन्म १८७२ में कुरुंदवाड़ संस्थान के एक हरिकीर्तन कारके कुटुम्ब में हुआ था। उनके पिताका नाम दिगंबर बुआ था। इस कुटुम्ब में किसी एक सिद्ध-पुरुषके होनेसे वहां का राज-घराना उनका आदर करता था। कुरुंदवाड़ की छोटी पांति के अधिपति श्रीमंत दाजी साहब दिगंबर बुआ के छोटेसे विष्णु का लालन-पालन तथा शिक्षण अपने पुत्र नाना साहब के साथ-साथ ही करने लगे। विष्णु जन्म से ही हुशियार था। अतः शाळा में उसकी प्रगति भी सपाटेसे होने लगा। उसका शिक्षण अंग्रेजी की दूसरी तक ही हो पाया था कि उसपर एक आपत्ति का कोप हुआ। दत्तजयंति के उत्सव पर नाना साहब के साथ लड़के फटाके चला रहे थे। कुछ नट खट लडकों ने फटाकों में से बारूद निकालकर गोली करके रख दी और उसे चलानेके विष्णु से कहा। ऊपर अंगारा रख देने पर भी बारूद न चली, तो विष्णुने फूंक मारी। फूंकते ही बारूद एकदम जल कर विष्णुके मुँह पर-आपड़ी, जिससे उसका मुंह जलगया और आखों को भी बहुत आघात पहुँचा। श्रीमंत दाजी साहब ने कुरुंदवाड़ में सारे उपाय कर लिये; परन्तु किसी से भी लाभ न हुआ, अतः उसे मिरज के बाला साहब के पास भेजना पडा। मिरज में अच्छे डाक्टरों का इलाज शुरू हुआ और थोड़े दिनों में मुँह तो ठीक होगया; परन्तु आँखों को कुछ विशेष आराम न हुआ। इसके बाद शाला में अभ्यास करके पहले से ही बिगड़ी हुई आँखों पर अधिक जोर पड़ने के कारण कहीं दिखना बन्द न हो जाय, इस डरसे उसे कोई ऐसी विद्या दी जिसमें आँखों का अधिक काम न हो सिखाने की सलाह वैद्यों से मिली। विष्णु हरिदास के कुटुम्ब में से था, यह जानतेही डॉक्टरनेभी उसे गाना सिखाने की ही सलाहदी और यह बात विष्णु कोभी अच्छी लगी।

इस समय कुरुंदवाड़ की छोटी तथा बड़ी पाँतियों में एक प्रकार की ताना-तनी चल रही थी। छोटी पाँती के अधिपति दाजी साहब ने यदि किसी एक-आध विद्वान-शास्त्री को पास रखलिया तो बड़ी पाँतिवाले बाला साहब अवश्य ही किसी दूसरे विद्वान्‌को लाकर अपने पास रखते। इस चढ़ा-चढ़ी के कारण कितने ही अच्छे-अच्छे विद्वान् उस समय कुरुंदवाड़ में जमा हो गये थे। बड़ी पाँति में विष्णुपंत छत्रे नामक गवैये थे और बाला साहब को उनपर बडा अभिमान था। छोटी पाँतीवाले दाजी साहब विष्णुपंत के प्रति-स्पर्धी बाल कृष्ण बुआ को बहुत चाहते थे। मिरज के अधिपति और दाजी साहब साढू थे और उन दोनों का संबंध बहुत ही अपने पन का था। विष्णु को गाना सिखाने का निश्चय हो जाने पर सहज ही उनका ध्यान उनके प्रिय बालकृष्ण बुआ की ओर गया। इस समय बाळ बुआ मिरज के अधिपति के पास थे। श्री. दाजी साहबने विष्णुको गाना सीखने के लिये मिरज भेजकर उनकी देख-भाल का भार श्रीमंत मिरज अधिपति बाला साहब को सौंप दिया। श्री. बाला साः ने विष्णु के रहने का प्रबंध सरकारी बाड़े में ही करके, खानेपीने, तथा शिक्षण इत्यादि सब प्रकार की व्यवस्था अपनी ही देखरेख में करना शुरू किया।

पं. बालकृष्ण बुआ की तालीमः—

इस समय बालकृष्ण बुआ मिरज के दरबार में गवैये का कार्य करते थे। उनका खाना पीना भी सरकार की पांत में ही था। गवैये को खाना अच्छा चाहिये, अतः उन्हें पुष्ट-भोजन, हलुआ, इत्यादि देने की चिन्ता और देख-रेख स्वयं बाला साहब ही करते थे। विष्णु सुबह जल्दी उठकर, स्नान इत्यादि से निपट गुरुजी के घर जाता था और अन्य विद्यार्थियों के साथ अपने हिस्से का गुरु-गृह का काम (पानी लाना, लकडी तोड़ना, इत्यादि) करके ७॥-८ बजे सीखने बैठता। उस समय तीन गायिकायें बुआ साहब के पास सीखने के लिये मिरज में ही आगई थी। बुआ साहब उनके घर नहीं जाते थे। उन्हें ही सुबह गुरु-गृह पर आना पड़ता था और वे भी सारे विद्यार्थियों के साथ ही सीखतीं। वे ३०) हर महिने देतीं थीं, अतः सुबह की तालीम नियमसे होती थी। घरपर सिखाना समाप्त करके बुआ साहबको महल जाना पड़ता था, तथा वे भोजनके पहिले घन्टे-डेढ़ घंटे विष्णुको सिखाते थे। बुआसाहब दुपहरके भोजनके बाद नहीं आराम करते थे। शामको ३-४ बजे फिर तम्बूरा शुरू होता और विष्णुको सांयःकालकी रागोंकी चीज़ें सिखाई जातीं। रातको भोजन के बाद बुआसाहब ९॥-१० बजे घर पहुंचते और घरपर फिरसे सारे विद्यार्थियोंको तालीम शुरू होती।

केवल इस तालीम के समय ही विष्णु नियम से नहीं जाता था।

इधर विष्णु को बालकृष्ण बुआ के पास गायन सीखने के लिये भेजा गया है; यह मालूम होतेही, कुरुंदवाड की बड़ी पाँति में भी गड़बड़ शुरू हो गई। उस समय ही, विष्णुपंत छत्रे ने 'भू-गंधर्व' रहमत खांको कुरुंदवाड में लारखा था। विष्णु का प्रतिस्पर्धी बनाने के लिये आबू दीक्षित नामक हुश्यार. तथा आवाज़ वाले विद्यार्थी को खां साहब रहमत खां के पास रखा गया। आबू दीक्षित को कौनसी राग तथा चीजें सिखाई जारहीं थीं, इसका पता लगाकर, श्रीमंत दाजी साहब उन सबकी पत्र द्वारा मिरज के अधिपति को सूचना देते थे। दूसरे ही दिन श्रीमंत मिरज-अधिपति बुआ साहब से विष्णु को भी उसपत्र में लिखी रागों और चीज़ों को सिखाने के लिये कह देते। किसी एक राग को रटने का काम, बहुत दिन तक करते देखकर खाना खाते समय बुआ साहब से वे पूछते, "क्यों बुआ साहब यह राग बहुत दिनों से चल रहा है?" मिरज अधिपति के इस तानेके कारण बुआ साहब को भी नये राग और नई चीजें विष्णु को सिखाना पडता था।

इस समय बुआ साहब के पास १५-२० विद्यार्थी सीखने के लिये आते थे। इन साहबको घर का काम करना पड़ता था। औंध के कै. पं. गुंडु बुआ, मिरज के वामन बुवा चाफेकर, तथा औंध के अनंत बुआ जोशी ये सब व्यक्ति उसी समय बुआ साहब के पास सीखते थे। कुछ विद्यार्थी गुरु-गृह में ही रहते थे। इन में से हरएक को घर का कुछ न कुछ काम सौंप दिया जाता था। कै. नील कंठ बुआ जंगम ही केवल ऐसे थे जो ब्राह्मण नहीं थे, अत: घरमें काम आवे उतना गोबर लाना इनका काम था। इसी कारण उनके गुरू माऊयोंने उनका नाम 'शेणैया' (शेण गोबर) रख दिया था। आगे चलकर वे ही मिरजमें 'शेणैया नीलकंठ बुआ' नामसे प्रसिद्ध हुये।

गुंडुबुआ तथा विष्णुबुआ में उस समय विद्याके सम्बन्धमें होड ठनी हुई थी। सब विद्यार्थियोंको यह मालूम था कि विष्णुको राज-महलमें स्वतंत्र रूपसे शिक्षा दी जाती है। गुंडुबुआ गुरूजीके घरकी रसोई इत्यादिका सारा काम कर चुकनेके बाद, अपनी भिक्षाकी झोली लेकर सरकारी बाडेमें भिक्षा मांगने जाते, और वहांभी बाहर खड़े रहकर सारी तालीम सुना करते। यह बात सरकारके कानोंतक पहुंचतेही, उसे भिक्षाके लिये बाडेमें आनाभी बंद कर दिया गया। स्वयं गुंडुबुआके पिता गवैये होनेपर भी वे अपने पितासे "मैं बालकृष्णबुआकेही पास गायन सीखूंगा" कहकर ही, मिरज आये थे। वे गुरु-सेवा बड़ा मन लगा करते थे। इसी कारण बुआसाहब उनपर बड़े प्रसन्न थे। जब ऊपर कही हुई बात, उन्हें गुंडुबुआने कही तो बुआसाहबने कहा, "गुंडु तू कुछ चिन्ता मत कर। जो चीज़ें मैं विष्णुको बाडेमें सिखाऊंगा वे ही तुझेभी मैं घरपर ही सिखाढूंगा। विष्णुको यद्यपि सरकारी सहायता मिलती थी, तो भी वह गुरु-सेवा से जी नहीं चुराता था। अपने हिस्से का सारा काम वह ठीक-ठीक और नित्य करता था। उसकी जाँच करने के लिये गुरु-पत्नि बच्चों का मल-मूत्र साफ करने लिये भी कहतीं, तो वह भी विष्णु तुरन्त और ठीक प्रकार से करता। विष्णु को सरकारी मदद होते हुए भी उसकी गुरु-सेवा उच्च-कोटि की देखकर बालकृष्ण बुआ भी उससे बहुत प्रेम करने लगे। वे जहां भी फेरी पर जाते, विष्णु को साथ के लिये अवश्य ले जाते।

विष्णु की आवाज़ भारी होने के कारण उसमें कुदरती-तान नहीं थी। बुआ साहब की गायकी तान-बाज़ी की होने के कारण वे पहिले पहल उस पर क्रोध कर बैठते थे। विष्णु पहिले से ही महनती होने के कारण, उसने बड़ी महनत करके अन्त में तान निकालली। वह घंटों महनत करने लगा, जिससे बाडे के दूसरे लोगों को परेशानी होने लगी।

बाड़े के पास ही एक पुराना और थोड़ा गिरा हुआ सा घर लेकर उसने वहाँ महनत करना आरंभ कर दिया। विष्णु बहुत महनत करता है, यह देखकर श्रीं. मिरज अधिपति ने भी उसकी खुराक की उचित व्यवस्था कर दी। उन्होंने कोठरी को हुक्म दिया कि विष्णु जब और जितनी भी मांगे, उसे उतना ही मेवा (बादाम, पिस्ते, छुहारे) और दूध इत्यादि चीज़ें दे दी जावें। धीरे-धीरे उसकी महनत इतनी बढ़ गई कि उस फूटे-टूटे मकान को लोग 'भूतखाना" कहने लगे, क्योंकि जब देखो तब वहां विष्णु का मानो कोई भूत गा रहा हो, ऐसा जान पड़ता था। इस तपस्या का फल उसे जल्दी ही मिला और उसकी आवाज़ से सुन्दर तान निकलने लगी। यह टप्पा जैसी तान बाज़ी की चीज़ें सहज ही गाने लगा।

विवाहः—

१५ वर्षकी आयु में संगीत सीखने के लिये विष्णु मिरज गया; किन्तु कुछ महिनों में ही उसके पिताने उसे वापस कुरुंदवाड़ बुला कर, उसका विवाह कुरुंदवाड़ के पोस्ट मास्टर केलकर सा: की बहन कु. विठाबाई से कर दिया। विवाह के पश्चात् विष्णु फिर मिरज में आकर संगीत सीखने लगा। दो–तीन वर्ष ही शिक्षण हो पाया था कि पिताजी फिर कहने लगे, "अब शिक्षण बन्द करो और कुरुंदवाड़ आकर अपनी स्त्रीका भार संभाल कर गृहस्थ की तरह रहो।" वे समझते थे कि विष्णु को कीर्तन करने भर तक तो शिक्षा मिल ही चुका है, फिर व्यर्थ में अधिक सीख कर भी क्या करना है? मिरज अधिपति के कानों तक जब यह बात पहुँची, तो उन्होंने विष्णु को बुला कर कहा, "तेरी पत्नि के खर्च भर के लिये यदि चाहिये तो मैं वार्षिक १०० रु. देताहूँ, पर तू गाना मत छोड।" विष्णु की भी बड़ी इच्छा थी कि वह एक बडा गवैया बने, फिर श्रीमंत की इस उदारता से उसका शिक्षण एकाएक बिलकुल बंद होने से टल गया। पिताजी को भी कुछ समाधान हुआ। विष्णुने फिरसे अपना अभ्यास शुरू कर दिया। इस प्रकार उसने यह शिक्षण सात–आठ वर्ष तक चालू रखा।

मिरज छोड़ने का विचारः—

विष्णु के सहपाठी गुंडु बुवा बाल कृष्ण बुआ के पास बारह महिने ही नहीं रहते थे। कुछ महिने शिक्षण होता कि वे थोडे समय के लिये फेरी पर चल देते. और फिर सीखने के लिये आ जाते। इस प्रकार गुंडुबुवाने ७––८ वर्ष सीखकर एक फेरा किया और उसमें प्राप्त धन से उन्होंने बाल कृष्ण बुवा की गुरु–पूजा बडे ठाट बाटसे करके गुरुजी को नक़द ६०० रु. तथा कपडे इत्यादि दिये बुआ साहब भी अपनी इस पहली गुरू–पूजा के कारण गुंडु बुआ पर बडे प्रसन्न हुए। विष्णुने भी सोचा कि वह भी इस प्रकार फेरी में धन कमापर गुरू–पुजा करे; परंतु श्रीमत मिरज के महा-राज और बुआ साहब की आज्ञा के बिना, उस समय बाहर जाना संभव न था।

श्रीमंत मिरज–नरेश की औषधि के कारण ही बुआ सा: का दमा पूरी तरह ठीक होकर उनसे फिर पहिले जैसा गाना गाया जा सकने लागाथा, यह उपकार उन्हें अन्त तक नभूला। दमा अच्छा हो जाने पर बुआ साहब को मिरज की जल–वायु बहुत पसंद आई। उन्होंने वहीं रहने की इच्छा श्रीमंत को प्रगट की। श्रीमंत ने भी लगे हाथ दरबारी –गवैये के स्थान पर उनको नियुक्तकर दिया, अपनेही साथ उनके खाने–पीनेका प्रबंध भी कर दिया। वे स्वयं बुआ साहब से गाना इत्यादि सीखने लगे; परंतु उन्हें ख्याल गाना कुछ अधिक पसंद नहीं था। कुछ दिनों में तो वे बुआ साहब ही को गायन के सम्बंध में कई सूचनायें देने लगे और बुआ साहब भी राजाज्ञाका मान रखते हुए सारी बातों को ध्यान से सुनते रहते फिर नानासाहब पानसे के शिष्य, बलवंतराव वैद्य श्रीमंत को मृदंग सिखाने मिरजमें आगये। वे नित्य गांजे के नशे में होते थे, तथा किसीभी गवैये के साथ मृदंग बजाते हुए, उल्टे–सीधे बोल बजाकर उसको तालसे कहीं का कहीं लेजाना अपनी शान समझते थे। बाल-कृष्ण बुआ को तो श्रीमंत के ही सामने बेताल सिद्ध करके वे बडे खुश होकर खूबही चिढ़ाते थे। इसी समय मिरज में एक महेश्वर बुआ घुघरे नामके टप्पा गाने वाले गवैये आये हुये थे। वे कुछ दिनों बाल कृष्ण बुआ के पास ख्याल सीखते थे। बुआ साहब का गाना सुनने के बाद श्रीमंत इन महेश्वर बुआको बालकृष्ण बुआसेभी उंचा स्थान देकर गाने के लिये बैठाते, और टप्पा सुनते थे। विष्णुभी वहीं होता, अतः यह बात उसे अच्छी न लगती थी। फिरभी श्रीमंत तो आश्रय दाता थे। वह कहे भी तो उनसे क्या कहे? श्रीमंत बुआ साहब को बडे बुआ और विष्णु को छोटे बुआ कहते थे। विष्णु पर तो श्रीमंत का प्रेम था ही. परन्तु धीरे–धीरे कुछ ऐसी घटनायें होने लगी, कि विष्णु का मन शीघ्र ही मिरज छोड़कर चले जाने के लिये उतावला होने लगा। श्रीमंत जब अपनी बग्घी में जाते होते तब यदि उन्हें बुआ साहब और विष्णु रास्ते में जाते हुए मिल जाते, तो वे बग्घी रोककर छोटे बुआ को बुला कर बग्घी में बैठा लेते, और बडे बुआ बेचारे अकेले ही चलते जाते। ऐसी अनेकों घटनाओं के कारण विष्णु को 'इधर कुँआ तो उधर खाई' जैसा मालूम होने लगा। इधर गुरु के लिये हृदय में बहुत ही आदर व श्रद्धा होने के कारण ऐसी ज्यादती के कारण गुरु–शाप और उससे जन्म भर भी यश न मिलने का उसे भय था, तो उधर श्रीमंत ही आश्रय दाता होने के कारण उन्हें अप्रसन्न करना भी कठिन ही समस्या थी। विष्णु इस समय ऐसे चक्कर में पड-गया। अतः मिरज छोड दिया जाय यह उसके मनमें भावना सी उठने लगी।

रजसे प्रयाण

विष्णु को तो नियमित रूप से बाडे में ही शिक्षण मिलता था; न्तु उसके अन्य गुरुभाईयोंको तो बस गुरु जी की लहर ही शिक्षण-पाने के लिये निर्भर रहना पड़ता था। कारणों से इन घर पर सीखने वाले विद्यार्थियों को जी अब तालीम भी नियमित रूपसे नहीं देते थे। विष्णुको त और अच्छी विद्या मिल चुकी थी। वह मिरज छोड़कर र चला जाना चाहता है। यह मालूम होतेही उसके कुछ खास -भाईयोंनेभी उसकेही साथ चल देने तथा आगे उस ही से विद्या खनेका निश्चय कर लिया। यह गुप्त चर्चा शुरू हो गई। श्रीकृष्ण कर व तातोबा पेंडसे, इन दोनोंको विष्णुके ही साथ चल देना हिये और (फिलहाल) अनंत मनोहर यहीं गुरुजीके पास रहें; यदि ऐसा दिखाई दे कि गुरुजी तो कुछभी नहीं सिखाते हैं, वहभी बाद में जाकर विष्णुके साथ हो जाय; यह निश्चय किया । बाहर निकलनेके बाद बडे २ गवैयोंसे टक्कर लेना पडेगी, : विष्णुने अपनी रियाज़ का समय बढाना आरंभ कर दिया। दिन ६ घंटेसे १२ घंटे तक उसने अपनी महनत बढ़ाली, और इतने परभी आवाज़ पर कोई बुरा परिणाम न हुआ, तो फिर त मिरज छोड़नेका पक्का विचार कर ही लिया। सन् १८९६ की ण-पूर्णिमा के दिन सरकारके साथ श्रावणी मनाने के बाद, उसने तसे कहा, "सात आठ दिनके लिये मुझे अपने सम्बंधीसे ने जाना है।" उसी दिन रातके समय श्रीकृष्ण हिर्लेकर व ोबा पेंडसे इन दोनों साथियों के साथ विष्णुने मिरज दिया।

जकर बुआः—

मिरज से तैयार हो कर आये गवैये होनेके कारण लोग विष्णु को 'रजकर बुआ' के नाम से जानने लगे। मिरजकर बुआ और दो साथी सातारा में दादा साहब करंदीकर के पास, औंध देवी के दर्शनों के बाद, जा पहुँचे। वहां उनका एक गायन-म हुआ। ४-५ घंटे तक गाना होनेके बाद दादा साहब ने जकर बुआ के हाथपर १० रु बिदायगी के रख दिये। "क्या यगी केवल इतनी ही?" मिरजकर बुआ के इस प्रश्न का उत्तर साहब ने यह दिया, "अभी केवल इतनी ही; किन्तु तुम नाम कमाकर फिरसे आये तो एक ही गाने के १०० रु भी दूंगा।" मिरजकर बुआ (पं. विष्णु दिगंबर) ने इन शब्दों की गांठ बांधली थी। फिर १९१६-१९१७ के लगभग वे स्वयं सतारा गये। दादा साहब करंदीकर भी चतुर थे। उन्होंने बुआ को बुलाकर अपने ही घर पर उनका गायन कराया और अपने पहले कहे शब्दों को याद कराके, उन्होंने बुआको १०० रु. बिदायगी दी।

यशस्वी महफिलें और कीर्तिः—

उस समय समाज गवैयों को अधिक सन्मान की दृष्टि से नहीं देखता था। गवैया यदि दूसरे गांव में जाता तो उसे अपनी कांख में तंबूरा दबाकर बड़े बड़े लोगो के घरों पर जाकर उनसे प्रार्थना करना पड़ता था, "मैं एक गवैया हूं, आप मेरा गाना सुनने का कष्ट करेंगे क्या?" मिरजकर बुआ इस बात से चिढ़ गये थे, और "तंबूरा बगल में दबा कर मैं भीख मांगता नहीं फिरूंगा" यह प्रतिज्ञा उन्होंने सतारा छोडतेही करली थी। सतारा से वे बम्बई होते हुए बडोदा पहुंचे। एक मंदिर में उन्होंने स्वयं गाने की महफिल करने का निश्चय किया और गांवके सब बड़े और नामी लोगों को सुनने के लिये निमंत्रण दे डाला। उस समय मिरजकर बुआ की बहुत कुछ तैयारी थी। मरहूम खांसाहब मुहम्मद खां (हद्दू खां के बडे बेटे) के साथ बालकृष्ण बुआ एक-डेढ़ वर्ष रह चुके थे, अतः उनके गानेके के ढंग को वे हूबहू अपने गाने में दिखाने लगे थे; और मिरजकर बुआ को भी उसी गायकी शिक्षा मिल चुकी थी। खांसाहब बडोदा में एक-दो वर्ष रहचुके थे अतः वहां के रसिक उनकी गायन-कला को पहचानते और समझते थे। बस मिरजकर बुआ से भी उसी कला को सुनकर बडोदामें पहली ही बार में उनकी प्रशंसा होने लगी। इस जवान गवैयेकी प्रशंसा रानी साहिबा जमुनाबाई (कै. सयाजीराव कोइन्होंने गोद लियाथा) के कानों एक पहुँच गई। मिरजकर बुआ का गाना सुनकर वे इतनी प्रसन्न हुई कि उन्होंने बुआ को बडोदामें ही दो महिने तक रोक लिया। हररोज सुबह पूजा के समय वे बुआ के गाने सुनाकरतीं। यह प्रशंसा श्रीमंत सयाजीराव, महाराज तक भी जा पहुंची और मकर पुरेके सरकारी बाडेमें उन्होंने मिरजकर बुआ का गाना सुना, तथा उन्हें ४०० रु. बिदायगी दी। यमुना बाई रानी साहिबाने तो उन्हें अच्छी तनख्वाह देकर अपने ही पास

रखने को कहा किंतु आजादी-पसंद बुआ ने इस नौकरी को अस्वीकार कर दिया।

इस प्रकार बुआ की कीर्ति बढ़ी हुई देखकर कई गवैयों के मन में डाह हुई तो कई को आनंद हुआ। नासिरखां मृदंग वादक और गुलाबसिंह तबलची बुआ साहब के पास जाकर उनका गाना सुनने लगे। नासिर खां ने बुआ सा: का आदर करके, उनके साथियों सहित उन्हें अपनी मृदंग सुनाने के लिये घर बुलाया। खां साहब मौला बख्श ने भी बुआ सा: की भूरि-भूरि प्रशंसा की और उनकी बहुत सी महफिलें भी सुनीं। परन्तु, खां साहब फैज मुहम्मद खां के गुट के लोगों को बुआ की बढती हुई कीर्ति कुछ अच्छी नहीं लगी। जिस बैठकमें इन दोनों के गाने हुए, उसके विषय में मैंने बहुत सी परस्पर विरोधी बातें सुनी हैं। उस समय स्वयं हाजिर रहने वाले प. श्रीकृष्णजी द्वारा दिया हुआ वर्णन इस प्रकार है:— एक दिन रानी साहिबा, जमनाबाई के मन में आया कि कार्तिक की पूर्णिमा को रात के समय दरबार के सब गवैयों-बजवैयों को बुला कर शिवमंदिर में एक बड़ी महफिल की जाये, और उस महफिल में मिरजकर बुआ भी गावें। इसके अनुसार सब गवैयों को हाजिर रहने का हुक्म दिया गया। इस समय बुआ साहब केवल २४-२५ वर्ष के थे। खां साहब फैज मुहम्मद खां के पास से संदेशा आया कि उनका गाना सबके बाद रखा जाय। इस बात से जमुनाबाई उनसे कुछ अप्रसन्न होगई। मिरजकर बुवा के पास आकर कुछ लोग कहने लगे, "तुम रानी साहिबा के पास कहला भेजो कि जिस महफिल में खां साहब फैज मुहम्मद खां गायेंगे उसमें तुम नहीं गाना चाहते; क्यों कि वे बहुत बडे गवैये हैं।" बुआ ने उत्तर दिया, "खां साहब अवश्य बड़े गवैये हैं, और उनका गुरु-घराना भी ग्वालियर का ही है, अतः मैं उनका आदर अवश्य करता हूं; परन्तु मैं गाऊँगा ही नहीं यह मैं नहीं कह सकता। मेरे गुरु ने कुछ मुझे खोटा विद्या नहीं दी है। खां साहब मुझ से बड़े और अधिक ज्ञानी हैं, अत: यदि उनका गाना मुझसे अच्छा हुआ तो उसमें बुरा लगने जैसा कुछ है ही नहीं। मेरे गाने की अपेक्षा खां साहब का गाना यदि अधिक सरस ठहराया गया,तो वे मुझ से बड़े हैं ही, और मेरा उनके सामने छोटा और नादान होनेके कारण, कुछ घट नहीं जाता; परन्तु,यदि गुणी लोगों की इस महफिलमें मेरे गाने ने रंग जमा दिया तो यह ही मेरे नाम कमाने का मौका है, अत: मैं यह अवसर अपने हाथ से कभी भी नहीं जाने दूंगा। इस लिये गाऊंगा और यदि मेरा गाना जलसे के आरंभ में भी रखा गया तो कुछ चिन्ता नहीं। इन गुणी और वृद्ध लोगों के ऊपर बैठकर गाने का पागलपन तो मैं कभी भी नहीं करुंगा।

अन्त में यह महफिल शुरू हुई। नर्तकियों के नाच हुए, वादन कारों का वादन हुआ और फिर सबके बाद में गायन शुरू हुआ। मिरजकर बुआ गाने के लिये बैठे। उस समय बुआ की बिल्कुल तरुणावस्था थी। शरीर में पूरी शक्ति थी, और महनत के कारण तैयारी भी भर-पूर थी। उनका स्वर ऊंचा था। इस ऊंचे स्वर में बुआ साहब के, उनकी भारी मर्दानी आवाज से गाये हुए गाने सुनने वालों के कानों में ऐसे बस गये कि गाना बन्द हो जाने पर भी उनके कानों में वे स्वर बजते ही रहते थे। वे गाने कानों में गूंजते ही रहे। फिर खां साहब मौला बख्श का गाना हुआ, और अन्त में फैज मुहम्मद खां का गाना शुरू हुआ। ये दोनों वृद्ध थे, और उनका स्वर भी बुआ सा: के स्वर की अपेक्षा कम होने के कारण तंबूरे उतारे गये। बुआ सा: के ऊंचे मर्दाने स्वर में गाया गाना न लोगों के कानों से निकलता और न इन नीचे स्वरोंको गानों का रंग ही जमपाता था। अत: फैज मुहम्मद खां का गायन बिल्कुल फीका पड़गया। वैसे देखा जायतो, खां साहब महफिली गवैये के नाम से प्रसिद्ध नहीं थे। एक बड़े विद्वान गायक और कुशल शिक्षक होने के कारण ही विशेषत: इनका नाम था। अब खां साहब की आखिरी चीज होकर महफिल समाप्त होने ही वाली थी कि उतने ही में सिद्धनाथ से आकर श्री. गणपति बुआ ब्रह्मचारी ने महफिल में प्रवेश किया। इन साधू महाराज को रानी जमुना बाई साहिबा गुरु के समान ही मानती थीं। अत: उनका आदर-सत्कार करने के लिये वे उठकर खड़ी हो गईं, तथा यह देखकर सभा के सारे लोग भी उठ खड़े हुए। श्री. गणपति बुआ के बैठने-पर सारे लोग भी बैठ गये। श्री. गणपति बुआने गाना सुनने की इच्छा प्रकट की। खां साहब फैज मुहम्मद खांने कहा, "महाराज! बड़ौदा में मेरे सबसे वृद्ध-गवैया होने के कारण मेरे पश्चात् कोई भी नहीं गायेगा, अत: मैं ही

आपको दो एक चीज़े सुना हूँ।" श्री. गणपति बुआने कहा "खां साहब मैं आपका गाना तो हमेशा ही सुनता हूँ, और फिर आप बडौदा में ही रहते हैं; अतः वह मैं कभी भी सुन सकता हूँ। किन्तु, मैंने सुना है कि मिरज से आये एक तरूण-बुआ अत्यन्त ही सुन्दर गाते हैं। अतः मुझे उनका गाना सुन वाइये।" श्री. गणपति बुआ की इच्छानुसार जमुना बाई रानी साहिबाने खां साहब को अपना गाना बंद करने का हुक्म दिया, और मिरजकर बुआ से गाना फिर शुरू करने के लिये कहा। अन्त में खां साहब बैठक छोड़कर अलग एक ओर बैठ गये और मिरजकर बुआ ने वह स्थान संभाला। फिर से तंबूरे ऊंचे स्वर में मिलाये गये और बुआ सा: का गाना शुरू हो गया। मौला बख्श व नासिर खां इत्यादि बुआ सा: को चाहने वाले लोग उनके पास ही आकर बैठने गये। हां, हां, कहते कहते ही गाना जमगया और सुनने वालोंने लगातार वाह-वाह की झड़ी लगा दी। इस समय बुआ ने 'विहार' राग में '**नई ऋतु नई फूलि**' यह ख्याल और 'माल-गुंजी' राग में '**बन में चरावत गैया,**' बस येही दो ख्याल गाये। सारे सुनने वाले प्रसन्न हुए और बुआ की कीर्ति और भी बढ़ गई-

कभी-कभी यह सुनने में आता है कि मिरजकर बुआ ने खां साहब फैज मुहम्मद खां का अनादर किया था; परन्तु वास्तव में बात ऊपर कही हुई के अनुसार है। इस प्रकार के आपत्तिजनक पत्र बालकृष्ण बुआ के पास भी भेजे गये और वे भी मिरजकर बुआ से अप्रसन्न हो गये थे। सन् १९०५ में अब मिरजकर बुआ (पं. विष्णु दिगंबर) इचल करंजी (एक स्थान) में गुरु-दर्शनों के लिये आये, तब बालकृष्ण बुआने उनसे कहा, "तू अभी बडौदा जा, और खां साहब फैज मुहम्मद खां से माफी माँग।" मिरजकर बुआ ने उत्तर दिया, "मैंने खां साहब का अपमान किया ही नहीं है, तो माफी किस लिये माँगू।" खां साहब अपने ही ग्वालियर घराने के हैं, यह मुझे मालूम था, अतः मैंने प्रत्येक समय उनका मान-सत्कार किया उनकी विद्वत्ता का सन्मान करके हर समय जब भी वे आते, मैं उठ कर उन्हें नमस्कार करता और खड़ा रहता। रानी साहिबा के हुक्म के कारण ही मुझे उनकेबाद मजबूरी गाना पड़ा इसमें मेरा क्या अपराध हुआ? इतने श्रेष्ठ गवैयेने मेरे जैसे तरुण को बढ़ापादेने की बजाय, अपना अपमान हुआ समझ रखा हो तो इसे मैं क्या करूं? मै आपके पैर चाहे दस बार पकड़ लूँगा, किंतु जो अपराध किया ही नहीं उसकी माफी मांगने के लिये तो माँ तैयार नहीं। इस घटना के समय जो सज्जन हाजिर थे उनसे ही मुझे यह सच्ची बात मालूम हुई है।

उस समय के लोगों को यह भली प्रकार मालूम है कि विष्णुपंत छत्रे बालकृष्ण बुआ की बड़ी निंदा करते थे विष्णुपंत छत्रेनें हद्दुखां के पास वर्षों गाना सीखा था; किन्तु आवाज अच्छी न होने के कारण उसमें तान न थी और वे गवैयों पर अपना प्रभाव नहीं डाल पाते थे। बालकृष्ण बुआ की आवाज मीठीथी और उसमे तान बाजी भी थी, अत: वे महाराष्ट्र में जल्दी ही प्रसिद्ध हो गये थे। गानें पर तो कुछ प्रभाव नहीं पड़ता, अतः विष्णुपंत छत्रे बाळकृष्ण बुवा ताल में कच्चे हैं. ऐसे तथा अन्य कई आरोप उन पर लगा कर उन्हें सताते रहते थे। इसके बाद विष्णुपंतने संगीत छोड कर सर्कस चलाया और उसमें अनोखा नाम कमाया। जब मिरजकर बुआ बड़ोदा में हीथे, उसी समय विष्णुपंत छत्रे भी वहां आये। बाळकृष्ण बुआ का एक शिष्य इतना नाम कमाले यह बात उन्हें अच्छी न लगी। मिरजकर बुआ के एक गाने के प्रोग्राम के समय विष्णुपंत छत्रे भी उपस्थित थे। विष्णुपंत को आया देख कर मिरजकर बुआ समझ गये कि आज वे कुछ न कुछ गडबड अवश्य करेंगे। तंबूरा मिलाकर वे गाना शुरू करने वाले थे कि इतने ही में विष्णु पंत छत्रे ने कहा, "बुआ! वह पंचम का तार अभी बे सुरा है, वह तो पहले स्वर में मिलाओ और फिर गाना शुरू करो।" मिरजकर बुआ ने उत्तर दिया, "मेरे कान के लिये तो वह तार बिल्कुल स्वर में है, ऐसा लगता है। फिर आपही स्वयं इधर आकर तम्बूरा हाथ में ले और जो तार बेसुरा हो वह ठीक करके दिखायें। तुम्हें तो चाबुक हाथ में लेकर घोडों से खेल कराना अच्छा आता है, यह मुझे मालूम है; किन्तु गाने के विषय में तो कमसे कम मुझे सिखाने का दु:स्साहस आप न करें।" इस बात से छत्रे और भी चिढ़ गये, और कुरुंदवाड आकर उन्होंने मिरजकर बुआके विषयमें बहुत सी बुराईयां कीं और लोगों में झूठी बातें फैलाई।

बड़ौदासे प्रयाण

बड़ौदा की महफ़िल में सफलता के कारण मिरजकर बुआं का आत्म विश्वास बढ गया। उन्हें धन भी बहुत सा मिला। उन्होंने वहां नये वाद्य खरीदे और एक नौकर भी रख लिया। यहां उनके

कई नये शिष्य भी मिले। बड़ौदा से वे काठियावाड गये। मांगरोळ के नबाब साहब ने बुआसा: का गाना सुनते ही उन्हें २००६.मासिक की नौकरी दे दी। किन्तु; बुआसा: का उद्देश्य बाहर फिरने का था। महफिलें करते देश भर में फिरने. अपना गायन दूसरे गवैयों को सुनाने तथा स्वयं दूसरे गुणी लोगों के गाने सुनने, और इस प्रकार अपना नाम करते हुए, संगीत की दुनियांकी बारीकी का निरक्षण करके, यदि कुछ दोष मिल सकें तो जो बन सके वह सुधार करने, इत्यादि इन कारणों के लिये उन्होंने यह नोकरी भी छोडदी। जब मिरजकर बुआ राजकोट में थे, तब अनंत मनोहरभी मिरज से उनके पास आगये। काठियावाडके कई बडे-बडे गाँवों में गाना-बजाना करके वे सारी पार्टीके साथ गिरीनार पर्वत पर गये। वहाँ उन्हें एक सिद्ध-पुरुष मिला। उसने मिरजकर बुआसे कहा, "तुम पंजाबमें जाओ, और वहीं तुम्हारा काम शुरू होगा।" बुआने कहा, "मैं पंजाब जाकर क्या करूं? मुझे हिन्दी भी तो बोलना नहीं आता।" "इसपर उस सिद्ध पुरूषने कहा, "तुमोकसी प्रकारकी चिन्ता मत करो, तुमवहां जाओ तो, बस परमेश्वर सब सहायता करेंगे।" इस सिद्ध पुरुष की आज्ञा के अनुसार मिरजकर बुआने पंजाब जानेका निश्चय कर लिया।

ग्वालियर की महफिलें:—

हस्सू खां १८५० में मरगये। मुहम्मदखां की १८७४ में ही मृत्यु हो जाने के कारण पुत्र-शोक में दुखी रहकर हद्दुखां भी १८७५ में ही मृत्यु-लोकको सिधारे। फिर १८७९ में नत्थे खांभी स्वर्गवासी हो गये, और उनके साथ ही हद्दू-हस्सू खां का जमाना समाप्त हो गया। इस समय खांसाहब निसार हुसैन खां व मेंहदी हुसैन खां ही हद्दू-हस्सू खां के स्थान में ग्वालियर में संगीत सिखानेका कार्य करते थे खां साहब मेंहदी हुसैन के शिष्यों के विषय में कुछ अधिक जानकारी नहीं मिलती, परन्तु खांसाहब निसार हुसैन के सिखाये हुए पं. शंकरराव और उनके भाई एकनाथ पंडित, तथा भाऊ पंडित, ये सब विशेष रूप से प्रसिद्ध हुए शंकरराव पंडित के पुत्र पं. कृष्णराव आज भारतमें पहिले दर्जे के कलाकारों में माने के कारण, सब जगह के कलाकार उनका आदर करते हैं। पंडित शंकरराव के ही शिष्य पं. राजा भैया पूंछवाले भीसंगीत-शिक्षण का काम अभी तक करते है, और 'माधव-संगीत-विद्यालय' (ग्वालियर) के मुख्याध्यापक हैं।

मिरजकर बुआ के ग्वालियर पहुँचने पर, वहां उनकी अनेकों महफिलें हुई। एक बार डोलीं बुआ- [नाथपंथी] के यहां उनका गाना हुआ, जिसमें पं. राजा भैया पूंछ वाले भी आये थे। उनकी एक खास और नामी महफिल कै. चिन्तामनराव वैद्य (उस समय के न्यायाधीश) के घर हुई, जिसमें ग्वालियर भर के तमाम गवैये बजवैये आये थे। अमीरीखां, प्रसिद्ध सितारिये, उस समय ग्वालियर में ही नौकरी करते थे। इस २५-२६ वर्ष के जवान गवैये को बैठक पर बैठते देखकर, उन्होंने समझा कि यह कोई नाटकके गाने गायेगा; किन्तु, जिस समय मिरजकर बुआ और उनके दो साथीदारों [पं. अनंत मनोहर तथा पं. श्रीकृष्णाजी हिलेकर] ने पहला ख्याल ही सुन्दुर ढंग से भरा, तो उन्हें विश्वास हो गया कि तालीम अवश्य ही असली ग्वालियर की ही है। थोड़ी ही देर में वे इतने खुश हुए कि उनसे चुप न रहा गया और बीच में ही खडे होकर कहने लगे, "यह सच है कि मेरे कारण इस गाने में थोडा विघ्न पडेगा; किन्तु उसे सुनकर मेरा हृदय गद्गद् होगया है और मुझे मरहूम हद्दु खा तथा मुहम्मद खां की याद आ रही है। मिरज के ये जवान गवैये खास, मुहम्मद खां की गायकी गाते हैं। मैंने स्वयं हद्दु खां तथा मुहम्मद खां को गाते सुना है, अत: यह गाना सुन कर उनके गाने का ढंग याद आ गया, और इससे बहुत आनंद हुआ बस, इतना कहने के लिये ही मैंने इस गाने में विघ्न डाला था, जिसके लिये मैं सभा में उपस्थित तमाम लोगों से माफी माँग कर अपनी जगह पर बैठता हूँ।" पं. अनंत मनोहर का कहना है, उस समय बुआ की आवाज़ में इतनी सफाई व इतना जोर था कि उस उस दिन ज्योंही उन्होंने तार सप्तक के पंचम में लगाया कि हमारे ऊपर लटके हुए बडे दीप-वृक्ष (झाड-फानूस (Head Lamp) की ज्योति भकभकाने लगी, और ऐसा लगा मानो कि दिया बुझने ही वाला हो। इतने ही में बुआ ने अपनी आवाज़ पंचम पर से नीचे उतार ली और दिया फिर से पहले की तरह जलने और प्रकाश देने लगा। इसके बाद खां साहब निसार हुसैन खां का गाना हुआ, जिसमें साथ के लिये पं. शंकरराव बैठे थे।

अमीर ख़ां ने बुआ और उनके साथीदारों को अपने घर बुला कर अपना सुन्दर सितार-वादन सुनाया।

पंडित विष्णु दिगंबर

ग्वालियर छोडने के बाद वे सारे हिन्दी-प्रान्तों में गये, जहाँ लोग उन्हें महाराष्ट्रीय नाम मिरजकर बुआ की बजाय पं. विष्णु दिगंबर कहने लगे, और फिर इसी नाम से वे सारे भारत-देश में प्रसिद्ध हुए—

ग्वालियर की गानों की महफिलों के कारण उनकी कीर्ति झटपट बढने लगी और जगह-जगह मे उन्हें बुलाने भी आने लगे अलीगढ के लाला तुलसी प्रसाद नामक धन वान कायस्थसज्जनने उन्हें बुलाकार बडी खुशी के साथ अपने बागवाले बंगले में ठहराया। ये सज्जन बडे श्रीमंत थे। कहा जाता है कि उनकी प्रातः क्रिया के लिये भी गुलाब-जल काम में लाया जाता था वहाँ घाकू नामका एक बाई पंडितजी और उनकी पार्टी केलोगों की दाढी और बाल बनाने के लिये आया करता था। एक दिन उसी धाकू ने एक-दो ध्रुपदें कहकर सुनाईं पंडितजी के शिष्यों को इस पर आश्चर्य हुआ और सायंकाल क समय उसे बुलाकर पंडितजी के पास ले गये। वहा उसने ९-१० ध्रुपदें कहकर सुनाईं और लगे हाथ ही उसने उन ध्रुपदों की 'सरगम' की। इतना ही नहीं, वह संगीत शास्त्र पर लिखे ग्रन्थों में से संस्कृत के श्लोक सुना कर उनके अर्थ भी कहने लगा। पंडितजीने इस समय तक इसबात परध्यान नहीं दियाथा कि संगीत प्रर संस्कृत ग्रन्थभी लिखे हुए हैं और जिन चीजों को वे गाते थे, उनका नोटेशन भी हो सकता है।

पहले के सभी गवैयों की शिक्षण-पद्धति यह थी कि संगीत सिखाते समय सबसे पहिले सात स्वर और कुछ पल्टे होते ही 'सरगम' का काम समाप्त हो जाता; फिर गुरुजी की लहर के अनुसार जो चीजें वे सिखाते वे ही सीखना और हजारों बार रट कर उन्हें ही पक्का करना। पं. बालकृष्ण बुआ भी इस नियम के कुछ अपवाद न थे।

पं. अनंत मनोहर, पं.श्रीकृष्णजी व वामन बुआ व फेकर इत्यादि के बाल कृष्ण बुआ के बहुत से शिष्यों से मैंने इस विषय में प्रश्न पूछे थे। उन सब ने मुझे बताया कि बालकृष्ण बुआ चीज तो अनेक सिखाते थे, पर रागों के नाम न बताते थे, और यदि हममें से कोई वह पूछने का साहस करता भी, तो वह तुरन्त दरवाजे के बाहर हँकाल दिया जाता। परन्तु, यदि कभी वे आनंद (मौज) में होते तो केवल इतना ही उत्तर देते, "तुझे रागका नामलेकर ही क्या करना है? जैसी मैंने सिखाई हैं, उसी तरह चीज को अच्छी तरह से याद कर और उस चीज के अंगों को गा। तुझे राग का नाम आप से आप समझ जायेगा।" मुझे याद है, एक बार मैंने यही प्रश्न पंडितजी से पूछा था, और उन्होंने उत्तर दिया था, "जहां रागों के नाम बताने की ही पंचायत आ पडे, तो वहां हमें राग में आने वाले स्वर और आरोह-अवरोह के नियम भला कौन बताता? अतः हम बुआ के साथ के लिये बैठने का एक भी अवसर हाथ से न जाने देते थे। जिनके घर बैठक होती, वे कभी-कभी बुआ साहब से राग का नाम पूछते और वे उन्हें वहां बताने लगते; तथा हम बिल्कुल कान लगा कर सुना करते थे, अतः वे राग के नाम हमें मालूम हो जाते थे। बहुत से रागों के नाम हम इस प्रकार ही समझ पाये हैं।"

अलीगढ में ही पंडितजीने निश्चय किया कि 'सा रे ग म' करने की इस कला को व्यवहार में लाना ही चाहिये, तथा संगीत पर लिखे हुए ग्रन्थों को इकट्ठा करके उनका भी अभ्यास किया जाय। उन्होंने महफ़िलें करते फिरने का विचार तुरन्त बदल दिया और सीधी मथुरा की राहली। मथुरा ही पसंद करने में मुख्य उद्देश्य यह था कि वहां शांति से बैठ कर अभ्यास हो सकेगा और वहां संस्कृत जानने वाले बहुत पंडितों के होने के कारण संगीत से सम्बन्ध रखने वाले ग्रंथ भी मिल सकेंगे। पंडितजी मथुरा में लगभग ९ महिने ठहरे। उस समय उनके साथियों की संख्या ३ से बढकर. ८-९ तक पहुँच गई थी।

नोटेशन तथा ग्रंथः-

मथुरा पहुँचते ही उन्होंने ३२ श्रुतियाँ लगाने का अभ्यास शुरू कर दिया। रात के समय वे अकेले ही बैठकर यह अभ्यास करते थे। शीघ्र ही उन्हें एक के बाद एक, इस प्रकार बाईसों श्रुतियाँ लगाना आने लगा। पहिले-पहल तो उनसे किसी भी चीज का 'सरगम' निकालते न बना। पंडितजी और उनके शिष्य घंटों बैठकर 'सरगम' ही निकाला करते। पं. श्रीकृष्णजी व पं. अनंत

मनोहर ये दोनों इस खटपट का मजा खूब सुनातेहैं। एक-एक चीज के अक्षरों को कहना व एक एक शब्द के स्वर खोजकर बड़ी कठिनाई से निकाल और परन्तु ही वह सब लिख कर रखना पडता था। 'अवगुन न कीजिये' इस 'यमन' राग की केवल एक ही चीज का 'सरगम' करने में इन सब लोगों को पन्द्रह दिन लगे। फिर ऐसी आदत डालते-डालते ४-५ महिनों में सबको ही 'स रे ग म' की आदत पड़ गई।

उस समय मथुरा में गणेशजी चौबे नाम के एक बडे गवैये रहते थे। उनके पास संगीत-सम्बन्धी ग्रन्थ थे। पांडित जी उनसे मिलने के लिये गये; किन्तु उन्होंने ग्रन्थ इत्यादि कुछ न दिया। अन्त में वहां के ही एक दूसरे चौबे जी के पास उन्हों कुछ ग्रन्थ मिले, और उनका अभ्यास शुरू हो गया। जब पंडित जी ने यह समझ लिया कि एक ग्रन्थ में संगीत के मुख्य ६ राग भी दूसरे ग्रन्थ के उन्हीं रागों से नहीं मिलते, और प्रचलित संगीत किसी भी ग्रन्थ के अनुसार नहीं जमता तो उन्होंने वह सब लिखने-पढ़ने और सीखने का शौक भी छोड दिया। उन्हें स्वयं आने वाली सब चीजों की जांच करके तथा प्रत्येक राग में आने वाले स्वर ढूंढ़ कर उन्होंने वह सारी विद्या लिख कर रखली; और फिर लिखी गई पुस्तकों में उसी सामग्री को काम में लाया गया है। इस समय तक कई ग्रन्थ पढ चुकने के कारण, उन्हें यह भली प्रकार मालूम हो गया था कि भिन्न-भिन्न ग्रन्थों में कौन-कौन से विषय थे।

इसके बाद, उन्हें संस्कृतके ग्रन्थों की ओट में बिनाबात ही गवैयों की निन्दा करनेवाले लोग जहां-कहीं भी मिले, उनसे वाद-विवाद करने में ही केवल उस सारे अभ्यास का पूरा उपयोग हुआ।

श्री. गोस्वामी पन्नालालजी :—

उस समय दिल्ली में श्री. गोस्वामी पन्नालालजी नाम के एक विद्वान सज्जन रहते थे। वे स्वयं बड़ी अच्छी सितार बजाते थे। सन् १८८६ में 'नाद-विनोद' नाम का एक संगीत-सम्बन्धी ग्रन्थ उन्होंने शिला प्रेस में छपवाकर प्रकाशित किया था। पंडित विष्णु दिगंबर के दिल्ली पहुँचनेपर इन गोस्वामीजी ने उनसे शास्त्र सम्बधी चर्चा की। जब पंडितजी दिल्ली ही में थे तो 'दोजाना' के नवाब साहब ने उनकी एक गाने की महफिल कराई थी, और खां साहब बर्कतुल्ला तथा दिल्ली के सारे गवयों को सुनने के लिये बुलाया था। उस समय खां साहब बर्कतुल्ला ने पंडितजी की बड़ी ही प्रशंसा की और उन्हें अपने यहां बुलाकर अपनी सितार भी सुनाई थी।

जालंदर:—

ग्वालियर की महफिलों की कीर्ति आस-पास फैल चुकी थी उनकी दिल्ली की महफिल की कीर्ति पंजाब तक शीघ्र ही पहुँच गई, जिससे जालंदर के पं. तोलाराम जीने भी उन्हें बुलाया। जालंदर में हर साल दिसम्बर के महिने में 'बाबा हरिवल्लभ' जी के स्मृति-दिन के मौके पर एक बड़ा उत्सव होता है। इस सम्बंध में कितनेही गवैये बजैये वहां जाते हैं। तीन चार दिन गाना बजाना होता, तथा जो गवैया उस वर्ष सबसे अच्छा माना जाता अन्तमें उसका गाना होकर, उसके गले में आदर के रूप में एक हार पहनाया जाता है। सन १८९७ में पंडितजी पहली बार जालंदर गये। उस समय उनकी आयु २६ वर्ष की थी। प्रसिद्ध मृदंग विशारद गुरु देवजी पटवर्धन (पं. विनायक राव पटवर्धन के चचाभी उस समय पंडितजी की पार्टी में शामिल हो गये थे। उन्होंने मृदंग व तबला, हैदराबाद के वामनराव चांदवकर, नाना साहब पानसे के शिष्य, से सीखा था।

जालंदर के इस जल्से में अनेक हिंदु-मुसलमान गायक दूर-दूर से आते हैं। पंडितजी और उनके शिष्यों ने पहले दिन आकर देखा तो जल्से में गवैये के साथ ६ तबलची बजाते हुए उन्हें दिखाई दिये-तीन दाहिनी ओर तो तीन बाईं, और एक दो आवर्तन बजा कर ज्योंही एक तबलजी सम पर आता कि तुरन्त दूसरा तबलची बजाना शुरू करता। यही क्रम घन्टो चलता रहा। गाने वालों में धृपद-धमार गाने वालों की ही भीड थी। हर एक धृपद शुरू करता, और उसकी दुगन, आड़, कुवाड़ होते ही दूसरा धृपद शुरू कर देता। पंडितजी को यह ६-६ तबले वालों का साथ कुछ विचित्र सा मालम हुआ, अतः उन्होंने पहला गाना अपने ही तबल जी को लेकर किया। उस समय सुनने वालों पर पंडितजी की आवाज, गायन-कला और तैयारी का बहुत ही अच्छा प्रभाव पडा और पहले गाने में ही उन्होंने अपनी धाक जमादी। किन्तु, दुसरे गाने के समय अमृतसर के एक तबलची ने पंडित जी से प्रार्थना की कि अपने गाने के साथ उसे बजाने की आज्ञा दे दें। पंडितजी ने उसकी बार

मानली और उन्होंने सारे तबलचियों को भी बैठने की आज्ञा दे दी। छःहों तबलची बैठ गये। पंडित जी, इस प्रान्त के लोगों की चाह और पसंद तथा उसके गुण-दोष यह सब, भली प्रकार समझ चुके थे। उन्हें यह भी मालूम हो गया था कि इस तरफ के तबल ची लयकारी में कुछ कच्चे होते हैं, और बड़ी सावधानी पर भी लय में उनके ठेके बराबर नहीं लगते। उन्होंने एक ख्याल इतनी धीरी लय में शुरू किया कि एक के बाद एक तबलची ठेका लगाना छोड़ कर बजाना ही बन्द करने लगा। अन्त में पंडित जी ने पं. गुरुदेव जी को बुलाया और उन्होंने इतना सुन्दर ठेका लगाया कि जिसे सुनकर कितने ही तबलची उन्हें मानने लगे। इसी समय अमृतसर के दो एक तबलची पं. गुरुदेव जी का गंडा बाँध कर तबला व मृदंग सीखने लगे। इस गाने के कारण तो पंडित जी का नाम पंजाब भर में फैल गया। जगह जगह से उन्हें बुलानें भी आने लगे। साधारणतः सन् १९०७ तक पंडित जी जालन्दर के इस जल्से में अवश्य भाग लेते थे और हरसाल जीत का हार उनके ही गले में पहनाया जाता था।

इसके बाद वे अमृतसर लाहौर, काश्मीर, रावलपिंडी इत्यादि शहरों में घूमकर भरतपुर आये। यहां भी उनका गाना बड़ी धूम-धाम से होने लगा और धन भी बहुतसा मिला।

वक्तृत्व-कला का श्री-गणेश

इस समय तक पंडितजी एक नामी तैयार गवैये हो थे, और उनके निर्व्यसनी तथा सदाचारी होने के कारण उनका सन्मान होता था। हिन्दी-भाषा सीखने का आरंभ, उन्होंने पहले-पहल, मथुरा में किया। फिर हिन्दी प्रधान प्रांतों में ही फिरते रहने के कारण वे भली प्रकार हिन्दी बोलने लगे। वे अब हर चीज की 'सरगम' समझने लगे थे। भिन्न-भिन्न गावों में बारंबार वाद-विवाद के संयोग आते ही रहते थे, अतः आवश्यकतानुसार वे शास्त्र सम्बंधी चर्चा भी करने लगे; परन्तु वे उस समय केवल एक पढे लिखे गवैये ही थे और भाषा इत्यादि की बातको वे सदा टाल ही देते थे।

जब वे भरतपुर में ही थे, तो इनके गुणों को देखकर 'मयाशंकर जी जानी' नामक नागर ब्राह्मण बहुत खुश हुए। वे भरतपुर में एज्युकेशनल-इन्सपेक्टर के पद पर काम करते थे। उन्होंने पंडित जी से कहा कि आपको किसी भी सभा में कम से कम चार शब्द तो बोलते आना चाहिये। लोग आपका सम्मान करते हैं, आपकी प्रशंसा में भाषण देते हैं; किन्तु आप कुछ भी नहीं बोलते, यह ठीक नहीं है। अभीतक आप बैठक भरनेवाले गवैये ही हैं। यह नई बात आपको सीखना चाहिये। ' मयाशंकरजी ने उन्हें वक्तृत्व-कला के पाठ देना शुरू किया। एक दिन नागरिकों की ओर से एक बडी सभाद्वारा उनका मान-स्वागत किया गयाड़ी उन्होंने पंडितजी को भाषण लिखकर दे दिया था; किन्तु ठीक उसी समय पर पंडितजी घबरा गये। और वह लिखा हुआ भी उनसे ठीक-ठीक नहीं पढ़ते बना। ' मयाशंकरजी ' अप्रसन्न हुए। उन्होंने फिर पंडितजी को कुछ पाठ पढ़ाये और दूसरी सभा की, इस समय तो पंडितजी ने उस भाषणको इतनी बार पढा था कि उन्हें वह लगभग जुबानी याद हो गया था। इस सभा में तो बस, वह पहलेसे ही लिखा हुआ भाषण उन्होंने भली प्रकार से दिया और मयाशंकरजी भी प्रसन्न हो गये। इसके बाद हर स्थान पर थोडा बहुत बोलनेका उन्होंने एक नियम ही बना लिया; जिससे फिर हिन्दुस्तान के नामी वक्ताओं में उनकी भी गणना होने लगी।

नोटेशन-पद्धतिः—

भरतपुर से वे जोधपुर गये। वहां उनका दरबार में भी गाना हुआ। उस समय हर बड़े संस्थान में गायक होते थे और राजा का कोई न कोई तो उस्ताद होता ही था। सारे ही राजा गायन नहीं समझते थे। कोई बाहर का गवैया आता तो वे अपने उस्ताद जी की ओर देखते रहते और यदि वे गर्दन हिलाते तो आप भी गर्दन हिला देते थे। जोधपुर के उस्तादजी की जब गर्दन हिलती हुई न देखी, तो राजा साहब ने पूछा, "क्यों उस्तादजी पंडितजी कैसा गा रहे हैं?" उस्तादजी ने उत्तर दिया, "पंडितों में अच्छे हैं।" इस पर पंडितजी ने राजा साहब का ध्यान आकर्षित करते हुए कहा, "हुजूर! पंडितों में ही अच्छा होना चाहिये, मूर्खों में अच्छा होना क्या काम का है?" राजा साहब पंडितजी के इस हाजिर जवाब को सुन कर बहुत हँसे, और वे इस तरुण कलाकार पर प्रसन्न भी हुए। राजा साहब को प्रसन्न देख कर उस्तादजी को भी अपनी गर्दन हिलाना पड़ी।

यहीं उन्हें एक मि. जेम्स नामक जर्मन बैंड मास्टर मिले। उन्होंने पंडितजी को अपने नोटेशन दिखाये। पंडितजी ने कहा, 'हम भी नोटेशन कर सकते हैं।" मि. जेम्स ने अपने दो,

गाने बजाये। पंडितजी के विद्यार्थियों ने उनके नोटेशन करके लिख दिये। वहां जो विद्यार्थी उस समय उपस्थित न था, उसे बुला कर वह गाने उन्होंने उससे गवबा कर दिखाये। उस समय तक उनकी लेखन पद्धति (Notation System) अपूर्ण ही थी। फिर बीकानेर के पुस्तकालय में उन्हें ग्रन्थ मिले और उनकी सहायता से उन्होंने सारी रागों के चिन्ह और उनके नाम निश्चित किये। इसके बाद मौंट गौमेरी आकर उन्होंने लेखन-पद्धति को पूरा किया और कुछ चीजों के नोटेशन करके "संगीत-बाल-बोध" नामक पुस्तक लिखी, जिसे छापने के लिये वे लाहौर गये। यह पुस्तक हिन्दी और उर्दू दोनों भाषाओं में प्रकाशित हुई।

यह सन् १९०१ के आरंभ का समय था। पंडित जी को लाहौर अच्छा लगा, अत: इसके बाद से वही शहर उन्होंने अपने मुख्य निवासस्थान के लिये पसंद किया।

ध्येय का निश्चय:—

पं. विष्णु दिगंबर का शिक्षण पं. बाल कृष्ण बुआ के पास हुआ। मिरज छोड़कर वे बड़ौदा और ग्वालियर जैसे प्रसिद्ध स्थानो पर गये। वहां प्रसिद्ध गायकों के साथ उन्होंने महफिलों में गाया, और आपने गुणों तथा गायन-कला के द्वारा नाम कमाया था। वहां के गायकों का गायन और वादकों का वादन उन्होंने जी भर कर सुना। किसी ने चुनौती भी दी तो उसके साथ गाने में वे कभी भी पीछे न हटे। विशेष कर अपनी मर्दानी गायन-कला के जोरपर ही २९ वर्ष आयु में एक नामी गायक के रूप में महाराष्ट्र काठियावाड, राजपूताना गुजरात, युक्त-प्रान्त, दिल्ली, और पंजाब से काश्मीर तक उनकी कीर्ति फैल गई थी। मिरज छोड़े अभी ४-४॥ वर्ष ही बीते होंगे कि इतने ही समय में वे हिन्दी भाषा बड़ी अच्छी भाँति समझने लगे थे। अब वे 'सरगम' की सारी बारीकियां को भी जानते थे। उन्होंने अपनी लेखन पद्धति पूरी करके उसकी सहायता से पुस्तकें छापना भी शुरु कर दिया था। शिष्यगण भी बढ़ने थे और उनके साथ के लवाज़मे में भी १२-१५ मनुष्य हो गये थे। पं. गुरुदेव जी जैसे सदाचारी एवं परिश्रमी कलाकारों के साथ का उन्हें सौभाग्य प्राप्त हुआ था। उनका समस्त जीवन विद्यार्थियों को सिखाने तथा स्वयं महनत करने में ही जाता था। उन्होंने गांव-में जाकर यह भली प्रकार समझ लिया था कि सर्व साधारण के दिल में गायन कला के लिये प्रेम न था। लोग गाना नहीं समझते थे। गवैयों का तो समाज में भरपूर अपमान ही होता था। उच्च घराने के लोग लड़के-लड़कियों को गायन सिखाने के लिये तैयार ही न थे। लाहौर में बैठकर इन सब बातों पर उन्होंने शांति-पूर्वक विचार किया और फिर आगामी कार्य का विधान (ख़ाका) तथा निश्चित स्वरूप का निर्माण किया। किन्तु, उनके कार्य इतने विस्तृत हैं कि उन सबके विषय में परिचय देने के लिये दूसरे अंक का आसरा लेना ही पड़ेगा।

उनकी गायकी:—

पंडितजी की आवाज बुलंद थी; तथा उसमें तान न थी, जिसके लिये उन्होंने रात-दिन परिश्रम किया और अन्तमें उस पर सफलता प्राप्त करके उसे प्रभावशाली तथा रसीली बनाली। भरपूर परिश्रम से प्राप्त तान दानेदार, वजनदार, और जोरदार थी।

उनकी आवाज के लगाव की तारीफ खां साहब मुबारक अलीखां (कराची) ख़ासा: फैयाज खां (बड़ौदा), पं. राजा भैया पूँछ वाले (ग्वालियर), खांसाहब [illegible] (बम्बई) तथा खां साहब विलायत हुसैन खां (बम्बई) इन सबने मुझसे मुक्त-कंठ की है।

१९०८ अर्थात् लाहौर छोड़कर बम्बई आने तक, पंडितजी रोज़ अपने हाथ में डग्गा लेकर ही महनत करते थे। इस प्रकार उन्होंने सारी चीज़ें हजारों बार रट डाली थी। इस घोर परिश्रम के कारण उनके गाने में आत्म-विश्वास आदि से अन्त तक दिखाई पड़ता था।

पंडितजी का गायन अर्थात् बालकृष्ण बुआ का ही गायन था। उनकी गुरूजी पर इतनी श्रद्धा थी कि इतने नये-नये घरानों के गवैयों का गाना सुनकर भी उन्होंने अपना गाना तनिक भी न बदला। उन्हें हिन्दी अच्छी तरह आती थी। कभी-कभी सिखाते सिखाते वे स्वयं हंसने लगते और कहते, "यह पुरानी चीज़े भी क्या हैं? स्वर-रचना कितनी सुन्दर, किन्तु अर्थ की दृष्टिसे देखा गया तो कितनी अशुद्ध।" एक बार एक प्रौढ़ विद्यार्थी ने उन्हें डरते-डरते सुझाया कि वे उन्हें शुद्ध क्यों नहीं करते? यह

सुनते ही उनका चहरा गंभीर हो गया और उन्होंने कहा, "मेरी विद्या मैंने गुरु-मुख से सीखी है। शुद्ध या अशुद्ध, उनकी सिखाई हुई चीजों का एक अक्षर भी मैं नहीं बदलूँगा, किन्तु, मैं तुम्हें यह परवानगी अवश्य देता हूं।

वे ताल और लय के बडे पक्के। बालकृष्ण बुआ पर 'बेताल' होने के आरोप का उन्हें पूरा ध्यान था। उन्होंने जानबूझकर कुछ ऐसी आदत डालली थी कि जैसेही वे गाना शुरू करते, उनका दाहिना पैर अपने आप ताल के साथ हिलने लगता। इस पैर को वे सदैव धोतीसे ढँक कर रखते थे। तबले वाले को जितना जी चाहे उतना बजाने की स्वीकृति थी। वे स्वयं बचपन से ही मृदंग बजाते थे। श्रीकृष्णजी कहेत हैं, कि उन्है लगभग २००-२५० बोल याद थे।

बाळकृष्ण बुआ की भांति पंडितजी का गायन सीधा होता था। चीज की अस्थाई दो बार और अन्तरा एक बार कहे बिना वे गायकी शुरू ही नहीं करते थे। उनके पास चीजों का भंडार इतना बडा था कि प्रत्येक बार वे नई-नई चीजे ही गाते थे। वे धीरे धीरे बढते थे, और ऊपर के पंचम तक आलाप जाते ही वे अन्तरा शुरू कर देते, और फिर अन्तरा के आलाप करते थे। आलाप समाप्त होने पर अस्थाई और अन्तरा दोनों पर ही बोल तान, तथा अन्त में तान लेते थे। उनकी तान अलंकार-युक्त होती थी। तान में समझ में न आसकनेवाले दाव पेंच न होते थे। उनका गाना समझने में कठिन न होता था। उनका सारा ध्यान प्रत्येक तान के स्वर स्पष्ट, बलदार, तथा जोरदार निकलने की ओर था। उनकी भारी और भरतीदार आवाज के योग्य ऐसी तीनों सप्तकों की फिरत सुनने योग्यही होती थी। 'सरगम' करने की प्रथा उन्होंने ही शुरू की। 'तराने' उन्हें बहुत अच्छे लगते थे। वे 'तरानों' में तान नहीं गाते थे, तो तननन, दिर दिर दिर इन अक्षरों में ही सारी करामत दिखाते थे। पंडितजीको ध्रुपद-धमार से लेकर टप्पा तक सब तरह की चीजें आतीं थीं। टप्पे वे भली प्रकार गाते थे। उन्होंने टप्पे पर एक पुस्तक भी लिखकर प्रकाशित की है। उनका गाना वीर-रस प्रधान था। ठुमरी जैसी शृंगार-रस की चीजें वे नहीं गाते थे। उनकी भारी और जोरदार आवाज में वह शोभा नहीं पाती, अतः वे उस पंचायत में पडते ही नहीं थे। उन्हें भक्ति-रस के पद बहुत प्रिय थे, और किसी न किसी साधु सन्त के सुन्दर गीत गाये बिना उनकी बैठक समाप्त ही न होती थी

स्वरों की ओर उनका विशेष ध्यान रहता था। अन्त में तो रामायण की कथा पढने अथवा कहने में उन्हें बडा आनंद आता था। कथा कहते-कहते, कभी-कभी वे गद्गद् हो जाते और उनकी आँखे आँसुओं से भरजाती। इसी दशामें वे ८-१० मिनट तक स्तब्ध रहते थे, और साथवाले उनका शुरू किया हुआ गाना बजाते ही रहते थे। इस प्रकार आँसू बहाते बैठे रहने का समय आगे चलकर १०-१५ मिनट तक बढ गया। विद्यार्थी चाहने लगते कि वे जल्दी ही आँसू बहाना बंद कर दें और रामायण शुरू हो जाय। एक विद्यार्थीनें एक उपाय सोचा। पांच मिनट के बाद वह फिडल बेसुरा बजाने लगता। बेसुर स्वर कान में पडते ही पंडितजी का ध्यान-भग्न हो जाता और उस फिडिल वाले से अपना वाद्य स्वर में मिलाने के लिये कहते तथा फिर रामायण शुरू होती।

बालकृष्ण बुआ के गायन को लोग जैसे 'बाल-बोध' गाना कह कर सम्बोधित करते हैं, उसी प्रकार पंडितजी का गाना भी 'बाल-बोध' ही था। किन्तु, उस शुद्ध बाल-बोध में सादेपन का अनोखा सौन्दर्य था। महाराष्ट्र तथा ग्वालियर में सारे ही हिन्दू गवैये यही गाना उस समय गाते थे। जिसे आज हम 'ढंग' कह कर समझते हैं, वह मुसलमानी-ढंग इस घराने में नहीं है, ऐसा कहा जा सकता है। मुसलमानी-ढंग को अपनाने वाले पुरानी पीढियों में केवल दो ही गायक महाराष्ट्र में हुए हैं। पहिले कै. पं. भास्कर बुआ बखले और दुसरे कै. पं. रामकृष्ण बुआ बजे। पुरानी पीढि के मुसलमान गवैये भी ग्वालियर की पद्धति में ही गाते थे। आज भी हमें वह गायकी सुनने को मिल सकती है। १९४६ में मैं दक्षिण हैदराबाद गया था। वहां के मरहूम उस्ताद बादिउज्जुमा ने मुझे अपना गाना सुनाया था। वह सुनते ही मुझे बालकृष्ण बुआ के गाने की याद आई। रामपुर के खां साहब मुश्ताक हुसैन का गाना भी इसी ढंग का है।

मेरे लिखने का उद्देश केवल यह है कि पंडितजी के बचपन में यही गायकी उच्च समझी जाती थी, और उन्होंने इसका ही बड़ा अभ्यास किया था, तथा उसी में उन्होंने पूर्णता प्राप्त की थी।

पंडितजी की कला सीधी जोरदार, शुद्ध एवं सात्विक थी, और उसी की अपराधना में उन्होंने अपना जीवन व्यतीत किया।

इन्टरनेशनल सोसायटी फ़ॉर कन्टैम्पोरेरी म्यूज़िक

(सद्यः कालीन संगीत-वर्धिनी आंतर-राष्ट्रीय संस्था)

इस संस्था के उद्देश सद्यःकालीन संगीत प्रोत्साहन देना तथा उसकी सेवा, समृद्धी और प्रगति है। सन् १८२२ में साल्ज़बर्ग (ऑस्ट्रिया) नामक स्थान में इस संस्था की स्थापना हुई! इस संस्थाके अन्तर्गत प्रत्येक राष्ट्रीय विभाग स्वतंत्र हैं, अतःसमस्त अन्तर्गत-विभाग एक मध्यवर्ती आन्तरराष्ट्रीय संस्था में केन्द्रीभूत होगये हैं। इस आन्तर-राष्ट्रीय संस्था की शाखायें प्रायः समस्त सभ्य राष्ट्रों में फैली हुई हैं। इस संस्था के अध्यक्ष प्रो. एडवर्ड जे. डैन्ट ने संस्था के विषय में कहा है, "यह संस्था केवल संगीत के लिए ही है, ऐसा नहीं है। वरन आन्तर-राष्ट्रीय मैत्री निर्माण करने तथा उसे स्थायी बनाये रखनेके लिये ही यह संस्था है। विशेषतः गत महायुद्ध के पश्चात् आन्तर-राष्ट्रीय समझौते का निर्माण अत्यन्त आवश्यक हो गया है। पृथ्वी के दोनों गोलार्धों में आज तक संगीत की प्रगति हुई है, फिर भी अब अधिक व्यापक अर्थात् आन्तर-राष्ट्रीय दृष्टि से संगीत-वृद्धि एवं प्रेम-वृद्धि करना हमारा उद्देश्य है।"

इस संस्था की ओर से यूरोप के भिन्न-भिन्न देशों में सम्मेलन होते हैं। इन परिषदों अथवा सम्मेलनों में संसार के सारे प्रसिद्ध गायक, दिग्दर्शक तथा गुणग्राही लोग अपने खर्चे और अपनी स्वयं-स्फूर्ति से आते हैं। इस प्रकार का एक सम्मेलन गत वर्ष कोपन हेगन में हुआ था। उसमें श्री. नारायण मेनन उपस्थित। उन्होंने सम्मेलन की चर्चा में भी भाग लिया था। इस चर्चा के कारण, सहज ही ' हिन्दुस्तानी-संगीत ' के विषय में वहाँ लोगों में कौतुहल हुआ; तथा वहाँ के प्रतिनिधियों को प्रतीत हुआ, कि इस संगीत-संस्था की एक शाखा हिन्दुस्थान में भी हो।

इसके पश्चात् श्री. नारायण मेनन हिन्दुस्तान आये और उन्होंने बड़ौदा-रेडिओ-स्टेशन पर कुछ कलाकारों एवं संगीतज्ञों को एकत्रित करके स्वयं इस संस्था की एक शाखा दि. १३ जनवरी १९४५ को हिन्दुस्तान में प्रस्थापित की और पदाधिकारी चुने। कदाचित उस समय उन्हें समस्त हिन्दुस्तान के गवैयों के साथ पत्र-व्यवहार करने का समय नहीं मिल पाया था।

तत्पश्चात्, पिछली ४ जुलाई को प्रि. रातांजनकर ने यहां इस संस्था के उद्देश्य समझाने के लिये बम्बई के समस्त गवैयों को निमंत्रण देकर, प्रि. वी. आर. देवधर की अध्यक्षता में एक सभा की, जिसमें उन्होंने कहा, "कुछ वर्ष पूर्व यूरोप में गवैयों एवं कलाकारों की स्थिति भी वैसी ही थी, जैसी कि आज अपने हिन्दुस्तान में है। कलाकारों में अपने-अपने गुट थे, और एक आध कला कार को अपनी कला-कृति (Composition) यदि जनता के समक्ष लानी होती, तो उसे मुद्रक एवं प्रकाशक इत्यादि दूसरे लोगों के पैरों पडना पडता था। किसी संगीत-प्रधान नाटक (Opera) को लोगों के सामने रखने में इतना अधिक खर्च होता था कि अन्त में, उस रचीयतावाले के अपने लिये, कुछ बचता ही न था। इस अड़चन कोदूर करने लिये कुछ संगीतज्ञों नें मिलकर उपर्युक्त इस संस्था को स्थापित किया। सारे कलाकार अपने लिखे हुए 'ऑपेरे' अथवा 'गीत' इस संस्थाकी कमिटी के पास भेजते हैं और इन सब कला-कृतियों (अर्थात् नाटकों व नवीन गीतों) से जो धन प्राप्त होता है उसे आपस में बराबर-बराबर बाँटलेते हैं। इस प्रकार की संस्था अपने देशमें भी होना तथा उसकी शाखायें देशभर के प्रमुख शहरों में स्थापित करना नितान्त आवश्यक हैं।"

इस संस्था की हिन्दुस्थानी-शाखा के उद्देश्य संक्षेप में प्रि. रातांजनकर ने इस प्रकार बताये:-

(१) आन्तर-राष्ट्रीय संगीतज्ञों के साथ विचार-विनिमय एवं पत्रव्यवहार, इत्यादि सम्बन्ध रखना।

(२) हिन्दुस्तानी समस्त संगीत कार्यों का एकीकरण करना।

(३)हिन्दुस्तानी कलाकारों का सामाजिक-मान बढ कर उन्हें सुख मिले, अतः उनका संगठन, तथा उनके हितों की रक्षा करने के लिये प्रसंगी-गायनोत्सव करना, एक नियम—पत्रिका प्रकाशित करना, तथा नये और पुराने हस्तलिखित अथवा छपे हुए ग्रन्थों का एक संग्रहालय निर्माण करना।

प्रो. देवधर ने अपने अध्यक्षीय भाषण में कहा, "यह संस्था मेरे लिये नई नहीं है। सन १९३३ में हुए फ्लोरेन्स के इस संस्था के जागतिक-परिषद में मैं व कै. कन्हैया लाल जी वकील प्रतिनिधियों के रूप में उपस्थित थे। मैं देर से पहुँचा, अतः मैं प्रत्यक्ष रूपसे भाग न ले सका, तो भी मुझसे पहिले पहुँच कर श्री.

(शेष पृष्ठ २० पर)

"कै. गु. पं. विष्णु दिगंबर और संगीत प्रचार"

लेखक—श्री. द. वि. पलुस्कर

[श्री दत्तात्रेय विष्णु पलुस्कर उर्फ बापूराव पलुस्कर, गायना चार्य कै. पं. विष्णु दिगंबर के इकलौते पुत्र हैं। संगीत-कला में वे निपुण हैं, अतः इतनी छोटी अवस्था में ही वे एक प्रभावी-कलाकार के नाम से देशभर में प्रसिद्ध हैं। लेखन कला में उनका यह पदार्पण वाचकों को विशेष कौतुकास्पद लगेगा।]

संसार के किसी भी सभ्य-देश का इतिहास देखना यदि आरंभ किया जाय तो नित्य समाज की मानसिक उन्नति के साथ ही कला का भी उत्कर्ष होता है; परन्तु किसी राष्ट्र पर यदि विपत्ति आपडे तो वहाँ की कला एवं विद्या का भी धीरे धीरे लोप होने लगता है।

प्राचीन-काल में हिंदुस्तान में एक समय जब हिन्दी स्वातंत्र्य व हिन्दी-साम्राज्य थे, उस समय अपनी भारतीय संगीत-कला पूर्णतया भारतीय थी, जैसा कि पूर्व-काल के लिखे हुए 'संगीत-रत्नकार' इत्यादि ग्रन्थों के अवलोकन से स्पष्ट विदित होता है; किन्तु फिर इस्लामी-अमल शुरू होने के बाद से अपनी इस गायन-कला का हरास होने लगा। गायन-कला केवल ऐशो आराम एवं विलास की सामग्री बताकर उसका उपयोग किया जाने लगा, जिससे सहज ही में वह दुर्व्यसनी लोगों के हाथ में पड गई और आगे चल कर औरंगजेब के शासन-काल में तो तो लगभग वह लोप ही होने लगी थी।

यद्यपि उपर्युक्तानुसार उस समय परिस्थिती हो गई थी, तथापि उस समय के कुछ कलावंतों ने उसे जीवित रखने का पूर्ण प्रयत्न किया; अस्तु, आज हम लोग उस विद्याका रस-पान तो कर सके। उस समय यह विद्या बहुत ही थोडे लोगों के पास थी, अतः उसका समाज में प्रचार होना अति आवश्यक था।

मुसलमानी—अमल के पश्चात यह विद्या अधिकतः दुर्व्यसनी लोगों के हाथ में होने के कारण समाज मे इस विद्या के उपासकों के प्रति जो अनुचित-धारणायें उत्पन्न हो गई थीं, उन्हीं के कारण इस विद्याका प्रचार, एक अत्यंतही कठिन समस्या बन बैठा था, और यही मुख्य कठिन कार्य, कै. गु. पं. विष्णु दिगम्बरजीने अपने गायन— कलाके अभ्यास के समयही अपने हाथमें लेनेका निश्चय कर लिया था। इसी उद्देशकी पूर्तिके लिये उन्हें अनेकों कठिनसमस्याओं के सघन—वनमें सुगम—मार्गकी खोज करना पड़ी।

कै. गा. पं. बालकृष्ण बुआके पास गायनका शिक्षण सम्पूर्ण होनेपर उन्होंने कई दिनोंतक स्वतंत्र रूपसे गायन की महनतकी और तभीसे कै. गा. पं. गुरुदेवजी पटवर्धन उनके सहाध्यायी थे। फिर हिंदुस्तानके प्रत्येक प्रान्तमें जाकर, वहाँके लोगोंको इस विद्यासे कितनी अभिरुचि है, यह समझकर; तदनुसार वहाँके सभ्य समझे जानेवाले

लोगोंसे लेकर ठीक राजे–राजवाड़ों तक' संगीत–कला'के प्रति आदर निर्माण करने तथा इसके प्रतिप्रेम उत्पन्न करनेका उन्होंने संकल्प कर लिया था। इसी मुख्य उद्देश्यको समक्ष रखकर उन्होंने मिरज छोड़ा था। पहिले पाहिल इस सम्बंधमें उन्हें चारों ओर निराशा का ही वातावरण दिखाई पड़ने लगा; परन्तु इस कलाके विषयमें उनके दुर्दम–आत्मविश्वास एवं परमेश्वर पर उनकी दृढ़-श्रद्धाके बल परही उन्होंने इस निराशाजनक वातावरणको बदल डाला और इसी प्रकार इन समस्त समस्याओंका धैर्य-पूर्वक सामना करके वे पंजाब जा पहुंचे। कुछ दिनों प्रचारके लिये आवश्यक–धन एकत्रित करनेके लिये उन्हें बाबा खेमसिंहजी, इत्यादि श्रीमंतोंके यहाँ नौकरीभी करना पड़ी।

पंजाबमें कुछ दिन रहनेपर जब उन्हें यह ज्ञात हो गया कि वहीं 'संगीत–प्रचार'की नींव डाली जाय, तो उन्होंने गत् ६ मई १९०१ के दिन वहां उपस्थित ना. प्रतोद चरण के कर-कमलों द्वारा लाहौरमें 'गांधर्व–महाविद्यालय' नामक संस्थाकी स्थापना की। फिर इस विद्यालयमें भोजन, रहने तथा शिक्षणकी उन्होंने मुफ्त व्यवस्था भी की थी, जिससे हिंदुस्तानके बहुतसे प्रान्तोंके लोगोंने अपने पुत्र इत्यादि को वहाँ गायनके शिक्षणके लिये भेज दिया। इस विद्यालयमें तैयार हुए कुछ शिष्योंको उसी विद्यालयमें शिक्षकके रूपमें तथा कुछको दूसरे स्थानोंमें पार्टीके साथ फिरनेके लिये नियुक्त किया जाता। लाहौर में, विद्यालय भली प्रकार जमजाने पर कै. गु. पंडितजी दूसरे नगरों में संगीत-पार्टी लेकर फिरने लगे तथा गायन, भाषण एवं भक्ति मार्ग के द्वारा भी वे संगीत का प्रचार करने लगे। सन् १९०१ से १९०५ तक उन्होंने उत्तर हिंदुस्तान में संगीत प्रचार किया और फिर १९०५ में लाहौर गांधर्व-महाविद्यालय की एक शाखा जगन्नाथ पुरी के श्रीमंत सद्गुरूके कर कमलों द्वारा बम्बई में स्थापित की।

धीरे धीरे इस शाखा में विद्यार्थी तथा विद्यार्थिनियों की संख्या भी बहुत बढ़ गई। कै. पंडितजी शालामें प्रत्यक्ष काम करने वाले शिक्षक-वर्ग में के कुछ लोगों को हर बार साथ लेकर गाँव-गाँव में संगीत-विद्या के प्रचार तथा गांधर्व-महाविद्यालय की सहायता के लिये फिरते। कुछ दिनों बाद, उन्होंने नागपुर, पूना, नासिक, इत्यादि स्थानों पर विद्यालय की शाखायें निकालकर लाहौर एवं बम्बई में तैयार हुए लोगों की इन शाखाओं में आचार्यों के पदों पर नियुक्तियाँ कीं, और प्रत्येक दो अथवा तीन वर्ष के पश्चात् उनका एक शाखा से दूसरी शाखा में यथासम्भव स्थानांतर (Transfer) करके काम निकाला।

संगीत प्रचार के कठिन कार्य में उन्हें ऊपर लिखे अनुसार जलसों तथा व्याख्यानों का भी बहुत उपयोग करना पड़ा।

जलसे करने की नवीन-प्रथा सर्व प्रथम उन्होंने ही आरंभ की जिससे सुनने वालों में से किसी एक ही व्यक्ति-विशेष पर उसके सम्पूर्णव्यय का भार न पड़ कर सब को समानरूप से व्यय भार उठाने की बारी आती अथवा वे अपने दर्जे के अनुसार व्यय-भार में हाथ में बँटाते थे।

किसी भी प्रकार के प्रचार-कार्य के लिये वक्तृत्व कला की अत्यन्त आवश्यकता होती है, तथा वक्तृत्व कला कै. पंडितजी में जन्म से ही एक स्रोत के रूप में

विद्यमान् होने के कारण, वे व्याख्यानों के द्वारा संगीत प्रचार उत्तम प्रकारसे कर सके। उन्हें हिन्दी भाषा परभी अपूर्व-प्रभुत्व प्राप्त था। वे बहुधा हिंदीमें ही व्याख्यान देते थे; क्योंकि उनका मत था कि,'समस्त भारतमें हिन्दी भाषा ही कम अथवा अधिक प्रमाणमें प्रचलित है, और कभी न कभी यही एक भाषा सारे हिन्दुस्तानमें पाई जाना सम्भव है।'

विद्यालयके वार्षिकोत्सव, इत्यादि के अवसरों पर वे भाषण करते थे। उनके इन व्याख्यानोंमें, कोल्हापुरमें रा. ब. विश्वनाथराव गोखले की अध्यक्षतामें संगीत पर दिया २१ मई १९१२ का व्याख्यान, बम्बईमें २३ मई १९११ को ७ वें नाट्य-सम्मेलनके समय पर अध्यक्षके रूपमें दिया उनका एल्-फिस्टन थियेटरवाला व्याख्यान, तथा पूना की 'वसंत-व्याख्यान- माला'में २६ मई १९१२ को 'संगीत-नोटेशन-पद्धति'पर दिया व्याख्यान, इत्यादि मुख्य हैं। यदि किसीने रा. ब. कोंडोपंत छत्रेकी अध्यक्षतामें किया उनका विवेचन सुना हो, तो उनके वक्तृत्वके सम्बंधमें उत्तम कल्पना हो सकती है।

जल्सों एवं व्याख्यानोंके समानही उन्होंने स्वर-लेखन पद्धतिका शोध करके उसकी सहायतासे अनेकों पुरानी चीजों, तथा उत्तम अर्थवाले भजनों अथवा पदोंको छाप कर एक पुस्तकके रूपमें प्रकाशित किया। **संगीत तत्व-दर्शन, '' बंगाली-गायन,' 'कर्नाटकी-गायन'** इत्यादि जैसी शास्त्रीय पुस्तकें भिन्न-भिन्न भाषाओं में छापकर उन्होंने प्रकाशित कीं। "संगीत-प्रचार के लिये किये हुए हैं उनके घोर परिश्रमके ही द्योतक आजकल के ये विद्यालय हैं", ऐसा कहना कोई आपत्ति-जनक नहीं है।

संगीतके ध्येय-निष्ठ प्रचार, स्वार्थ-त्याग, भक्ति-मार्गके अवलंबन, तथा ईश्वरोपासनाके कारणही उन्हें उत्तरोत्तर यश मिला;

'('संगीतामृत-प्रवाह' नामक गां. महाविद्यालयके मासिक-पत्र के आधार-पर)

(पृष्ठ १७ का शेष)

कन्हैया लाल वकील ने '**हिन्दुस्तानी-संगीत**' पर एक निबंध परिषद में पढ़ा था। तत्पश्चात् '**वियाना**' में इसी संस्था की ओर से मेरे संगीत-संबंधी व्याख्यान इत्यादि हुए थे। फ्रांस में स्ट्रॉसबर्ग एवं प्रेग में भी इस संस्था की ओरसे मेरे व्याख्यान हो चुके हैं। स्ट्रॉसबर्ग के समझौते का तो मेरे मन पर बड़ा प्रभाव पड़ा। इस सम्मेलन के लिये एक-एक महिने पूर्व व्हायोलिनिस्ट, गवैये इत्यादि अपने खर्चे से आये थे और उनकी तैयारी का काम लगातार १०-१० घंटे चलता था। अपनी कला अपने अन्य व्यवसाय-बंधुओं को सुनाने तथा उनका कला स्वयं सुननेके हेतु से प्रेरित होकर ये कलाकार उस स्थान पर एकत्रित हुए थे। अपने स्वदेश में ऐसे शुभ-दिन का कब उदय होगा, यह विचार कर उस समय मेरा हृदय गद्-गद् हो गया था। सौभाग्य से उस दिन का उदय होकर यहाँ भी उस संस्था की शाखा स्थापित हुई, यह मेरे लिये बड़े आनंद का विषय है। इस संस्था के प्रति मैं पूर्ण यश की शुभ-कामना करता हूँ तथा जितना भी सम्भव होगा उतना प्रात्य-बल मैं इस संस्था की भेंट करूंगा।"

उस्ताद फैयाज़ खां, उस्ताद अलाउद्दीन खां, अनवर हुसैन खां, गीता साराभाई, गोविन्दराव बुरहानपुरकर, हमीद हुसैन, हिरजी डॉक्टर, कुसुम चंद्रचूड़, लताफ़त हुसैन, मायावरं कृष्ण अय्यर, नगर-कॉईल गणेशन, नगर-कॉईल हरिहर अय्यर, नारायण मेनन, नारायण स्वामी, रविशंकर, एस. एन. रातांजनकर, तथा टी. एन. कृष्णन आज तक इस संस्था के सभासद तथा बम्बई-शाखा के 'अध्यक्ष' श्री. विलायतखां और प्रि. देवधर एवं प्रो. बी. कपिलेश्वरी 'उपाध्यक्ष,' नारायण मेनन तथा गीता साराभाई इस संस्था के मध्यवर्ती 'सेक्रेटरी और श्री. जी. के. निमकर एवं चिदानन्द नगरकर बम्बई शाखा के 'संयुक्त-सेक्रेटरी' हैं।

★ शिवमत और हनुमन् मत के भेद ★

लेखाङ्क पाञ्चवाँ

पिछले लेखमें शिवमत और हनुमन् मतके ग्रामों और मूर्च्छना-ओंका वर्णन हो चुका है अब मेल (थाट या जनकमेल), खण्डमेरु और रागोंका वर्णन करेंगे। थाट (मेल)—दूसरे प्रकारसे शिवमतके ग्राम और मूर्च्छनाओंका प्रस्तारही होता है. यह विविधप्रकार के राग बनाने में काम आता है। इस क्रमसे मालूम हो जाता है कि अमुकराग किस क्रमसे कितनी संख्याओं में निर्माण हो सकती है क्यों कि यह गणित-विद्याका कार्य्य है। इसमें न्यून-अधिक कुछ नहीं हो सकता, जोकुछ होता है वह ठीकही होता है। अब जो लोग यह कहते हैं कि ' रागोंका तो कोई अन्तही नहीं है ' यह कथन उनका वास्तव में ठीक नहीं है; क्योंकि अन्त तो प्रत्येक पदार्थ का होताही है। हाँ, रागों की विस्तृत संख्या इतनी है कि प्रत्येक व्यक्ति उनको साधारण रीति से जान नहीं सकता; किन्तु पूर्ण अभ्यास द्वाराही जानसकता है और अभ्यास में संलग्न होना अति कठिन है; क्योंकि वर्तमान् युग या समयमें आयु अति न्यून होनेके कारण प्रत्येकही ' विद्या गुरु ' अपनी विद्या को प्रायः अपने साथही लेजाते हैं, तब इसदशामें शिष्य भी पूर्ण अभ्यास नहीं कर सकते हैं।

पण्डित व्यङ्कटमुखीजी संगीत के एक महान् विद्वान् कर्णाटक देशमें हुए हैं; इन्होंने गणित-विद्या के अनुसार ७२ थाटों को सिद्ध किया है और लिखा है कि ' मैंने ये १२ विकृत स्वरों से ७२ थाट निर्माण किये है। संगीत विद्याके आदि निर्माता शिवजी भी इनको न्यूनाधिक नहीं कर सकते हैं ' वास्तव में सत्य भी यही है; परन्तु ये ७२ थाट कर्णाटक की पद्धति के लियेही ठीक हैं और प्रचलित हिन्दुस्तानी संगीत के लिये ठीक नहीं। अब हनुमन् मत के अनुसार १२ विकृत स्वरों के थाट लिखते हैं:—

(हनुमन् मतोंके थाटों की सूचि और विस्तार)

प्रथम ' **संगीत-कालिन्दी** ' नामक पुस्तक के रचीयता कर्णाटक देश निवासी पण्डित **राममत्यजी** ने राग, रागनी और उनके पुत्र, पौत्रोंके रूपसे रागोंका रखना ठीक न समझा; क्योंकि इस मतमें ऐसे भी कई राग, रागनियां, पुत्र, पौत्र थे जोकि उन रागों से सबन्ध ही न रखते थे, तो आपने इस मेल के कायदे को उत्तम समझ कर थाट वरन बनानेका प्रयत्न किया; परन्तु उसे पूरा नहीं कर सके। फिर **लोचनपण्डित**, जो कि उत्तर-भारत की तरफ हुए हैं, भी इसको पूरा करना चाहते थे; परन्तु पूर्ण और प्रचलित वे भी न कर सके। इसी तरह अनेक गुणी जनोंमें इस थाट-पद्धति पर मतभेद रहा कि वे थाट कितने हैं? लेकिन अन्तमें उन्हीं पण्डित व्यंकटमुखीजीने इन ७२ थाटोंको पूर्ण संख्यामें निर्धारित कर दिया, सो हनुमन् मतके अनुसार १२ विकृत स्वर ही गाये और बजाये जाते हैं। इन थाटोंमेंसे राग बनते हैं, इस मतमें श्रुतियां नहीं आती हैं, जैसा कि पहिले अंकमें भी दर्शाया जा चुका है। इस कारणसे १२ विकृत स्वर ' सा. रे. रे. ग.
१ २ ३ ४

ग. म. म. प. ध. ध. नि. नि. ' इस क्रमसे उपस्थित किये
५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२

जाते हैं।

पहिले ६ विकृत स्वर ' सा रे रे ग ग म ' लेंगे। तब इनका प्रस्तार ऐसे होगा

१—सा. रे. रे. म.
२—सा. रे. ग. म.
३—सा. रे. ग. म.
४—सा. रे. ग. म.
५—सा. रे. ग. म.
६—सा. ग. ग. म.

अब दूसरे ६ विकृत स्वरोंमें से तीव्र, मध्यम छोड़कर पंचम से प्रारम्भ करके तार षड्ज तक ले जाओ।

पंचम और षड्ज अचल हैं, तब इनका प्रस्तार ऐसे होगा—

प. ध॒. ध. नी॒. नी. सा.
१—प. ध॒. ध. सा.
२—प. ध॒. नी॒. सा.
३—प. ध॒. नी. सा.
४—प. ध. नी॒. सा.
५—प. ध. नी. सा.
६—प. नी॒. नी. सा.

अब आगे इन दोनों प्रस्तारों को इस प्रकारों से मिलाना है कि एक नम्बर प्रथम प्रस्तार का लेकर दूसरे प्रस्तारमेंसे बाँटना है जैसा कि—

१—सा. रे॒. रे. म, प. ध॒. ध. सा.
२—सा. रे॒. रे. म, प. ध॒. ध॒.सा.
३—सा. रे॒. रे. म, प. ध॒. नी. सा
४—सा. रे॒. रे. म, प. ध नी. सा.
५—सा. रे॒. रे. म, प. ध. नी. सा.
६—सा. रे॒. रे. म, प. नी. नी. सा.

इस प्रकारसे पहिले प्रस्तार का हिस्सा बदल देनेपर और इस प्रकार दूसरे पांचोंकोभी डालनेसे ६×६=३६ थाट बन जायँगे और मध्यम शुद्धकी जगह तीव्र करदेनेसे और इसी प्रकार स्वरोंकी बाँट करदेनेसे ३६ थाट और बन जायँगे। तब ३६+३६=७२ पूर्ण हो जाते हैं; परन्तु यह ख्याल रखना जरूरी है कि ये १२ थाट कर्णाटक के संगीतके लियेही ठीक हैं; परन्तु जो हिंदुस्थानी, पद्धति है और रिवाजमें प्रचलित है उसके अनुसार तो ३२ ही थाट हो सकते हैं, उदाहरण यथा—

१—सा. रे॒. रे. म, प.ध॒. ध. सा.
२—सा. ग॒. ग. म, प. नी. नी. सा.

इस प्रकारसे हनुमन् मतमें कोई राग ऐसा नहीं है जिसमें ७ स्वर पूरे करनेके लिये, गान्धारकी जगह, ऋषभ और ऋषभकी जगह, गान्धार— इत्यादि। यदि इस प्रकारसे ये सब थाट निकाल दिये जाँय तो केवल ३२ थाटही रह जाते हैं।

संगीत— पारिजात मे भी थाटोंका वर्णन ऐसाही लिखा है— यथा,

अथ शुद्धैः स्वरै मेला : कथान्ते विकृते रवि
तेषां मितिःख ते द्वौच वह्निचन्द्रद्वयं तथा

अर्थात् मेल (थाट) के विषयमें कहते हैं— मेल (थाट) शुद्ध स्वरों और विकृत स्वरोंके द्वारा सम्पूर्ण भेदोंसे २१३४० होते हैं; आगे लिखा है—

तत्रयेच प्रसिद्धः स्यू रजका ये विशेषतः
लक्षणानि ब्रुवे तेषां सम्यत्याच हनुमतः

उनमेंसे जो प्रसिद्ध हैं तथा जो अधिक रंजक (मनोहर) हैं हनुमन मतके अनुसार उनके लक्षण कहते हैं।

और भी बहुत प्राचीन ग्रन्थोंमें इसका जिकर तो जरूर आया है; परन्तु जो संख्यांक, =१३४० हैं यह और ग्रन्थों में औरभी बहुत फरकसे दियहैं। यह कुछ विशेष स्पष्टरूप से प्रतीत नहीं हुआ है कि ये जो संख्यांक दियेगए हैं ये किस क्रम के बढ़त या गणित से दिये गये हैं और न कोई विस्तार का क्रम ही इन ग्रन्थों में उपलब्ध हुआ है।

अब इन दूर थाटोंमें न्यूनता है तो यह है कि यदि कोई राग ऐसा है जैसा कि किदारा, बहार, ललित, देश, खमाच, इत्यादि तो वह इन ३२ थाटों में नहीं है; क्योंकि किसी भी थाटमें इस स्वर का विकृत स्वर साथ नहीं। इन थाटों का प्रयोग भी आगे बतलाया जायगा जब कि रागों का वर्णन आयगा। अब हम शिव मत का क्रम देखते हैं—

[शिवजत के मेलों (थाटों) की उत्पत्ती और विस्तार]

शिवमत के विषय में मैं इन मेलों (थाटों) की उत्पत्ति और विस्तार का वर्णन करनेसे पहिले यह जिकर करदेना जरूरी समझता हूँ, कि ' शिवमत ' वह है जो **सामवेद** के उपवेद **गन्धर्ववेद** के रचनहार **श्रीशङ्कर महादेव** के शास्त्र-युक्त माना जाता है और यह शिवमत नहीं है जो कि **' संगीत-मकरन्द '** के रचयिता **' पण्डित वेतजी**, का मत है जिन्होंने अपना मत शिवमत करके ही प्रचलित किया। वह शिवमत वास्तव में उसी गन्धर्व वेद का मत है जो कि मुसलमानी जमानेमें आकर उसी **गन्धर्ववेद** की टीका टिप्पणी के अनुसार **' संगीतदर्पण '** का निर्माण हुआ, जिसका कि पहिले लेखमें जिकर भी आ चुकाहै, वह सर्व अङ्गों में

पूर्ण बनाहै और यह जो दामोदर मिश्र का निर्माण किया हुआ ग्रन्थ है, यह भी शिवमत का ही है; परन्तु जो 'संगीत दर्पण' दामोदर मिश्र का आज कल प्रचालित है वह भी वास्तवमें उसी 'संगीतदर्पण' का ही हिस्सा है जो कि औरंगज़ेब मुग़ल, बादशाह के ज़माने में हिल जुल गया था। इसी लिये बहुत से श्लोक वर्तमान् 'संगीत दर्पण' में कम भी हैं; बल्कि उसका तो यह दशवाँ हिस्सा भी नहीं। इसी लिये यदि इस विद्याके जानकार इस प्रचलित 'संगीतदर्पण' को देखेंगे तो यह क़ायदा जो कि मैं आगे उसी असली संगीत मेंसे लिखरहाहूं नहीं मिलेगा; क्योंकि वह असली तो एकही है जो अभीतक कहीं पर छपाही नहीं है। समय आने पर उसको भी टीका-टिप्पणी सहित संपूर्ण छपादेने का मेरा विचार है। क्योंकि ऐसी दुर्लभ वस्तु गुणी जनोंको और साधारण जनता को भी बहुत लाभ दायक होगी। यह उसज़वाने के संगीत की ऑथोरिटी(Authrity) है जो हमारे अजाकल के संगीतका जन्मदाता उस गन्धर्व वेद की ही टीका अर्थात् विस्तार हैं। इस संगीतदर्पण में और संगीतों का वर्णन भी आता है, जो कि इससे पाहिले बने थे। यथा संगीत-परिजात, 'संगीत नाट्यशास्त्र' इत्यादि परंतु इनका नमूना दिखलाकर आप ने उस गन्धर्व वेद की चीजों से अलहदा साबित की है, जो प्रचालित ग्रंथ में नहीं है। ऐसेही जोलोग सामवेद के सामगान का और प्रचलित संगीत का संबंध करते हैं, वे भी ठीक नहीं, क्योंकि समावेद का संबंध गन्धर्व वेद सेही है और से नहीं। इसका कारण चारों वेदों में से उपवेद भी निकले हैं और अकेले वेद के मूल पाठसे तो कुछ उपलब्ध भी नहीं होता जबतक कि उसके मार्ग को दिखाने वाला उसका उपवेद. जो कि अपने मजमून का विस्तार करता है, साथ न हो। वेदोंके मूल मंत्रों, पर जो संगीत सम्बन्धी संकेत है, वे इतने सूक्ष्म हैं कि वेदों का पूर्णवेत्ता भी बिना उपवेदोंकी सहायता के उनके विज्ञान से अनभिज्ञ रहता है; उदाहरणार्थ सामवेद की संहिता पर जितना संगीत शास्त्र का संकेत है, उसका विस्तृत वर्णन उसके उपवेद गांधर्ववेद मेंसे उपलब्ध हो सकता है, अन्यत्र नहीं इसीतरह वैदिकविज्ञान में सर्वत्रही जबतक उपवेद का ज्ञान नहो, तबतक मूलवेद संहिता से कुछ ज्ञान उपलब्ध नहीं होता है।

अब हम शिवमत के वे क्रम दिखाते हैं जो अत्यावश्यक हैं जिनमें कि रागों का निर्माण होता है, जिसको हनुमन् मतके अनुसार मेल (जनक मेला, थाट, प्रचलित) कहते हैं।

(शिवमतके थाटों की उत्पत्ति और विस्तार)

शिवमतमें इन थाटोंका नाम 'मेल' है। तात्पर्य यह कि इनके एक एक मेल में बहुत राग होते हैं, जिनका आगे जिकर किया जायगा। इनसे एकदम यह मालुम होजाता है, कि कौनसा राग किस मेलसे बना है। शिवमत के मेलोंका प्रस्तार इसप्रकारसेः—

(१) पहिले मेलके क़ायदे से आरोहण पूरे सप्तक करो जिसमें सातों स्वर आजायें और सातों स्वर लगें किसी रूपमें। तात्पर्य २२ श्रुतियों में इतना बाढ़ा हो कि यदि ह्रस्व लगाना है तो एक एक श्रुति बढ़नेसे मेल बदल जायगा। अब आगे इसप्रकार से मेल बनते हैं और उनका पूरा अंक भी दिया जाता है।

मेल बनानेका क़ायदा—

१—सा. रे. ग. म. प. ध. नी. सां.

२—सा. रे. ग. म. प. ध. नी. सा.

३—सा. रें. ग. म. प. ध. नी. सां.

४—सा. रे. ग. म. प. ध. नी. सा.

(१) इन सबको ऐसे विभक्त करणा—

१—सा. रे. ग. म. प. ध. नी. सा.

२—सा. रे. ग. म. प. ध. नी. सा.

३—सा. रे. ग. म. प. ध. नी. सा.

४—सां. रे. ग. म. प ध. नी. सां.

इसी प्रकारसे ये ऊपर के चारों भी विभक्त होजायँगे तो ४×४=१६, अब इसतरह यदि मध्यम को तीव्र कर दिया जाय तो १६ मेल और बन जायँगे। तब १६+१६=३२ मेल १२ विकृत स्वरों के हो जाते हैं। अब यदि २२ श्रुतियों का करना है, तो इसी प्रकार से इन की दुहरियां श्रुतियाँ रखदी जायँ तब ३२ मेल और

बन जाते है तब ३२+३२=६४ मेल आरोहण केही होते हैं। अब दूसरा कायदा चलता है:—

(२) दूसरे मेल के कायदे से आरोहण और अवरोहण पूरे सप्तक का हो जैसा कि पहिले कायदे में है। इसका विभाग ऐसे है, कि आरोहण का एक मेल लेकर दूसरे मेलों के सब अवरोहण करके:—

उदाहरण–	नंबर	आरोहण	अवरोहण
	१	सा. रे. ग. म. प. ध. नी. सां.	सा. नी. ध. प. म. ग. रे. सा.
	२	सा. ,, ,, ,, ,, ,, ,, ,,	सा. नी. ध. प. म. ग. रे. सा.
	३	सा ,, ,, ,, ,, ,, ,, ,,	सा. नी. ध. प. म. ग. रे. सा.
	४	सा ,, ,, ,, ,, ,, ,, ,,	सा. नी. ध. प. म. ग. रे. सा.

इस कायदेसे ६४ में आरोहणसे ६४ में अवरोहण से गुणा किये जानेपर ६४×६४=४०९६ मेल होते हैं।

अब तीसरा कायदा यह है जैसा कि:—

[३] उसी मेलके कायदेसे सातों स्वरों की मात्रायें पूरी हों; परन्तु यह जरूरी नहीं कि सात स्वर पूरेहों–; जैसा कि– सा. रे. रे. म. प. ध. नी. तब इसी प्रकार– सा. रे. ग. म. म. ध. नी. (ललित), इत्यादि।

तब तो फिर यह इस कायदेसे है––

१–सा. रे्, रे. म. प. ध. नी.
२–सा. ग्. ग. म, प. ध. नी.
३–सा. र.-म. मं. प. ध. नी.
४–सा. ग. म. म. प. ध. नी.
५–सा. रे. ग. म. म. ध. नी.
६–सा. रे. ग. म. प. ध. नी.
७–सा. रे, ग. म. प. ध्. ध.
८–सा. रे ग. म. प. नी नी.

इस प्रकार से ४० थाटों के आरोहण और ४० मेलों के अवरोहण करनेसे ४०+४०=८० में इनको इन आठोंसे गुणाकरने से ८०×८=६४० मेल इस प्रकारसे हो जाते हैं और यदि उपरोक्त मेलोंको परस्पर बाँटकर फिर ६४ मेलों में बाँट दिया जाय तो ८×८=६४ × ६४=४०५६ थाट और हो जाते हैं। इस प्रकार शिवमत के मेलों की संख्या जो कि सम्पूर्ण है ––

(७ स्वर की): ४०६६––दूसरी संख्या

६४०—तीसरी संख्या

(हिस्सा पहिला)

४०६६– ,, ,,

(हिस्सा दूसरा)

सम्पूर्ण संख्या का कुल जोड़— ५५३२ मेल होते हैं।

अब आगामी लेखमें खण्डमेरु, अलङ्कार और रागों के भेदों का विचार करेंगे।

चलता—

काल्पनिक–संगीत–नगर

★ (संगीत–रूपक) ★

लेखकः—शंकर श्रीपाद बोडस

नन्हें और छोटे बच्चोंको संगीत किस प्रकार सिखलाया जाय और कौन–कौनसे गाने काम में लाये जावें यह एक जटिल समस्या है। प्रौढ़ोंको संगीत सिखलानेमें मेरा दिल कभी नहीं घबराता। चाहे उनका आवाज़ मोटा, बेसुरा, संस्कार–विहीन, नीरस और कर्णकटु क्यों न हो; परंतु उनमें संगीत सीखने की बलवती इच्छा और समझ तो होती है। प्रयत्न करने की हिम्मत और शक्तिसे प्रौढ–निराशा को वे समीप नहीं आने देते। चाहे थोडे समय के लिये भी क्यों न हो; लेकिन बालकोंकी बात दूसरी है। (यहाँ मेरा बालक से अर्थ सात से बारह–तेरह वर्ष तक है) उनको हरएक काम में खेल नजर आना चाहिये। विषय समझने में सुलभ और व्यवहारिक, उनकी आकलन–शक्ति (Grasp) से बाहर न हो। बालकोंका अकेले कोई काम सीखनेमें दिल नहीं लगता। सामुदायिक कामों में उनका मन रमता है। उन्हें रंगोंसे प्यार होता हैं। मनकी प्रकृति चंचल होती है। वे प्रत्येक में हंसी की अपेक्षा करते हैं। दस पंद्रह मिनिट तक एक जगह और एक जैसे खाली बैठने में कालपानी की सज़ा का वे अनुभव करते हैं। तो समझिये कि बच्चोंको पढाना कितना कठिन काम है।

उपरोक्त सर्व समस्याएँ आँखों के सामने रखकरही निम्न लिखित संगीत—रूपक बच्चों के लिये बनवाया, था और उसको लखनऊ रेडियोपर दिसम्बर १६ सन १९४७ को बच्चों के प्रोग्राम में उपस्थित किया था। इस रूपक में, [१] भिखारी [२] ग्वाल-ग्वालन, [३] मालिन, [४] धोबिन (५) खोंमचेवाला (६) गुब्बारेवाला, (७) मनिहारिन (८) लकड़हारे–घसियारे इत्यादि के गाने हैं। गाने का ढंग और उनकी तर्जें (tunes) चट कीली [smart] और चित्ताकर्षक (attractive) करने की मैंने चेष्टा की है। वे गाने एकत्रित रूपमें लाने के लिये "संगीत–नगर" का बहाना बना कर उसमें थोडे गद्य वाद विवाद की नमक-मिरच लगादी है उससे वह संगीत रूपक रोचक बनगया है। उसको स्टेजपर छायाचित्रद्वारा (shadow–play दिखलाया भी जा सकता है। साथ ही साथ मायक्रोफ़ोन की मदद से गाने भी बच्चोंके ज़रिये गवाये जा सकते हैं। ऐसा प्रयत्न गत जनवरी १९४८ में 'कानपुर–संगीत–समाज' की खास बैठक में. श्री. सिद्धेश्वरजी अवस्थी और श्री. लाहडोजी की सहायतासे मैंने कियाथा। आशा है कि बच्चोंके कार्य (activities में दिलचस्पी लेनेवालों को यह बड़ा मनोरंजक लगेगा।

(पात्रः—इसमें दो बालक तीन बालिकायें, और बूढ़े बाबा–का काम है) पात्रों के नामः—

बालिकायेंः—	१ मुक्ति	१३	साल
	२ विमला	१०	,,
	३ नन्हीं	७	,,
बालकः—	४ अनिल	१२	,,
	५ मुन्ना	८	,,

प्रस्ताविक–विवरण

यह एक काल्पनिक संगीत--नगर की मनोहर कहानी है। जिस नगरमें सब जातिके और धन्दोंके लोग अपना काम संगीत में करते हैं। बालवृन्दों के साथ इस नगरमें आज हम भ्रमण करेंगे। इसमें केवल यही विशेषता होगी कि हमारा भावप्रकाश पद्यमय और संगीत मय होगा। आजका प्रोग्राम सुननेवाले बच्चे एक नवीन लोक में हमारे साथ जायेंगे। उनका नये—नये दृश्य और व्यक्तियोंसे परिचय होगा। आशा है, की उनके ये नये साथी उन्हें अति रुचिकर पायेंगे।

पात्र:— [इसमें दो बालक, तीन बालिकायें और एक बूढ़े बाबा का काम है। बालकों के नाम:—अनिल आयु १२ साल, मुन्ना ८ वर्ष। बालिकाओंके नाम:— मुक्ति, १३ वर्ष, विमल, १० वर्ष और नन्हीं, ७ वर्ष]

अब हवाई—जहाज द्वारा यंह्यके बच्चे बाबा के साथ संगीत नगर की सैर करने जा रहे हैं। समय: प्रात:काल [हवाई—जहाज की उड़ान, और बच्चोंके कोलाहल की आवाज़] पुराने टेबुल—फैन और साईकिल का घूमता हुवा पहिया जिसमें सिगरेट केस सरीखा मोटा कागज़ का टुकड़ा अटका हुवा हो हवाई जहाज की उड़ान की आवाज़ दे सकता है).

अनिल:—अरे! अरे! बहुत ऊंचा है।

मुन्ना:—हाँ। हम गिरे।

मुक्ति:—देखो, बाबा, अरे! उपर जा रहा है।

मुन्ना:—देखा, यह बादल पकड़ लिया।

बाबा:— ना बेटा, यह नन्हीं खिडकीयोंसे न झाँकों। देखो छोटा मुन्ना बाहर हाथ न निकालेंने पावे।

मुन्ना:— बावा, बाहर मुँह निकालेंगे। हम चिडिया पकड़ेंगे।

मुक्ति:—बाबा, यह दूर क्या दिखाई दे रहा है?

बाबा;—हाँ बेटा, वही 'संगीत—नगर' है।

मुन्ना:—बाबा, वहां हमें खेलनेको मिलेगा? [बड़ी दूरसे एक भिखारी गाता सुनाई दे रहा है)

★ (१) भिखारी का गाना:—★

उठजाग मुसाफिर भोर भई, अब रैन कहाँ जो सोवत है,
जो सोवत है सो खोवत है; जो जागत है, सो पावत है।
टुक नींद की अखियाँ खोलजरा, ऐ गाफ़िल रब से ध्यान लगा।
यह प्रीत करन की रीत नहीं, प्रभु जागत है तू सोवत है॥ १ ॥
अनजान भुगत करनी अपनी, ऐ! पापी पापमें चैन कहाँ,
अबपाप की गठड़ीशीस धरी, अबशीस पकड़क्यों रोवत है॥ २ ॥
जो कल करना है आज करले, जो आज करना है अब करले,
जब चिड़ियोंने चुग खेत लिया, फिर पछताये क्या होवत है॥ ३ ॥
उठ जाग, उठ जाग, जाग, जाग, जाग, ।

★ ★ ★

मुक्ति:— बाबा, बड़ा अच्छा गा रहा है।

विमल:— लो, एक पैसा।.

(संगीत—नगरका घोसियाना—स्थल)

ग्वाल:—ओरी ग्वालन! म्हारि उगर छोड़ दे।.
अबेर हे रही है। मोय जानों है।.

ग्वालन:— हाँ, हाँ, राजाजी! मोय चिढावे है कि बनावे है।

★ [२] गीत ग्वाल—ग्वालन ★

ग्वालन:—चलो जि धिरे धिरे,
डोले ये जिया मोरा पिया,
जरा ठहरो सजनवा, हाँ ऽ ऽ ऽ ...... ॥
चलना हो तो आ चल पियारे,
मैं, थकी, मैं, थकी,
चार कोस की बाट पड़ी है,
फिर फेरी है, फेरी॥ मोरे राजा, सजनवा॥

ग्वाल:—दूध दही की भरि—भरि मटकी,
सारि क्यू संग ले आई॥

ग्वालन:—तोरी ये बतियाँ, मोहे न भावें,
निसदिन दिन ना सतावो, ॥ मोरे राजा सजनवा॥।.
चलो, चलो अब संग चलूंगी
चलने की है ठानी, ॥

ग्वाल:—ओ जाने वाली, गोपालन वाली,
ठहरो जाना, इतनी क्युं हैरानी
खाते जाना, दूध—मलाई,
जीना जग में यानी, ॥ मोरे राजा सजनवा॥।
हाँ ऽऽऽ, ऽऽऽ, ऽऽऽ, ऽऽऽ, ऽऽऽ,

\+ + +

(स्थल:—घोसियानेसे बगीचे की तरफ जाने वाले रास्ते पर)

विमल:—बाबा! पानी, प्यास लगी है सबकी।.

सबबालक:—(एकसाथ) हम भी पीयेंगे, हम भी पीयेंगे बाबा!

बावा:—हाँ! क्या, पानी? अच्छा, तुम्हें एक बात माननी पड़ेगी। देखो, वहाँ, बगीचे में जाकर तालाब के किनारे पानी पीयेंगे; लेकिन वहाँ के फूल न तोड़ना।

मुन्नाः—बाबा ! अच्छा लगेगा तो ?

बाबाः—दूसरे की चीज़ पूछे बिना नहीं लिया करते ।

★ (३) गीत मालन ★

फूलन महिमा गावो, गावो ।
साज सजावो, रंग रचावो ॥ फूलन महिमा...॥
निर्मल कंचन रंग–रंग ये,
भृंग प्रेम मन लावो, लावो ॥ फूलन ॥१॥
धूप जलावो, चन्दन लावो,
फूलन महिमा गावो, गावो ।
भक्ति–प्रेम दिग्दर्शन करने,
फूलन हार मंगावो, मँगावो ॥ फूलन ॥२॥

(स्थलः—बगीचेमें तालाब के किनारे)

मुक्तिः—बाबा ! यहाँ की मालिन बड़ो अच्छो गाती है ।

विमलः—(आश्चर्यसे) बाबा ! बाबा ! वह कछुवा, गो–पा–ल–जी ।

मुन्नाः—क्या वह पानी में मुह निकाले हुवे ?

नन्हीः—(भयभीत आवाज़से) ओ ! ज, ज, है !

मुन्नाः—(हँसते हुये) दीदी ! दीदी ! वह गोपालजी उस धोबिन का सुथना खींच ले गया !

(सब बालक ताली बजाकर हँसते हैं)

★ (४) गीत,–धोबिन ★

कपडे सुखावो भैया, सावन आयारे, सावन आयारे ॥
अरि बादरिया आई,
नन्ही सी बून्दें लाई,
सूखे न सुथना भैया ।
झुक–झुक देखोरे ! भादों की है घुप–छैया,
भादों की है घुप–छैया ॥
पानी है गँदला भारी,
कपड़ोंमें मिट्टी सारी,
रुपये न दे कोऊ भैया ।
थक–थक जाती रे, धोनेमें हमरी बैयाँ,
धोनेमें हमरी बैयाँ ॥

[स्थलः–बाज़ार की तरफ़ धूपमें बढ़ रहे हैं]

बाबाः–नन्हीं ! आ गोदमें आजा । नन्ही भूखी मालूम पड़ती है ।

अनिलः–[थकी और रोती हुई आवाज़में] बाबा ! पेटमें चूहे कूद रहे हैं ।

सब बालकः–(एकसाथ) हम भी खायेंगे, हम भी खायेंगे ।

★ (५) गीतः—खोंमचेवालाः ★

काचालू खालेना जी, काचालू की आई बहार
धनिया पुदिना कि चटनी पड़ी है,
निम्बु रसीला है यार ।
बड़े–बड़े है, बडे हैं खाते,
सुन्दर–सलोने कुमार ।
बाबूजी खाते, लालाजी खाते,
राजा ताल्लुकेदार–
खस्ता कचौड़ी, पालक, बैंगनि,
मंगोड़े मसालेदार ॥ १॥
भुने मटर हैं चटक–मटक है
अदरक पड़ी मज़ेदार ।
चाट भरे मन भावन है ।
गोल-गप्पे बड़े मज़ेदार ।
मिरचा है, कड़वा तेल है, कड़वा;
डालडा के लड्डू तैयार,
खालो, खिलालो, आनन्द उठालो,
जीवनकी है, यही बहार ॥२॥

(नन्हीं सिसकियाँ देकर रोना शुरू करती है)

बाबाः—अरे ! खानेके बाद रोना ! आज हँसना भूल गई बेटा ।

अनिलः—(डाटने की आवाज़में) चुप ! बाबा गोदीसे उतार देंगे ।

बाबा – चुप, चुप ! वह देखो मनिहारिन आ रही है । अभीः तुझे चूड़ी पहनाऊंगा । हरी,–हरी, लाल,- लाल ! हाँ, बेटा ।

★(६) गीत–मनिहारिन★

देखो लाई हूँ क्या ? कैसा, कैसा ये शृंगार !
अथवा —(आवो, आवो, सुनो, अपनी हृदय की बात)
मैं मनिहारिन चूड़ियाँ लाई,
जाके ये दम विदेस अनोखी ॥ लाई हूँ क्या ॥

यह सुहाग की प्रेम-भेंट है,
साजे सलोना शृंगार सतीका ॥ आवो सुनों ॥
धर्म-प्रेम की बेड़ी रूचिकर,
देन मधुर झंकार कहीना ॥ लाँइ हूँक्या ॥

(अब मुन्ने का गला फाड़ कर रोना)

बाबाः—अरे ! अब तुम भी रोने लगे । अब तुम्हें गुब्बारे देंगे । गोल, गोल । बड़े बड़े । हाँ, चुप चुप ।

✱(७) गीत गुब्बारेवाला✱

लेलो, लेलो, टन् टन् टन् टन्
गुब्बारे लेलो, पियारे सुघर
अनमोल हाँ, गुब्बारे लेलो ॥
रंग-रंगीलि, चट चटकीले,
ये बालक चित चोर ॥ ऽऽ टन ऽऽ टन् ।
हाँ. गुब्बारे लेलो ॥
रोता लल्ला हँस देवेगा। मारे खुशीके उछल पड़ेगा॥
हँस हँस कर घर भर देवेगा । हो कर हर्ष विभो ॥ १ ॥
नीले-नीले, पीले-पीले, हरे, गुलाबी, अरु चमकीले,
धानीले, अंगूरी, लेलो, वे मनहर मन भोर ॥ २ ॥

मुन्नाः—बाबा ! हम नीला लेंगे ।

नन्हीः—(चिढाने की आवाजमें) ले सिंगा । उसे हम लेंगे ।

अनिलः—(बे फिकरीसे) तो हम फोड़ देंगे ।

मुक्तिः—फिर हम जमायेंगे एक-एक चाँटा सबको ।

बाबाः—[झगड़ा मिटाने की आवाज में] हाँ ! हाँ ! ये क्या ? बच्चो ! अब हम 'संगीत-नगर' घूम चुके । अब तुम्हें इस नगर के संगीत-विद्यालय में ले चलें ।

नन्हीः—बाबा ! अब तुम्हारी उँगली पकड़ेंगे !

बाबाः— हाँ, बेटा ! देखो वह इक्के ताँगोंका अड्डा, जहाँ घसियारे-लकड़ हारे दिखाई दे रहे हैं ।

(८) गीत-घसियारे और लकड़ हारे :- (कोरस)

घसियारेः—हँसिया साधन केवल लागत, बाँध चले गठड़ी ॥
चलोरे भैया ॥
लकड़हारेः बैठ-बैठ कर पैर थकत हैं । लेओ चलो लकड़ी ॥
चलोरे भैया ॥
घसियारेः—भूख प्यास की सुध ना आवे,
धूप हो, बादल भी
घास काट कर ढोर चरावें
भरत पेट भटकी ॥ चलोरे मैया ॥
लकड़ हारेः—धूप पड़ी हो खूब कड़ककर
काम करें फिरभी,
काम-काज में सुख ना सूझे,
हालत पागल की ॥ चलो रे भैया ॥

(बाबा बालकों को ले कर विद्यालय के समीप आरहे हैं)

बाबाः—मुन्ना, नन्हीं चुप बैठना हाँ, गुरूजी को प्रणाम करना नहीं भूलना ।

(विद्यालयमें प्रवेश करते ही छोटे मुन्नाने तबलेपर धड़ाम से हाथ जमाया)

बाबाः—(क्रोधसे) हाँ ! मुन्ना यह क्या ?

मुन्नाः—(प्यार की आवाज़में धीमे) हम बजायेंगे बाबा !

बाबाः—अब सुनो यहाँके बालक 'बिहाग' राग की "सरगम" रट रहे हैं ।

(९) "सारेगम"-राग-बिहाग (कोरसमें)

(तीन ताल)

| सा प - प | - म ग म
| ० | ३

ग - - नीध | पम गम गरे सानी | सा म - म | - ग पम
× | २ | ० | ३

ग म ग सा | ग म ग - | - नी - ध | नी सां नी -
× | २ | ० | ३

गम पनी, गम | प, गम गरे सानी |
× | २

अनिलः—बाबा ! घूमते-घूमते थक गये ।

विमलः—बाबा ! अब कहाँ ले जा रहे हैं ?

बाबाः—बच्चो ! आखीर यहाँ की भजन-मंडली का भजन सुनकर वापस चलेंगे ।

सब बालक (एक साथ):—हाँ ! हाँ ! चलेंगे ।

(१०) भजन (सामुदायिक)

" जै जै राम कृष्ण हरि, जै जै राम "

समाप्त

(लखनऊ रेडियोसे ब्रॉडकास्ट) (अपूर्ण-)

नोट—उपरोक्त संगीत-रूपकके गीतों की स्वरलिपि दूसरे अंकमें आवेगी ।

काल्पनिक–संगीत–नगर

★ (संगीत–रूपक) ★

लेखकः—शंकर श्रीपाद बोडस

नन्हें और छोटे बच्चोंको संगीत किस प्रकार सिखलाया जाय और कौन–कौनसे गाने काम में लाये जायें यह एक जटिल समस्या है। प्रौढ़ोंको संगीत सिखलानेमें मेरा दिल कभी नहीं घबराता। चाहे उनका आवाज़ मोटा, बेसुरा, संस्कार–विहीन, नीरस और कर्णकटु क्यों न हो; परंतु उनमें संगीत सीखने की बलवती इच्छा और समझ तो होती है। प्रयत्न करने की हिम्मत और शक्तिसे भीड़–निराशा को वे समीप नहीं आने देते। चाहे थोडे समय के लिये भी क्यों न हो; लेकिन बालकोंकी बात दूसरी है। (यहाँ मेरा बालक से अर्थ सात से बारह–तेरह वर्ष तक है) उनको हरएक काम में खेल नजर आना चाहिये। विषय समझने में सुलभ और व्यावहारिक, उनकी आकलन–शक्ति (Grasp) से बाहर न हो। बालकोंका अकेले कोई काम सीखनेमें दिल नहीं लगता। सामुदायिक कामों में उनका मन रमता है। उन्हें रंगोंसे प्यार होता है। मनकी प्रकृति चंचल होती है। वे प्रत्येक में हंसी की अपेक्षा करते हैं। दस पंद्रह मिनिट तक एक जगह और एक जैसे खाली बैठने में कालेपानी की सज़ा का वे अनुभव करते हैं। तो समझिये कि बच्चोंको पढ़ाना कितना कठिन काम है।

उपरोक्त सर्व समस्यांऐं आँखों के सामने रखकरही निम्न लिखित संगीत—रूपक बच्चों के लिये बनवाया था और उसको लखनऊ रेडियोपर दिसम्बर १६ सन् १९४७ को बच्चों के प्रोग्राम में उपस्थित किया था। इस रूपक में, [१] भिखारी [२] ग्वाल-ग्वालन, [३] मालिन, [४] धोबिन (५) खोंमचेवाला (६) गुब्बारेवाला, (७) मनिहारिन (८) लकड़हारे–पनिहारे इत्यादि के गाने हैं। गाने का ढंग और उनकी तर्जें (tunes) चट कीली [smart] और चित्ताकर्षक (attractive) करने की मैंने चेष्टा की है। वे गाने एकत्रित रूपमें लाने के लिये "संगीत–नगर" का बहाना बना कर उसमें थोड़े गद्य वाद विवाद की नमक-मिरच लगादी है उससे वह संगीत रूपक रोचक बनगया है। उसको स्टेजपर छायाचित्रद्वारा (shadow–play दिखलाया भी जा सकता है। साथ ही साथ मायक्रोफ़ोन की मदद से गाने भी बच्चोंके ज़रिये गवाये जा सकते हैं। ऐसा प्रयत्न गत् जनवरी १९४८ में 'कानपुर–संगीत–समाज' की ख़ास बैठक में. श्री. सिद्धेश्वरजी अवस्थी और श्री. लाहड़ीजी की सहायतासे मैंने कियाथा। आशा है कि बच्चोंके कार्य (activities में दिलचस्पी लेनेवालों को यह बड़ा मनोरंजक लगेगा।

(पात्रः—इसमें दो बालक तीन बालिकायें, और बूढ़े बाबा–का काम है) पात्रों के नामः–

बालिकायेंः—	१ मुक्ति	१३	साल
	२ विमला	१०	,,
	३ नन्ही	७	,,
बालकः—	४ अनिल	१२	,,
	५ मुन्ना	८	,,

प्रस्ताविक–विवरण

यह एक काल्पनिक संगीत–नगर की मनोहर कहानी है। जिस नगरमें सब जातिके और धन्दोंके लोग अपना काम संगीत में करते हैं। बालवृन्दों के साथ इस नगरमें आज हम भ्रमण करेंगे। इसमें केवल यही विशेषता होगी कि हमारा भावप्रकाश पद्यमय और संगीत मय होगा। आजका प्रोग्राम सुननेवाले बच्चे एक नवीन लोक में हमारे साथ जायेंगे। उनका नये—नये दृश्य और व्यक्तियोंसे परिचय होगा। आशा है, की उनके ये नये साथी उन्हें अति रुचिकर पायेंगे।

पात्रः—[इसमें दो बालक, तीन बालिकायें और एक बूढे बाबा का काम है। बालकों के नामः—अनिल आयु १२ साल, मुन्ना ८ वर्ष। बालिकाओंके नामः— मुक्ति, १३ वर्ष, विमल, १० वर्ष और नन्हीं, ७ वर्ष]

अब हवाई–जहाज द्वारा यहांके बच्चे बाबा के साथ संगीत नगर की सैर करने जा रहे हैं। समयः प्रातःकाल [हवाई–जहाज की उड़ान, और बच्चोंके कोलाहल की आवाज़] पुराने टेबुल–फैन और साईकिल का घूमता हुवा पहिया जिसमें सिगरेट केस सरीखा मोटा कागज़ का टुकड़ा अटका हुवा हो हवाई जहाज की उड़ान की आवाज़ दे सकता है).

अनिलः—अरे ! अरे ! बहुत ऊंचा है।

मुन्नाः—हाँ। हम गिरे।

मुक्तिः—देखो, बाबा, अरे ! उपर जा रहा है।

मुन्नाः—देखा, यह बादल पकड़ लिया।

बाबाः— ना बेटा, यह नन्हीं खिडकीयोंसे न झाँकों। देखो छोटा मुन्ना बाहर हाथ न निकालेंने पावें।

मुन्नाः— बाबा, बाहर मुँह निकालेंगे। हम चिड़िया पकड़ेंगे।

मुक्तिः— बाबा, वह दूर क्या दिखाई दे रहा है ?

बाबा;—हाँ बेटा, वही ' संगीत–नगर ' है।

मुन्नाः— बाबा, वहां हमें खेलनेको मिलेगा ? [बड़ी दूरसे एक भिखारी गाता सुनाई दे रहा है)

★(१) भिखारी का गानाः–★

उठजाग मुसाफिर भोर भई, अब रैन कहाँ जो सोवत है,
जो सोवत है सो खोवत हैं; जो जागत है, सो पावत है।
टुक नींद कीं अखियाँ खोलजरा, ऐ गाफ़िल रब से ध्यान लगा।
यह प्रीत करन की रीत नहीं, प्रभु जागत है तू सोवत है ॥ १ ॥
अनजान भुगत करनी अपनी, ऐ ! पापी पापमें चैन कहाँ,
जबपाप की गठड़ीशीस धरी, अबसीस पकड़क्यों रोवत है ॥ २ ॥
जो कल करना है आज करले, जो आज करना है अब करले,
जब चिडियोंने चुग खेत लिया, फिर पछताये क्या होवत है ॥ ३ ॥
उठ जाग, उठ जाग, जाग, जाग, जाग,।

★ ★ ★

मुक्तिः— बाबा, बड़ा अच्छा गा रहा है।

विमलः— लो, एक पैसा।.

(संगीत–नगरका घोसियाना–स्थल)

ग्वालः–ओरी ग्वालन ! म्हारि उगर छोड दे।.
अबेर हे रही है। मोय जानों है।.

ग्वालनः— हाँ, हाँ, राजाजी ! मोय चिढावे है कि बनावे है।

★[२] गीत ग्वाल–ग्वालन ★

ग्वालनः–चलो जि धिरे धिरे,
डोले ये जिया मोरा पिया,
जरा ठहरो सजनवा, हाँ ऽ ऽ ऽ ...... ॥
चलना हो तो आ चल पियारे,
मैं, थकी, मैं, थकी,
बार कोस की बाट पड़ी है,
फिर फेरी है, फेरी ॥ मोरे राजा, सजनवा ॥

ग्वालः—दूध दही की भरि–भरि मटकी,
सारिं क्यूं संग ले आई ॥

ग्वालनः—तोरी ये बतियाँ, मोहि न भावें,
निसादि दिन ना सतावो, ॥ मोरे राजा सजनवा ॥.
चलो, चलो अब संग चलूंगी
चलने की है ठानी, ॥

ग्वालः—ओ जाने वाली, गोपालन वाली,
ठहरो जाना, इतनी क्युं हैरानी
खाते जाना, दूध–मलाई,
जीना जग मे यानी, ॥ मोरे राजा सजनवा ॥
हो ऽऽऽ, ऽऽऽ, ऽऽऽ, ऽऽऽ, ऽऽऽ,

\+ \+ \+

(स्थलः—घोसियानेसे बगीचे की तरफ जाने वाले रास्ते पर)

विमलः—बाबा ! पानी, प्यास लगी है कबकी।.

सबबालकः—(एकसाथ) हम भी पीयेंगे, हम भी पीयेंगे बाबा !

बाबाः—हाँ ! क्या, पानी ? अच्छा, तुम्हें एक बात माननी पड़ेगी। देखो, वहाँ, बगीचे में जाकर तालाब के किनारे पानी पीयेंगे; लेकिन वहाँ के फूल न तोड़ना।

मुन्नाः—बाबा ! अच्छा लगेगा तो ?

बाबाः—दूसरे की चीज़ पूछे बिना नहीं लिया करते ।

★ (३) गीत मालन ★

फूलन महिमा गावो, गावो ।
साज सजावो, रंग रचावो ॥ फूलन महिमा...॥
निर्मल कंचन रंग-रंग ये,
भृंग प्रेम मन लावो, लावो ॥ फूलन ॥१॥
धूप जलावो, चन्दन लावो,
फूलन महिमा गावो, गावो ।
भक्ति-प्रेम दिग्दर्शन करने,
फूलन हार मंगावो, मँगावो ॥ फूलन ॥२॥

(स्थलः—बगीचेमें तालाब के किनारे)

मुक्तिः—बाबा ! यहाँ की मालिन बड़ी अच्छी गाती है ।

विमलः—(आश्चर्यसे) बाबा ! बाबा ! वह कछवा, गो-पा-ल-जी ।

मुन्नाः—क्या वह पानी में मुह निकाले हुवे ?

नन्हींः—(भयभीत आवाज़से) ओ ! जू, जू, है !

मुन्नाः—(हँसते हुये) दीदी ! दीदी ! वह गोपालजी उस धोबिन का सुथना खींच ले गया ।

(सब बालक ताली बजाकर हँसते हैं)

★ (४) गीत,-धोबिन ★

कपड़े सुखावो भैया, सावन आयारे, सावन आयारे ॥
अरि बादरिया आई,
नन्हीं सी बून्दें लाई,
सूखे न सुथना भैया ।
झुक-झुक देखोरे । भादों की है धुप-छैया,
भादों की है धुप-छैया ॥
पानी है गंदला भारी,
कपड़ोंमें मिट्टी सारी,
रुपये न दे कोऊ भैया ।
थक-थक जातीं रे, धोनेमें हमरी बैयाँ,
धोनेमें हमरी बैयाँ ॥

[स्थलः--बाज़ार की तरफ़ धूपमें बढ़ रहे हैं]

बाबाः—नन्हीं ! आ गोदमें आजा । नन्हीं भूखी मालूम पड़ती है ।

अनिलः—[थकी और रोती हुई आवाज़में] बाबा ! पेटमें चूहे कूद रहे हैं ।

सब बालकः—(एकसाथ) हम भी खायेंगे, हम भी खायेंगे ।

★ (५) गीतः—खोंमचेवालाः ★

काचालु वालेना जी, काचालु की आई बहार
धनिया पुदिना कि चटनी पड़ी है,
निम्बु रसीला है यार ।
बडे-बडे है, बडे हैं खाते,
सुन्दर-सलोने कुमार ।
बाबूजी खाते, लालाजी खाते,
राजा ताल्लुकेदार ।
खस्ता कचौड़ी, पालक, बैंगनि,
मंगोड़े मसालेदार ॥ १॥
भुने मटर हैं चटक-मटक है
अदरक पड़ी मज़ेदार ।
चाट भरे मन भावन है ।
गोल-गप्पे बडे मज़ेदार ।
मिरचा है, कड़वा तेल है, कड़वा;
बालका के लड्डू तैयार,
खालो, खिलालो, आनन्द उठालो,
जीवनकी है, यहीं बहार ॥२॥

(नन्हीं सिसकियाँ देकर रोना शुरू करती है)

बाबाः—अरे ! खानेके बाद रोना ! आज हँसना भूल गई बेटा ।

अनिलः—(डाटने की आवाजमें) चुप ! बाबा गोदीसे उतार देंगे ।

बाबा—चुप, चुप ! वह देखो मनिहारिन आ रही है । अभीः तुझे चूड़ी पहनाऊंगा । हरी,-हरी, लाल,-लाल । हाँ, बेटा ।

★(६) गीत-मनिहारिन★

देखो लाई हूँ क्या ? कैसा, कैसा ये शृंगार ।
अथवा—(आवो, आवो, सुनो, अपनी हृदय की बात)
मैं मनिहारिन चूड़ियाँ लाई,
जाके ये देश विदेस अनोखी ॥ लाई हूँ क्या ॥

यह सुहाग की प्रेम-भेंट है,
साजे सलौना शृंगार सतीका ॥ आवो सुनो ॥
धर्म-प्रेम की बेड़ी रूचिकर,
देन मधुर झंकार कहोना ॥ लाई ढूँक्या ॥

(अब मुन्ने का गला फाड़ कर रोना)

बाबाः—अरे । अब तुम भी रोने लगे । अब तुम्हें गुब्बारे देंगे । गोल, गोल । बड़े बड़े । हाँ, चुप चुप ।

★(७) गीत गुब्बारेवाला★

लेलो, लेलो, टन् टन् टन् टन्
गुब्बारे लेलो, पियारे सुघर
अनमोल हाँ, गुब्बारे लेलो ॥
रंग-रंगीले, चट चटकीले,
ये बालक चित चोर ॥ ऽऽ टन ऽऽ टन् ।
हाँ. गुब्बारे लेलो ॥
रोता लल्ला हँस देवेगा । मारे खुशीके उछल पड़ेगा ॥
हँस हंस कर घर भर देवेगा । हो कर हर्ष विभो ॥ १ ॥
नीले-नीले, पीले-पीले, हरे, गुलाबी, अरु चमकीले,
धानीले, अगूरी, लेलो, वे मनहर मन मोर ॥ २ ॥

मुन्नाः—बाबा । हम नीला लेंगे ।

नन्हींः—(चिढाने की आवाज़में) ले सिंगा । उसे हम लेंगे ।

अनिलः—(बे फिकरीसे) तो हम फोड़ देंगे ।

मुक्तिः—फिर हम जमायेंगे एक-एक चाँटा सबको ।

बाबाः—[झगड़ा मिटाने की आवाज में] हाँ । हाँ । ये क्या ? बच्चो । अब हम 'संगीत-नगर' घूम चुके । अब तुम्हें इस नगर के संगीत-विद्यालय में ले चलें ।

नन्हींः—बाबा । अब तुम्हारी उँगली पकड़ेंगे ।

बाबाः— हां, बेटा । देखो वह इक्के ताँगोका अड्डा, जहाँ घसियारे-लकड़ हारे दिखाई दे रहे हैं ।

(८) गीत-घसियारे और लकड़ हारे :- (कोरस)

घसियारेः—हँसिया साधन केवल लागत, बाँध चले गठड़ी ॥
चलोरे भय्या ॥

लकड़हारेः बैठ-बैठ कर पैर थकत हैं । लेओ चलो लकड़ी ॥
चलोरे भैया ॥

घसियारेः—भूख प्यास की सुध ना आवे,
धूप हो, चाहत मीं
घास काट कर ढोर चरावें
भरत पेट भटकों ॥ चलोरे भैया ॥

लकड़ हारेः—धूप पड़ी हो ख़ूब कड़ककर
काम करें फिरभी,
काम-काज में सुख ना सूझे,
हालत पागल की ॥ चलो रे भैया ॥

(बाबा बालकों को ले कर विद्यालय के समीप आरहे हैं)

बाबाः—मुन्ना, नन्हीं चुप बैठना हाँ, गुरूजी को प्रणाम करना नहीं भूलना ।

(विद्यालयमें प्रवेश करते ही छोटे मुन्नाने तबलेपर धड़ाम से हाथ जमाया)

बाबाः—(क्रोधसे) हाँ । मुन्ना यह क्या ?

मुन्नाः—(प्यार की आवाज़में धीमे) हम बजायेंगे बाबा ।

बाबाः—अब सुनो यहाँके बालक 'बिहाग' राग की "सरगम" रट रहे हैं ।

(९) "सारेगम"-राग-बिहाग (कोरसमें)

(तीन ताल)

		सा प - प	- म ग म
		०	३
ग - - नीध	पम गम गरे सानी	सा म - म	- ग पम
×	२	०	३
ग म ग सा	ग म ग -	- नी - ध	नी सां नी -
×	२	०	३
गम पनी, गम	प, गम गरे सानी		
×	२		

अनिलः —बाबा । घूमते-घूमते थक गये ।

विमलः—बाबा । अब कहाँ ले जा रहे हैं ?

बाबाः—बच्चो । आख़िर यहाँ की भजन-मंडली का भजन सुनकर वापस चलेंगे ।

सब बालक (एक साथ):—हाँ ! हाँ ! चलेंगे ।

(१०) भजन (सामुदायिक)

"जै जै राम कृष्ण हरि, जै जै राम"

समाप्त

(लखनऊ रेडियोसे ब्रॉडकास्ट) (अपूर्ण—)

नोट—उपरोक्त संगीत-रूपकके गीतों की स्वरलिपि दूसरे अंकमें आवेगी ।

★ हार्मोनियमका स्वीकार आवश्यक क्यों ? ★

(ले.—श्री. सी. पंत वैद्य, और श्री. चैतन्य देसाई)

(गतांकसे आगे)

(७) हार्मोनियमकी संगतके गुण

संगतके वास्ते सर्वोत्तम वाद्य सारंगीका विचार हो गया। अब साथका दूसरा एकही वाद्य रहा–हार्मोनियम्। सारंगीका स्थान हार्मो०ने बहुतसा छीन लिया है, क्यों और कैसा यह सोचनेका रहा। हार्मो०वादन (१) संगत और (२) सोलो दोनों तरहसे चलता है। संगत तरीके 'स्वर को स्वर' देना काफी समझा जा सके तो वह कार्य अन्य कोईभी वाद्यसे हार्मो० ज्यादह अच्छी रीतिसे करता है। क्यों कि विलंबतमें स्वरोंउपर ठहरठेहरके चलना होता है, तब स्वर अप-स्वर एकदम मालूम हो जाता है; इस अवस्थामें स्थूल सुरीला स्वर एकसरीखा साफ और प्रसन्न तरीकेसे देनेका और उसकेउपर देरीतक ठहरनेका कठिन काम हार्मो० बिलकुल और सुलभतासे करता है। अंदाज का या देरीका एक क्षणभी जाने नहीं देता। सारंगी और व्हायोलीनमें क्या होता है इस बातका चर्वित चर्वण करनेकी जरूरत नहीं है। उत्तम सुरीला कंठ और हार्मोनियम् बाद करके हर एक गला और वाद्य स्वरके सही बिंदु पर स्थिर होनेमें एक आध दुसरा क्षण देरी अवश्य लगता है और वह क्षण बेसुरापन ही होता है, जो हार्मो०की संगतसे बिलकुल ढँक जाता है। यह विलंबितका मामला हुवा। द्रुतमें सूक्ष्म स्वरोंका और स्वरक्रियाओंका काम कम रहेता है: बहेलावा, मुरकी, पतली तान, गमक तान, पलटा तान, बोल तान आदि काम ही करना होता है। उपर (लेखके प्रथम भागमें) बताया है कि खास करके बिनापरदेके वाद्योंके ऊपर द्रुप स्वर चलन सुरीला होना अशक्यवत् है, उपरान्त द्रुतमें सारंगीमें स्वरके बदले 'चीं चीं' अवाज सुनाई देता है। अपवाद रूप उत्तम सुरीले कंठकी बात छोडके बहुतकरके सबही गले द्रुतमें याने तानमें सारंगी जैसेही स्वरसे थोडे या ज्यादह अलग हो जाते हैं। द्रुतकी वे भी गतिमें हार्मो. स्वरबिंदुसे द्रुकता नहीं है, इस कारण से द्रु[illegible] गानयकी संगतमें हार्मो. गायकको मददगार होता है। पत[illegible] तान, मुरकी आदिका ख्यालठुंमरीके बोलमेंभी आमतौरपर उपय[illegible] में होता है और तानबाजी यह तो ख्यालके रूपये में आध आन[illegible] गिने जायें, तो हार्मो० की संगत सुरीले गायकोंनेभी क्यों आवश[illegible] मानी इसका खुलासा हो सकता है। द्रुतमें गमकक्रिया ओंमेंम[illegible] कतानका उपयोग करनेमें आता है, वह तानभी हार्मो० में [illegible] अब्दुल करीमखां की संगतमें निकाली जाती थी जो लोगों[illegible] सुनी हुई है। म० अल्लादियाखां की पद्धतिकी वक्र संचारी [illegible] तान और ग्वालियरवालोंकी सपाट जलद तान हार्मो० पेटी स[illegible] सही दानेदार और सुरीली निकाली जा सकती है। फैयाजखां[illegible] ख्यालकी शैलीकी सब हरकतें उनके हार्मोनियम साथीदार अच[illegible] रीतिसे पेटी पर निकालते हैं यह लोगोंके सुननेमेंही है। इसी बा[illegible] पर इशारा करते हुये एक सामन्य लेखिकाने लिया है:—

"I think, however, that the harmonium [illegible] proving; on the controry, very fine accon[illegible] powiment to indian vocal music. The ve[illegible] fact that, such musicians as Abdul Kari[illegible] Khan and Faiyaz Khan nse the Harmoniu[illegible] for their concerts, shows that it must b[illegible] lending itself well indeed to the needs [illegible] good Indian music. " (the Appeal in India music by Mrs. Sahukar; P..5 !)

संगीत यह स्वरसे कोई अलग चीज़ नहीं है। स्वरोंकी रचनाका ही नाम राग, ताल, गमक और तान आदि हैं। स्वरका मसाला जितना अच्छा रहेगा उतना संगीत स्वादिष्ट–सुंदर–असर करनेवाला बनेगा। स्वर जितने बिगड़ते जायेंगे सुरीलापन जितना कम होता जायगा उतनेही प्रमाणमें संगीत कर्ण-कटु, रूखा, कष्ट-दायक होता जायगा, वह भलेही अच्छी रचनायुक्त हो, बहुत बलपेचीठा हो। हार्मोनियमका महत्व इसीमें है। वह अन्य कोई भी वाद्यसे एक अवस्थामें स्वरमें रहता है, कभी भी स्वरसे चलित नहीं होता है। स्थिर स्वरताके कारण उसमें श्रुतियोंकी संतति पैदा नहीं हो सकती हो; लेकिन बेसुरों की असुर प्रजा भी यह पैदा नहीं कर सकता है।

तानमुरकीमें सुरीला गलाभी स्वरसे चलित होनेका डर रहता है वहां और तैयारीमें भी हार्मोनियम् गायकके साथ-साथ दौड़ता है गायनको सुरीली छत्र छाँवके नीचे ढँकते-ढँकते। गायनका 'रंग' सुरीलेपन के ऊपर मुख्यत: अवलंबित है और स्वरोंकी हवासी बांधकर हर्मोनियम् गानेका रंग जमा देता है। इसी कारण से नामी, सुतार और सुरीले, अल्पप्रिये और निर्मल दोनों प्रकारके बड़े-बड़े गवैयोंने हार्मो. की संगत आवश्यक समझकर हा लेली। अलादिया खां, बखले, अबदुल करीम खां, रामकृष्ण वजे मंजीखां, फैयाजखां, गंगूबाई, हीराबाई, रोशन आरा वगैरहकी साथ हर्मोनियमूसे होती रही और हो रही है उसमें हार्मो. का बेसुरापन कभी मालूम नहीं हुवा बरन गानेका रंग बढ पाया। यह अनुभव जिन्होंने लिया है वे तो हार्मो. के विरुद्धकी बातें बेकार और फिजूलही मानें गे।

(८) हार्मोनियम् सोलो-वादन

पहिले कहा है की हार्मोनियम् वाद्य रागदारीके संगीत वास्ते थोडा प्रतिकूलही है, इस कारसासे इसमें रागदारीका सोलोवादन होनेकी संभावना कोई नहीं रखता; लेकिन हार्मोनियममें भी राग दारीका सोलोवादन करके, श्रोतृसमूहको मंत्रमुग्ध करने वाले हार्मोनियमवादकभी पैदा हुये, यह बात हार्मोनियमकी तरफदारीमेंही जायगी। श्री. भय्यूभाई, गणपतराव भैया, दुबे, भगवान चौगुले, शंकरराव कपिलेश्वरी, बशीरखां आदि सोलो हां. वादक प्रसिद्ध हैं। हार्मोनियमकी खामियां जानते हुयेभी इन गुणियोंको जिसने सुना होगा, वह आदमी हार्मोनियमके बहिष्कार करनेका भला ख्याल तक कैसे कर सकता है ?

(९) बिनाहार्मोनियम् बेसुर गवैये।

लेखकमहोदयेका एक आक्षेप यह है, "कि हा. के साथ में गानेकी आदत हो जानेसे गायक उसपर आश्रित हो जाता है और बिना हार्मोनियम् गातेसमय बेसुरा हो जाता है। तो फिर सारंगीकी साथकी आदत (या तान पुरेकी?) हो जानेसे वही बात पैदा होगी। सिर्फ आप्तके कारणही और कभी ऐसा अनुभव आ गया तोभी, सारंगीका (या तानपुरेका) बहिष्कार सोचना बुद्धिमानीका काम न होगा। ओर कोई आदतसे लाचार होते है, तो उनकेवास्ते उसमाफिक इतजाम मेहफिलवाले और म्यु० सर्कलवाले पहिले हाकर लेते हैं–बहायिमरेडसे विकदानी तभका। हार्मोनियमवाले बाबूजी साहब तो मुफ़तमें पहिलेसे इंत जारमें रहते है कि इनको भी एक चान्स तो मिल जाय, फिर रोना काहेका ? हार्मोनियमके साथमें गानेवाला सुरीला गवय्या बिनाहार्मोनियम् गाते दफ़ै बेसुरा गाने लगा, यह बात किसीके देखनेमें, अथवा सुननेमें आई है क्या ! अलादियाखां, अबदुल करीमखां, मंजीखां, बरबनेबुवा, वझेबुवा, सवाई गंधर्व, रोशन आरा, हीराबाई, गंगूबाई आदि को हार्मोनियम् और बिनाहार्मोनियम गाते लोगोंने कईबार सुना है और हरएक गाना जितना हार्मो० के साथ सुरीला था उतनाही बिनाहार्मोनियमके मालूम हुआ। तो श्री. पाठकजीका कथन झूठा है क्या ? झूठा तो नहीं; लेकिन भ्रमक जरूर है, और वह नीचे मुजब।

(१०) असुरीले गायकोंकी साथ हार्मो०से अत्यावश्यक।

तो फिर श्री. पाठक जीके आक्षेपका सही अर्थ हमको यह मालूम होता है कि, "असुरीले गयकोंका गाना सिर्फ तानपुरे के साथ (और सारंगी के साथ में) बेसुरा मालुम होता है, जब हार्मोनियम की संगत में उन्होंका सामान्यत: सुरीला मालूम पड़ता है" और सही बात यही है। शास्त्रीय संगीतके श्रवणसे जो आनंद होता है। वह संगीत के अनेक या सब अवयवों परिणाम का फल है। सुरीलापन, सुंदर स्वर रचना, कोमल या जोरदार स्वरोच्चार, मींडघसीटादि गमक, स्वरसंगति और स्वरसंवाद, स्वरकन या सूक्ष्म स्वरस्थान और श्रुतिआस (continuity), सहजता (ease) चलनमें और फिरतमें सुलभ–गमन, तान और गतिमत्ता वादी–विवादी का यथायोग्य वर्ताव, तालमें विविध चलन अर्थात् लयकारी, तीव्रता (intensity) और दर्द–जिगर–(sincerity)

सुसंबद्धता (Truc Form) रचना कौशल्य (work man ship) आदि अवयव संगीतमें रहे हुवे हैं और फल देनेमें कामयाब होते है। शास्त्रीय संगीतमें सुसंबद्धता और राग नियमोंको विशेष महत्व है और समझदार श्रोता इन गुणोंकेसिवाय राजी नहीं हो सकता। अद्भुत स्वरसंवाद और अद्भुत सूक्ष्म-स्वरसे अद्भुत आनंद होता है। रागदारीके संगीतमें तालका उपयोग विशेष आनंदके वास्ते होता है और इसी कारणसे उसमें लयकारीको एक बड़ा स्थान अवश्य मिला हुआ है। तान यहभी लयकारीका एक प्रकारही है, जो गायनकी अंतिम (Finishing) और अत्यंत (climax) अवस्था बतानेके वास्ते जरूरी अंग है। सुरीलापन और लयकारी दोनो गुण एकही गायकमें एकही साथ देखनेमें कम आते हैं। इन्ही अलग दो गुणके ऊपर ' सुरीले ' और ' तैयार ' नामसे गायकोंके दो वर्गही करनेमें आते हैं। सुरीलापन यह संगीतकी सर्व प्रथम और अत्यावश्यक शर्त होनेके कारन अच्छा ' तैयार ' गायकका गानाभी ज्यादह देरीतक सुनना कानको कष्टदायकही मालूम होता है सर्वसामान्य श्रोता तो ऐसे गायनको गलेका व्यायाम समझकर उससे दूर रहना पसंद करता है। इसिलिये ऐसे गायनकी संगत सुरीले वाद्यसे होना नितांत आवश्यक हो जाती है, जैसा सामान्य रूपवान रूपवती को सुंदर पहनाव और प्रसाधन। अपने यहां यूरोपजैसा अच्छा गला पाया हुवा कंठ संगीत सीखे और गावे यह नियम या प्रथा नहीं है। ज्यादहतर बुरे गलेवालोंकी तकदीर मेंही उस्तादी गाना गानेका सुंदर काम आता रहेता है। महनतसे आवाज साफ कसदार और गाने काबिल बना दिया जाता है। यह कह देनेमें बुराई नहीं है, कि सुरीले गायक बहुतही कम रहेते है। ऊपर बताया वैसा असुरीले गले वालेभी अच्छे गायक हो सकते हैं। अब सुरीले गायोंकोकी साथ हार्मोनियमसे होना आवश्यकसा मालूम पड़ता है तो फिर 'तैयार गायकोंको हा० की साथका संरक्षण या सुंदर पहनाव अत्यावश्यक नहीं है क्या ? महीफल का हेतु तो एकही रेहता है श्रवणका आनंद लेना। हार्मोनियमकी सुरीली साथसे रंगमें बढ़ती होती होगी, तो कनसुरे गायकोंकी कामधेनु हार्मोनियमका बहिष्कार कैसा हो सकता है ? अलबत्ता, एक आध बेसुरा गायक बिना हार्मोनियमके गानेकी आपत्तिमें फँस जाता है तब अपना स्वरदोष हार्मोनियमकी आदत-पर लादकरकी छुडानेकी कोशिश करता है। श्रुति पंडित हार्मोनियमको गालियाँ बकते है, तब गवय्येभी उस रागमें अपना राग मिलाते दिखते है, उसकी वजह खुशामद या अप्रामाणिकताके अलावा क्या होसकती है ? इस बातमे एक आग्रेवाले खांसाहबकी बात याद आती है। हार्मोनियमकी बात निकाली, तो अपना श्रुतिपांडित्य जाहिर करनेके हेतुसे वे कह लगे, " हा. तो बेकार बाजा है, बिलकुल 'कंडम्,' हमें तो उससे नफरत है!" इसके अगले रोजही उनका गाना हुवा था, उसमें हार्मोनियम वालेकी राह देखनेमें खांसाहबने आधा घंटा बिताया था। हमने इस मामलेकी याद दिलाई, तो जबाबमें उन्होंनें कहा, "जी। हां. तो मैं आप लोगोंकि वास्ते बुलवाता हूं क्योंकि आप चाहते हैं इस वजहसे। मेरे वास्ते तो हार्मो. और बिना हार्मो. एक ही है ग्वाली तानपुरेमें भी मै उतना ही गाता हूं!" ये लोग समझते हैं कि साथ से गानेमें मदद होती है, इस बातको मंजुर करना माने अपनी कमजोरी कबूल करना है। कई कनसुरे गवय्योंकी कमी-कदु महफिलका रंग हार्मोनियम आनेके बाद ही जम गया, यह बात अनुभवी जानते होंगे ही। अभी इस विषयकी चर्चा चल रही थी तो एक सुरीले व्हायोलिनिस्टने कहा, " भैयाजी, हार्मोनियम को उत्तम वाद्य कौन कहता है ? " लेकिन हमारे उस्ताद रजब-अलीखां जैसेसे तो वह लाख दर्जे अच्छा है। फिर फोकटमें झगड क्यों बढाते हो ? "

संगीत-शिक्षामें हार्मो०का स्थान.

हार्मोनियमकी मदद स्वराभ्यास करने में विद्यार्थी को नुकसान पहुँचेगा, यह लेखक का आक्षेप मान्य हो सकेगा। कई स्कूल्स क्लासेस में हार्मो. का बुरी तरह उपयोग करनेमें आता है, वह अयोग्य है; लेकिन क्षमतव्य भी है; क्यों कि संगीतके सामान्य स्कूल्स आदि एक प्रकारकी चाकियांही हैं। आवाज कमानेके और स्वरज्ञान के वास्ते सिर्फ तानपुरेके साथ ही स्वराभ्यास करना चाहिए, यह बात प्रसिद्ध है।

संगीत शिक्षामें वाद्यवादनका बडा महत्व और उपयोग है। यह बात कई लोग नहीं जानते। बहुतसे अच्छे गायकों के बारेमें तलाश करनेसे मालूम होगा, कि वे कोई न कोई वाद्य अच्छी तरहसे बजाते थे। कई अच्छे गायकों उस्तादोंका पता लगानेसे मालूम होगा कि प्रसिद्ध बीनकार या सारंगिये उनके उस्ताद थे। इसमें

कमतीपन या बुराई समझना गलती है। तानसेनके दोनों शाखाके वंशज वाद्यवादन भी करते थे। पुत्रादि 'रबाब' नामक पठानी सारंगी बजाते थे और जमातके वंशज बीन बजाते थे। बंदे अलिखां बंदे अलीखां कई गायकोंको सिखाया था। इनके शागिर्दोंमेंसे इंदौरवाले वहीद खांके पुत्र गुलाम कादिर गायक हैं। देहली वाले अमीर खां गवय्या के पिता एक सारंगिये थे म० बंदेअली खां, सारंगिये हैदरबख्श और प्रसिद्ध सुरीले गायक म० अबदुल करीमखां ये तीनों किरानीवाले खानदानके कहलाते हैं। हैदरबख्श पहले अच्छे गायक थे, बादमें आवाज़ ख़राब हो जानेसे उन्होंने सारंगी-पर मेहनत करके गायकगायिकाओं को तालीम देना शुरु किया। हैदरबख्शखां अबदुल करीमखांके साले थे। इन्होंने देवासवाले रजब अलीखांको और देहलीके वहीदखां (किरानेवाले) को सारंगी बजाकर सिखाया। हैदरबख्शखांका प्रसिद्ध गवय्ये म० अलादियाखांसे बडा दोस्ताना था। उन्होंने अलादियाखां की तान सारंगीपर बिठाकर रजबअली गलेमें डालनेकी खूब कोशिश की। रजबअलीखां अच्छे तैयार और तनैयत गवय्ये जरूर हुये; लेकिन किरानेवालोंका ढंग उन्होंने छोड दिया और अलादियाखांकी तान, तो उनको वैसी आनसकी। (बंदेअलीखांकी एक शागिर्द प्रसिद्ध हार्मोनियम वादक गणपतराव भैया) पहिले जमानेमें मौजुद्दीनखां ठुमरी गानेमें बादशाह कहलाये गये, वे गणपतराव भैयाके शागिर्द थे। स्वरज्ञान और रागज्ञान वाद्योंके ऊपर अच्छी रीतिसे मालूम हो सकता है, इस कारण अच्छे अच्छे गवय्ये किसी न किसी वाद्यपर महनत करते है। म. अबदुल करीमखां सितार, बीन, जलतरंग और पखवाज अच्छा बजाते थे। रजबअलीखां सितार, जलतरंग, बीन और तबलाभी बजाते है। स्व. रा. कृष्णबुवा वझे सितार बजाते थे। ग्वालियरवाले गवय्ये राजा-भैय्या पूछवाले हार्मोनियम् बहुत अच्छा बजाते थे। आजके एक अच्छे गायक बडे गुलामअलीखां 'कानून' वाद्य अपने गानेके साथ बजाया करते है। यूरोपमेंभी विशेषत: पियानो वादकही संगीतकार बन सकते हैं। इसका कारण यह है कि कोईभी शास्त्रीय संगीतके बहुतसे अंग वाद्यवादनसे पैदा हुए होते हैं। अपने संगीतमेंसे स्वर संगति, गमक, लयकारी और तान ये चीज वाद्यवादनमेंसे आईऽ हुई हैं। रागविस्तार और बडे राग यानें बीन आदि वाद्योंके दिखाए और बनाये हुए सवादी-विवादी स्वर चलनही हैं। परदेके वाद्योंके ऊपर स्वर आसानीसे मालूम हो सकते है, लेकिन इतने सुरीले नहीं, जितने हार्मो नियम के उपर मींड गमक, मुरकी खटका, बहेलावा आदि हरकतें स्वर जोडान रूपही है और सुरीले और साफ स्वरोंके ऊपर गलेसे काबू पानेके बादही उक्त हरकतें ठीक रीतिसे निकल सकती है। 'सारेगम' रटनेकी और 'पलटे तैयार करने की आवश्यकथा इसवास्ते रही है। दो तीन ही स्वर उलट पुलटकर बोलनेमें स्वर कमजाद बेसुरे होने की धास्ती रहती है और वाद्योंसे हार्मो० इस तरहके स्वरक्रम और स्वर योग निश्चित और साफ बता सकता है और मींड और आंदोलनकी यथार्थ कल्पना तो परदेके वाद्य असली रूपमें बता सकते है लेकिन बहलावे, मुरकी, जमजमा, तान ये स्वर योग हार्मो० जैसे अन्य वाद्योंपर नहीं निकल सकते, इसवास्ते संगीतके विद्यार्थीको हार्मो की सहायता एक अच्छे उस्तादसेभी ज्यादह हो सकती हैं। (१) स्वर अपनी बराबर जगह ऊपर न लगना और (२) हरएक स्वरके उच्चारण के पहिले अपस्वरका टुकडा लग जाना ये दो दोष—अपवादरूप सुरीले कंठ छोडकर—करीब हरएक कंठमें रहे हुए होते हैं। ये दोष निकालनेके वास्ते स्वराभ्यासकी आवश्यकता है, और उसमेंभी यह लक्ष्य होता है, किसिर्फ शुद्ध १२ स्वरोंका साफ उच्चारण हो। उपर्युक्त नं. २ का दोष गलेमें रह जानेसे गानेमें घर्षणात्मक असंगीत (un musical) आवाज पैदा होती है। बहुतेक गवय्योंकी तानमें उक्त दोनों दोष भरपूर नजर आते हैं, जिससे तान बेसुरी और एक घोंघट जैसी मालूम होती है। मींड आदि हरकतों में स्वरस्थान बेसुर हो जानेसे जो अनेक असंगीत आवाज पैदा होती हैं, उससे किन्हीं प्रसिद्ध गवय्योंके गानेमेंभी कुंथने माफिक, रोनेमाफिक और कईदफा तो जनावरोंका । जैसे हास्यास्पद स्वरोच्चार सुननेमें आते हैं। एक बड़े खानदानी पंडित गवय्ये एक सप्तककी या औरभी लंबी घसीट तानते हैं और वह इस लक्बसे कि जाने उस्तादजी अंगड़ाई ले रहे हैं। अपने इच्छित स्वरोंके उच्चार हार्मोनियममें पहिले बजाकर फिर उसी तरह गलेसे निकालनेका अभ्यास उस्ताद हुए बैठे नामी लोगोंके वास्ते भी कितना आवश्यक है, इसका यह एक जिन्दा उदाहरण है। उस्तदोंका गाना शागिर्दोंमें सही-सही उतारनेके वास्ते हार्मोनियम् सहायक होगा।

'ख्याल' गायनमें तानका बडा हिस्सा रहा है। चीजोंके बोलमें छोटी-छोटी तान पहराई होती है। उपराना आलापमें भी तान का अंश डालना पड़ता है। आलापकी गति बढाते है तब

वहही तान ताम रूप लेता है। ख्याल गायनमें द्रुत–लयमें उत्तानावस्था प्रगट करने के वास्ते तानका उपयोग आवश्यक है। इस तरह ख्याल–गायन में तानका हरतरह उपयोग होता रहता है। लेकिन तान तभी आनंद दायक होती है कि जब वह सुरीली और साफ़ रहती है अन्यथा वह निरर्थक और रसहानिकारक ही होती है। जहां स्वरही नहीं रहे वहां रागभी कैसे रह सकता है और उसको 'गाना' भी कैसे कह सकते हैं? बहुतसे तानबाज़ी वालोंकी यही हालत होती है। आपके अलीखां जैसे की बिकट और मजेकी फिरतभी इसकारणसे कर्णतापदायक हो जाती है। तानका अभ्यास करनेके वास्ते हार्मोनियम जैसा अन्य वाद्य उसके विरोधी जबतक नहीं बना सकते, तबतक हार्मो. का बहिष्कार नहीं हो सकता। संगीतका हरएक अवयव समझनेके वास्ते संगीतके विद्यार्थीको हार्मो. का उपयोग अत्यावश्यक है उसी तरह उस्ताद लोगोंका गाना-बजाना निर्दोष कर सकनेके वास्ते हार्मो. की आवश्यकता अपरिहार्य है।

संगीत-शिक्षामें हार्मो. जैसी, सारंगीकी मदद मिल सकती है और मींड घसीट देखनेके वास्ते वह ज्यादह अच्छी अवश्य रहेगी लेकिन ऊपर सारंगीके दोष बताये हैं वहभी साथ–साथ विद्यार्थीके गलेमें उतरनेका पूरा संभव रहता है। यह बात न भूलना चाहिए। स्त्रीगायकोंका कंठ कुदरती बहुधा सुरीला रहता है, इसलिये सारंगी वालोंकी सिखाई हुई 'बाईयाँ' बेसुरी कम मिलेगी, तोभी सारंगीकी तार सप्तककी तीक्ष्णता उनकी भी आवाज़में आ जाती है। सारंगी की कनसुरी और रूखी फिरत गायकके कंठमें बैठ जानेका खतरा खास रहता है। **वहीदखां** और **रजबअलीखां** देवासवाले ये उदाहरण मौजूद हैं। वैसे हार्मो. केसाथ गानेकी महनत करनेसेभी मींड–आंसवर्जित और टूटा, कच्ची तान बाजोंका हृदयहीन गाना गलेमें क़ायम होनेका डर अवश्य बढा हुआ है। हार्मो॰ का युग प्रारंभ होनेबाद ऐसे गायक भी पैदा होते रहे हैं। कंठसंगीत एक स्वतंत्र चीज़ है। कोई वाद्यवादन का अनुकरणरूप वह कदापि न होना चाहिए।

(१२) हार्मो॰ का हिंदुस्तानी टयूनिंग।

लेखकने लिखा है कि "हा॰ का टयूनिंग-टॅंपर्ड स्केलकाभी यंत्रिकी मददसे करना चाहिए जब अपने यहांके कारीगर कान के अंदाज़से टयूनिंग करते हैं और वह टॅंपर्डस्केलसे ज्यादह बेसुरा होता है या होना चाहिए।" इस कथन के बदले लेखकने यह कहा होता कि अपने यहांका टयूनिंग और टॅंपर्ड स्केल दोनोंमें फरक रह सकता है, तो वह सत्यके ज्यादह नज़दीक हो सकता था। कारण कि उक्त ज्यादह बेसुरापन लेखकने कोई यंत्रसाधनसे परीक्षा करके देखा तो है नहीं। कारीगर टयूनिंग उनके कानसे करते हैं और श्री. पाठकजी उसकी परीक्षा अपने खाली दिमाग़से। खैर, यांत्रिक साधनसे किसी भी प्रकारका टयूनिंग करना उचित तो है ही; लेकिन यंत्रके बताये हुए स्वरोंमें अपने वाद्यके स्वर मिल गये या नहीं इसको देखनेवाले भी तो आखिर स्वरज्ञ कान ही रहेंगे? इस बारे में किसी की शंका हो, तो **फिजिक्सके** विद्वान् **प्रोफ़ेसर** जो संगीतोपयोगी 'ध्वनि' के ऊपर सप्रयोग लेक्चर देते हैं, थोडा बहुत संगीत सुनते भी हैं, कभी थोडा गाते बजाते भी हैं, इनमेंसे एक आध और आगे बढके संगीत शास्त्रके ऊपर पुस्तक भी छपाता है और उसके बलपर संगीत कॉन्फरन्सोंमें और सरकारी कमिटी-ओंमें तक संगीतज्ञ के रूपमें झलकने लगता है, वैसे को तानपुरेकेचार तार मिलानेको कहोगे और देखोगे तो हरएक स्वरमें आधा इंचका फरक रहा हुवा आपको नजर आयेगा। अपनी लेबॉरेटरीमें प्रोफेसर साहब जब स्वरोंका प्रात्यक्षिक विद्यार्थीयोंको बताते हैं: तब दैववशात् 'सायरन' या 'सोनोमीटर' को लकवा या कंपरोग हो जानेसे प्रोफेसर साहबका स्वरज्ञान भी छुट्टी लेता हुवा आपको दिखेगा। इस विषय में इन ध्वनिशास्त्रिओंसे निरक्षर कारीगरके बारह बरसके बच्चेभी अच्छे 'विद्वान' होते हैं। कई दफा यहभी देखने में आया कि प्रसिद्ध बडे गवैयों को तान पुरेके खरजमेंसे सुनाई देता, मोटा गंधार धुरंधर पंडित **भातखंडे** के कानतक न पहुँचा। यहां ग्रांथिक विद्वत्ता काम नहीं देती है, यह प्रॅक्टीकल विषय है। सबसे बड़ा ग्रंथ और यंत्र तो तुम्हारे कानही होंगे। बात यह है कि अपने यहांके कारगीर हार्मो॰टयून करते हैं वह हरएक स्वरका षडज़ मध्यम पंच मिलकर। वह जरूर टॅंपर्ड स्केलसे अलग स्केल रहेगा और हमारा अनुभव है कि वह टॅं. स्के. काम बेसुरा मालुम होगा; क्यों कि आम तौरपर और विशेषत: हिंदु-स्तानी संगीतमें ष–म–पं. संवाद अतिमहत्वका होनेके कारण इसतर हका अनिवार्य इच्छनीय है और इसी हेतुसे अपने कारी-

गरोंने यह रास्ता निकाला है। टेंपर्ड स्केल केमाफिक यह भी सुरीले बाने नैसर्गिक स्वरसप्तकसे थोड़ा अलग मालूम होंगेही; इसवास्ते इसको भारतीय टेंपर्ड स्केल नाम दे सकते हो हार्मो० की कोई भी पट्टीको 'सा' करके बजा सकने की सुविधा चाहते हो तो उसको कोई भी टें. स्केलमेंही व्यय करना अपरिहार्य होगा। तुम्हारी रोटी (cake) साबित भी रहे और तुम खा भी जाओ ये दो बातें एकहीसाथ कैसे बन सकतीं है ?

रेडियोमें हार्मो० की बंदी

लेखांतमें श्री. पाठकजीने रेडियोमेंसे हार्मो० की साथ बंद हो गई इसवास्ते रेडियो डिपार्टमेंट की बुद्धिकी तारीफ की है। ऐसा होता तो कह सकते कि काम अच्छा किया; लेकिन हमारी समझसे यह तो उलटा ही काम हो गया है। रेडियो वालों ने देशके अच्छे अच्छे गायकोंका परामर्श लेकर हार्मो. पर पाबंदी लगा दी होती, तो वह हमारे जैसेके मतसे गलत होते हुएभी योग्य ही कह जाता लेकिन कोई 'गोरे' ऑफीसरके दिमागमें हार्मो. के वास्ते खराबी पैदा हुई और उसने इस बलाको दफन करनेका औरंगजेबी फर्मान् निकाला, जिससे रेडीओमें यह संगीतकी उन्नति होने पाई हो, तो इसको कौनसा नाम देना, यह तो हम वाचक की खुशीके ऊपर छोड़ते हैं।

÷ ÷ ÷

संगीतके एक निष्पक्षपाती जानकारने यह लेख पढ़ा और आग्रहसे पूछनेके बाद जवाबमें कहा:— "मुद्दे सब योग्य हैं, लेकिन आपने हार्मो. की तरफदारी जरा ज्यादह की है!" प्रत्युत्तर देनेमें आया, "हाँ साहब! वैसाही तो होता है! आपको मालूम है, फ्रान्समें एक आदमीके मृत्युकी नोंध हुई और कमबख्त जिंदाही था! आखिर खुदको जिंदा ठहराने के वास्ते उसको कितने 'गवाहोंकी कबरें खोदनी पड़ीं कई पुरावे और सार्टिफिकेटें पेश करनी पड़ें; क्यों कि बात तो इतनीसी और प्रत्यक्षसिद्ध; लेकिन मामला तो कोर्टकी चित्रगुप्तीमें चढ़ गया न ! अब जिंदेको जिंदा ठहरा देनाभी आसान नहीं रहा!"

(संपूर्ण)

B. B. Sitar Maker

बाबू बालासाहेब

सितार, तंबोरा, ताउस, दिलरुबा, बीन आदि

तंत साजोंके पुराना कारीगर.

पत्ता— स्टेशन रोड, मिरज (S.M.C.)

स्व. पं. विष्णु दिगंबर संगीत प्रकाशन

संगीत बालप्रकाश—(नया संस्करण) भाग १-२-३

मूल्य ३-०-०

संगीत बालबोध—(पुराना संस्करण) भाग १-२-३-५

राग प्रवेश—(पुराना संस्करण) भाग १-१९

डाकव्यय अलग होगा।

पुस्तकें मिलनेका पत्ता:—

६९० बुधवार पेठ

पूना. २

मृदंगाचार्य गोविंदरावजी देवरावजी गुरूजी

लेखक—डॉ. भानुदास कृष्णाजी तरडे, नासिककर H.M.D.A.B.

"मृदंगाचार्य गोविंदरावजी गुरूजी एक बड़े विद्वान् वादक हैं। इन्होंने मृदंग और तबला वादन पर एक बहुत उपयुक्त ग्रंथभी लिखा है। इस लेखमें दिया हुआ इनका परिचय वाचकोंको बहुत रोचक लगेगा।"

मृदंगाचार्य गोविंदराव देवरावजी गुरूजी

माननीय **गोविंदरावजी गुरूजी**का मूल घराना (निवास) **कोंकण** देशमें मालवन है; किन्तु इनके पूर्वज दो तीन पीढीसे **मध्यप्रांत बुरहानपुर** में आकर बसनेसे इनको **गोविंदरावजी बुऱ्हानपुरकर** इस नामसे जनता पहिचानती है। पहिले इनके घरकी परिस्थिति अत्यंत गरीबी हालतमें थी। उस वक्त इनके पिताजी बुरहानपुर तहसीलके **इच्छापुरमें** मामूली कामकाज करते हुए अपने कुटुंबका पोषण करते थे। ऐसी दशामें आपका शालेय शिक्षण कितना हो सकता है यह जनता स्वयं अनुमान कर सकती है। तथापि आपको बचपनसेही संगीत प्रणालीके मुताबिक शालेय शिक्षणकी तीव्र इच्छा थी। उनकी इस प्रकारकी तीव्र एकाग्रताको समझकर उदार चरित श्रीमान् **स्व. बाबासाहब भुस्कुटेंनी** सरदारनें इनको प्रोत्साहन देकर स्कूलमें दाखिल करवा दिया। तदनंतर आपका प्राथमिक शिक्षण समाप्त होतेही प्राथमिक स्कूलमें शिक्षककी नौकरी भी दिलवादी। इस प्रकार आप अल्प अवस्थामेंही स्कूलके अध्यापक होकर कुटुंबके पोषक, अपने पिताको सहायता देते रहे। आपके बचपनमें चार सालकी उम्रसेही गायनवादनकी अत्यंतिक लगन प्रतीत होती थी। आपके पिताजी कोभी संगीतकी अच्छी लगनथी, इससे यहलाभ हुआ कि आपके संगीत प्रेम को काफी प्रोत्साहन मिलता रहा। आप बचपनसेही मुखसे गीत गाते हुए हाथसे तबलेके बोल निकालते रहे। भावी प्रगति केलिये घरकी गरीबीके कारण आपको अपना संगीत विद्याव्यासंग बढ़ाना मुश्किलथा। फिरभी बुरहानपुरके श्रीमंत सरदार भुस्कुटजी के आश्रय में हरवक्त छोटे बड़े गायक वादक गुणीजन आयाकरतेथे जिनका गायन वादन सुनते-सुनते विद्यार्थी दशामेंही आपका संगीतज्ञान थोड़ाबहुत बढ़ता ही रहा।

चरितार्थ केलिये शिक्षक का पेशा स्वीकार करने के बाद आपने निर्णयकिया कि ज्यादहसे ज्यादह समय लगाकार गायन वादन व्यासंगबढाना चाहिये। असमय यानी आजसे करीब पचास वर्ष पूर्व संगीतविद्यालयका अस्तित्व नहीथा। उस वक्त उत्साद के साथ रहकर उनकी सेवा करते करते उनके स्वभाव और इच्छानुस्वार गुरुपरंपरागत ज्ञान प्राप्त कियाजाताथा। इस तरह आपनेभी ऐसे कष्टप्रद विद्याप्राप्ति के मार्ग का अवलंबन कर ज्ञानप्राप्तिके पवित्रध्येय को लक्ष बनाकर कईएक नामांकित संगीताचार्योंकी सेवाकी, और यथा संभव संगीत ज्ञान प्राप्तिकिया। उस अरसेमें कोई-कोई संगीताचार्य आपको ऐसेभी मिले जो आपकी अलौकिक विद्याग्रहण शक्तिको देखकर सोचने-लगतेकि "अगरइसको हमने कहीं अपनी समस्त विद्यासिखादी तो भविष्यमें हमको मिलता सरदार साहबका आश्रय यह विद्यार्थी लेलेगा" ऐसी डरपोक मनोवृत्तिसे उन्होंने आपको सिखाना बंदकर दियाथा, और आपकी ज्ञानलालसा, विद्याव्यासंगकी कदर करनेवाले और अपना ज्ञानसर्वस्व दानकरनेवाले गुरुजनभी आपको मिले। वेथे **स्व. श्री. सखारामजी बुआ। श्री. सखारामजी मृदंगाचार्य,** सरदार साहब के आश्रयमें थे और उन्होंनेही आपको उदारतासे विद्याज्ञान देकर मृदंगतबला वादनमें पारंगत किया। उस समय, दिनभर स्कूलमें शिक्षक का कार्य करनेके बाद

रातबिरातको एव बड़ी सुबह उठकर आपको संगीत विद्याभ्यास करना पडताथा। विद्यागुरुकी जब इच्छा होती तब शिक्षण मिलता, वह आप एक आश्रमवासी शिष्य के अनुसार याद रखकर घर लौटतेही लिख लिया करतेथे। ऐसा क्रम कई साल तक चलता रहा। साथमें देवासके गायनाचार्य हरिहर बुआ कोपरगांवकरजी तथा उस्ताद निसार हुसैन खां साहब से गायन शास्त्रकाभी आपको बहुत कुछ लाभ हुआ। समय मिलतेही तबला और मृदंगपर रियाज़ करना आपका नित्यक्रमथा। इस तरह सर्वांगीण तपस्या पंद्रह साल करनेके बाद आप संगीतमें पारंगत होगये। गायनके साथ, हार्मोनियम, बांसुरी, शहनाई, जलतरंग सितार, आदि वाद्यभी आप तैयारीसे बजातेथे; परंतु मृदंग और तबलावादन पर आपका अलौकिक प्रभुत्व हो गया था।

आपकी गुरुपरंपरा बहुतही उज्वल और उच्च श्रेणी की है। एकदिन आपने अपने गुरू, श्रीसखारामबुआ आगलेजी (मृदंगवादनाचार्य स्टेटइन्दौर) से प्रार्थनाकी कि "मुझे अपनी गुरुपरंपरा सुनानेकी कृपा करिये।" तब श्रीसखारामजीने कहा "मेरी उम्रसात महिनेकी थी उसवक्त माताका स्वर्गवास होगया, और पिताजीने उसही अरसेमें संन्यास आश्रम ग्रहण करलिया, तब मेरी नानी (माताकीमां) ने मेरा पालन पोषण कियाथा। जब मेरी उम्रदस वर्षकी हुई तब मेरे मामा स्व. कृष्णराव कोपरगांवकरने अपने साथ ले जाकर मृदंगवादन सम्राट श्रीनानाहब पानसे जीके चरणोंमें रख दिया। बाद थोडेही दिनोंमें मेरी तालीम प्रारंभ हुई। मेरे गुरुबंधु श्रीबालासाहब पानसे मेरे समवयस्क होनेके कारण हम दोनोंको शिक्षा (तालीम) एक साथ मिलने लगी। श्री गुरुपुत्रके साथ शिक्षण मिलनेसे मुझे बहुत विद्या लाभ हुवा; क्योंकि श्रीगुरुवरने उनके पुत्रको जो विद्यादी वही मुझको भी मिली। इसमें संदेह नहीं कि हरएकको ऐसा सुयोग प्राप्त नहीं होता। इस प्रकार मेरा मृदंग वादनाध्ययन सोलह वर्षतक हुआ। "गुरुशुश्रूषया विद्या" इस वाक्यानुसार मैंने तन मनसे गुरुजीके घरकी सेवाकी। श्रीगुरुवर नाना साहब पानसे मु. बाई ज़िला सतारा के रहने वाले थे। श्रीनानासाहब बचपनसे घरमेंही मृदंगाभ्यास करते थे फिर कुछसमय प. मनाजी कोडितकर (पूना) के पास मृदंगाभ्यासकिया। फिर वहांसे बनारस गये वहां सुप्रसिद्ध नामांकित श्री ज्योतिसिंहजी वाजू के पास कुछ समय रहे। वहांसे श्रीमृदंगवादक सम्राट् संत माधवस्वामीजीकी शोधमें इलाहाबाद (प्रयाग) गये, वहां शोध करनेसे मालूम हुआ कि पांच माईल दूर त्रिवेणी संगमपर संत श्रीमाधव स्वामीजीकी कुटियाहै। फिर वहां जाकर श्रीस्वामीजीको नमनकरके खडे रहे तब श्रीस्वामीजीने कहा "हे नारायण तूमेरेपास आया, क्या इच्छा है?" श्रीनानासाहबने कहा, "भगवन्! आप जानतेहीहैं"। तदनंतर श्रीस्वामीजीने हास्य वदन करके रहनेकी अनुमतिदी और गुरुवारसे मृदंग शिक्षण शास्त्रोक्त पद्धतिसे मिलने लगा। इसप्रकार श्रीनानासाहबने, श्रीसंत माधवस्वामीजीके पास एक तप (बारह) वर्ष पर्यंत मृदंग शिक्षण लिया। बारह वर्ष बाद एक दिन स्वामीजीने कहा कि "हेनारायण,! कल उदईक मैं जलसमाधि लेनेवाला हूँ"। वहदिन चैत्रशुक्ल नवमीका था। समाधि लेनेके पहिले दिन स्वामीजीने हस्त लिखित ग्रंथ और मृदंग प्रसाद रूपमें श्री- नानासाहबजीको दिया और आशीर्वाद दियाकि "बेटा नाना तूसारे जगतमें मृदंगवादनमें विजयी होगा"। फिर चैत्रशुक्ल नवमीकेदिन संत श्री. माधवस्वामीजीने जलसमाधिली। श्री स्वामीजीके वियोगसे नाना साहबजीको अत्यंत दुःखहुआ। ऐसीस्थितिमें कुछदिन वहांरहकर नाना साहबजी दतिया स्टेटमें आये, वहां उस्ताद कुदौसिंहजीका मृदंग सुना। मृदंगवादनमें श्री कुदौसिंहजी बहुत तैयारथे। उनका मृदंग वादन सुनकर बडा आनंद हुआ। वहांसे और अनेक स्थानोंपर फिरते नामांकित गुणीजनों को सुनते इन्दौर स्टेटमें आये। वहां सर तुकोजीराव होलकर (पहिले) के दरबारमें श्री नानासाहबजीका मृदंगवादन हुआ। उनके मृदंग वादन से होलकर सरकार बहुत खुशहुए और उत्तम मानसन्मान के साथ अपने दरबारमें स्थाईरूपसे रख लिया। वहां रहते हुए श्री नानासाहबजीने उदारतापूर्वक विद्या दान दिया। ८५ वर्षकी उम्रहोनेपर मार्गशीर्ष वदि १४ चतुर्दशीको श्री नानाजीसाहब पानसेजीका स्वर्गवास हुआ।"

श्री पानसेजीके सुपुत्र श्री बालासाहब पानसेजीथे और दौहित्र (पुत्रीकेपुत्र) श्री. शंकर भैय्याथे। उपरोक्त प्रकारसे श्रीसखारामजीने गुरूपरंपराका वर्णन किया था।

श्रीपानसेजीका शिष्यवर्ग नीचे लिखे मुताबिकथा:-

स्वर्गस्थ श्री वामन रावजी चांदवडकर, स्टेट हैद्राबाद

स्व. श्री सखारामजी बुआ आगले, स्टेट इन्दौर

" ,, बलवंतरावजी वैद्य जमखिंडी
" ,, परशुराम बुआ बर्वे बम्बई
" ,, केशव बुआ दीक्षित अहमदनगर
" ,, जगन्नाथ बुआ कडेकर सं. माणिकप्रभु
" ,, बलवंतरावजी काले वाघलीकर
" ,, शंकरभैया पूना
" ,, शंकरराव आलकुटकर बम्बई

इत्यादि सैकड़ों शिष्य हुवा थे

उपरलिखे अनुसार श्रीगोविंद रावजीने श्रीसखाराम जैसे मृदंगवादन विद्या संपादन करके गायनाचार्य पं. विष्णु दिगंबरजी पलुस्कर के साथ अखिल भारत वर्ष में किया। उस अरसेमें देशदेशकी ताल–पद्धतिका सूक्ष्म अवलोकनकरनेसे आपको अपार अनुभव प्राप्त हुवा। एवं देशदेशके संगीत रसिकों अपने मृदंग तबलावादनका लाभ दिया। इसके पश्चात् श्री. विष्णु दिगंबरजीके गांधर्व महाविद्यालयमें बारह साल तक अध्यापकका काम किया। उस अरसेमें ही श्री. पंडितजीकी प्रेरणा से तालग्रंथ लेखनमें प्रवृत्त हुए थे। "आज कलके ज़मानेमें गुरु परंपरा टिकनेकी शाश्वति न होने कारण सर्वसामान्य संगीत रसिक और विद्यार्थियोंको मार्गदर्शनके लिए आपका ज्ञान पुस्तकरूपमें स्थाई करना चाहिये" इस प्रकारकी श्री. पं. विष्णुदिगबरजीकी प्रेरणा, तालग्रंथ लेखनकार्यमें आपको मार्गदर्शक हुई। तदनुसार आपने तालशास्त्रकी शिक्षण प्रणालीको अत्यंत सरल लेखनपद्धति (नोटेशन) में "मृदंग तबला वादन सुबोध" नामक ग्रंथके तीन विभाग (जिसका चौथा भाग शीघ्रही प्रकाशित होगा) और "भारतीय ताल मंजरी" पुस्तिका प्रकाशित करके संगीत वाङ्मयमें अमूल्य वृद्धि की है। इन पुस्तकोंकी विवेचन पद्धति सरल और संपूर्ण शास्त्रशुद्ध है। इन पुस्तकोंका अवलोकन करके लखनऊ मॉरिस म्युजिक कॉलजके प्रिन्सिपल श्री रातांजनकर, गवालियर के संगीत महाविद्यालयके प्रिन्सिपल श्री कृष्णरावजी पंडित विख्यात गायनाचार्य श्री. ओंकारनाथ पंडित एवं बडोदा सरकारी संगीत विद्यालयके प्रिन्सिपल श्री. डॉ. हीरजीभाईने मुक्तकंठसे प्रशंसाकरके अपना संतोष प्रगट किया है। सन् १९२६ में मृदंग तबलावादन सुबोधका प्रथम भाग सत्याग्रहाश्रम साबरमती अहमदाबाद में छापायागया तब एक पात्रिका महात्मागांधीजीको सेवामें समर्पित की गईथी। उसका निरीक्षण करके गांधीजीने कहाथाकि "मृदंगवादन कला में समाधिका अलौकिक सामर्थ्य है।"

सन् १९२१ में राष्ट्रीय महासभाका ३६ वां अधिवेशन अहमदाबाद मेंहुआथा। उसके साथही संगीत सभाका भी अधिवेशन हुआथा। उसवक्त आपका मृदंग वादन का खास कार्यक्रम रखागयाथा। महात्मा गांधीजी, सरदारवल्लभभाई पटेल (सभापति) आदि बडे-बडे देशके नेता एवं, पंडित श्री विष्णु दिगंबरजी पलुस्कर, पं. कृष्णरावजी (ग्वालियर) प्रसिद्धबीनकार लतीफ खांसाहब (इन्दौर), वगैरह विद्वानोंकेसमक्ष सरदार वल्लभभाई पटेलने आपको मृंदगाचार्य" की पदवी समर्पित कीथी। कलकत्ता, मद्रास, नागपूर, पूना की संगीत परिषदों में आपको परिषदकी तरफसे सुवर्ण पदक समर्पित हुआथा एवं संगीतज्ञ विद्वत्समाजमें गौरव प्राप्त हुआथा। इसहीप्रकार, गवालियर, इन्दौर, बडोदा, अहमदाबाद, बंबई, पूना, मैसूर, हैद्राबाद (दक्षिण) बुरहानपूर, वगैरह प्रसिद्ध नगरोंकी जनताकी तरफसेभी आपको उत्तम सन्मान प्राप्त हुआहैं और इन्दौरमें श्रीमंत सर तुकोजीराव होलकर के यहां "दरबारी मृदंगवादक" कई सालतक आप रहचुके हैं। विशेषमें जगप्रसिद्ध नृत्यकला सम्राट् श्री, उदयशंकरजीने मद्राससे जो कल्पना फिल्म निकालीहै, उसमें आपका प्रमुखत: मृदंगवादनका कार्यक्रम रखाहैं। विलायतमें होनेवाले आंतर–राष्ट्रीय संगीत अधिवेशनकी तरफसे आपको आमंत्रण आया है; परंतु आजकल आपका स्वास्थ्य वृद्धावस्थाके कारण अनुकूल न होनेसे युरोपमें जानेका विचार आपको स्थगित करना पड़ाहैं।

हालमें आप बंबई रेडियो स्टेशनसे वक्त–बक्तपर मृदंगवादन कलाका संगीतरसिक श्रोताओंको लाभ पहुचाते। रहतेहैं हिज़मास्टर्स वाईसमें आपकी मृदंगवादनकी रिकार्ड बनी हुईहै, जिसमें चौताल, धमार औरझपताल हैं।

आजकल जगप्रसिद्ध सेठ श्रीयुत अंबालाल साराभाईके यहां अहमदाबाद में आप अध्यापक हैं। वहां श्रीमान् सेठ साहबके विद्यानुरागी पुत्र–पुत्रियोंको संगीतका शिक्षण देनेमें और तालशास्त्र संशोधनमें आपका जीवन आनंदपूर्वक व्यतीत होरहाहै। वहां इन

के सान्निध्यमें श्री. गीताबाई व साराभाई ने मृदंग-वादन में अच्छी प्रवीणता प्राप्तकी है, और आगे ज्यादह तालीम लेरही हैं। विशेषमें श्री. गीता बहिनने गरीब विद्यार्थियोंके लिये मृदंग-तबला शिक्षा की योजना भी करदीहै।

आप धुरंधर मृदंगाचार्य, संगीत-विद्यामें पारंगत होते हुए अत्यंन्त विनयी और निःस्वार्थी हैं। कुछ वर्ष पूर्व की घटना है कि जगद्गुरु श्रीशंकराचार्य, डॉ. कुर्तकोटि बुरहानपुरमें श्रीमंत सर्दार भुस्कुटे साहबके यहां पधारे थे। उस अवसरपर खास उत्तम गायक वादकोंका कार्यक्रम रखा गाया था। श्रीशंकराचार्यजी ने आपसे पूछाकि आप सवारी ताल बजासकतेहैं? (यह ताल १५ मात्राकाहै और बजानेमें अत्यंत कठिन होताहै) आपने कहा, "मैं बजाताहूं; किन्तु साथमें ताल देने वाला कोई होना चाहिये। जब श्रीने कहा कि हम ताल देंगे। श्रीने ताल दिया और आपने सवारी ताल कलात्मक तैयारीसे बजाया। आचार्य अत्यंत प्रसन्न हुए और पदवी प्रदान करनेकी इच्छा व्यक्त की; किन्तु आपने आचार्य के आशीर्वाद को ही अभिलाषा व्यक्त की।

इसप्रकार की अनेक निःस्वार्थ घटनायें आपकी जिंदगीमें हुई हैं।

हालमें आपकी उम्र ६८ सालकी होते हुएभी शारीरिक प्रकृति और मानसिक उत्साह नवजवानों को आदर्श रूप हैं। आपके दो पुत्र हैं,वे भी संगीत-कला में निपुण हैं। आजकल आपका कौटुंबिक जीवन, सुख और संतोषसे प्रसन्न हैं। आप जैसे अनुभवी, वयोवृद्ध ज्ञानवृद्ध, तपोवृद्ध, विद्वान्, संस्कारी कलावंत की उपस्थितिमें अधिकसे अधिक संगीत विद्या का प्रचार हो ऐसी हार्दिक आशा आपके परिचयमें आनेवाले हरकोई व्यक्तिके हृदयसे स्वाभाविकही व्यक्त होती है। परमपिता परमात्माआपको दीर्घ आयु और आरोग्य प्रदानकरे।

मंडल-वृत्त व अन्य बातें

'श्रीराम संगीत विद्यालय' (सरकार-मान्य संस्था) शोलापुर 'गांधर्व-महाविद्यालय' की 'संगीत-परिक्षा' का केंद्र होने से आस-पास के गाँवों के विद्यार्थी वहाँ परीक्षा दे सकेंगे। संचालकः— प्रो. रामचंद्र भिकाजी सोमण, पता— श्रीराम भुवन, घ. नं. ८९, सिद्धेश्वर पेठ, शोलापुर।

० ० ०

बम्बई के प्रो. देवधर के विद्यालय में गुरुवार दिनांक २२ जुलाई १९४८ की रात्रि को पं भीष्मदेव वेदी का सुश्राव्य गायन हुआ। पं. वेदी को भिन्न-भिन्न अनेकों गुरुओं से विद्या प्राप्त हुई है। अतः गायकी में विविधरंग दिखाई दिया। उनकी तैयारी अच्छी है। तबले के साथ के लिये श्री. कामूराव मंगेशकर व हार्मोनियम के साथ के लिये श्री. मधुकर पेडनेकर थे, जो विशेष रंग के कारण हुए। पं. वेदीजीने अनेकों अपरिचित राग गाकर श्रोताओं का बड़ा मनोरंजन किया। उस्ताद विलायत हुसैन, खाँ साहब अजमत हुसैन, प्रि. बाळकृष्णबुवा कपिलेश्वरी, इत्यादि ६०-७० 'संगीत-व्यवसायी' लोग उपस्थित थे।

० ० ०

गांधर्व- महाविद्यालय- मन्डळ की ओर से सन्गीत-परीक्षा बम्बई, सातारा, कराड, नासिक, मन मॉंड, के केंद्रोंपर दि. ७-८ अगस्त को होंगी।

० ० ०

गा. कै. पं. विष्णु दिगंबर पलुस्कर
की
१७ वी पुण्यातिथि

ऑल-इंडिया-रेडियो, बम्बई-केंद्र-दिनांक ११ आगस्त १९४८ की रात्रि को इस केन्द्र पर पुण्यतिथी--निमित्त विशेष कार्यक्रम रखागया है।

° ° °

प्रो. देवधर के विद्यालय की ओरसे पुण्यतिथि **दि. १८,१९,२०,२१ आगस्त** को संस्था के दीवानखाने में मनाई जायगी और बम्बई के तमाम घरानों के कलाकारोंने आमंत्रण स्वीकार कर लिया है, अतः कुछ कलाकार स्वयंस्फूर्ति-वश बाहर से भी आने वाले हैं। नृत्य का कार्यक्रम **पं. सुन्दर प्रसादजी** की विशेष देखरेख में होने वाला है। कार्यक्रम में भाग लेने वाले कलाकारों की संख्या १२५ से भी अधिक तो अभी पहुँच चुकी है।

° ° °

गांधर्व-महा विद्यालय मंडल व **व्यास-संगीतविद्यालय, इन** संस्थाओं की ओरसे पुण्य तिथि **दि. २१-२२ अगस्त** को **दादर** में मनाई जायगी। **प्रि. शंकरराव व्यास** तथा दादर-विभाग के कलाकार कार्यक्रम बनाने में तल्लीन हैं। दादर तथा उपनगर के सारे गवैये-बजैये इस स्थान पर एक होकर यह पुण्यतिथि मनाते हैं।

° ° °

अॅकेडेमी ऑफ इन्डियन-म्यूज़िकः-प्रो. नवरंग की इस संस्था की ओरसे **दि. २८-२९ अगस्त** को गाने-बजाने के भरपूर अति मनोरन्जक कार्यक्रम द्वारा पुण्यातिथि मनाई जायगी

° ° °

प. ओंकारनाथजी ठाकुर सूरत में गु. विष्णु दिगंबर की पुण्यतिथि दिनांक १९-२०-२१ अगस्त को मनायेंगे। कार्य-क्रम में भाग लेने के लिये बाहर के कलाकारों को भी निमंत्रण भेजे गये हैं।

° ° °

(" भिन्न-भिन्न स्थानों की संस्थाओं के कार्य-क्रम व नवीन उपक्रम, इत्यादि की सूचना इस विषय के अन्तर्गत प्रकाशित की जा सकती है। हर मासके दिनांक २० से पहिले आये हुए समाचार आगामी मास के दिनांक १ के अन्क में प्रकाशित होंगे—"

° ° °

(संपादक 'विहार')

° ° °

के साक्षिध्यमें **श्री. गीताबाई न साराभाई** ने मृदंग-वादन म अच्छी प्रवीणता प्राप्तकी है, और आगे ज्यादह तालीम लेरही हैं। विशेषमें श्री. गीता बहिनने गरीब विद्यार्थीयोंके लिये मृदंग-तबला शिक्षा की योजना भी करदीहै।

आप धुरंधर मृदंगाचार्य, संगीत-विद्यामें पारंगत होते हुए अत्यन्त विनयी और निःस्वार्थी हैं। कुछ वर्ष पूर्व की घटना है कि जगद्गुरु **श्रीशंकराचार्य, डॉ. कुर्तकोटि** बुरहानपुरमें श्रीमंत सर्दार भुस्कुटे साहबके यहां पधारे थे। उस अवसरपर खास उत्तम गायक वादकोंका कार्यक्रम रखा गया था। श्रीशंकराचार्यजी ने आपसे पूछाकि आप **सवारी** ताल बजासकतेहैं? (यह ताल १५ मात्राकाहै और बजानेमें अत्यंत कठिन होताहै) आपने कहा, "मैं बजाताहूं; किन्तु साथमें ताल देने वाला कोई होना चाहिये। जब श्रीने कहा कि हम ताल देंगे। श्रीने ताल दिया और आपने सवारी ताल कलात्मक तैयारीसे बजाया! आचार्य अत्यत प्रसन्न हुए और पदवी प्रदान करनेकी इच्छा व्यक्त की; किन्तु आपने आचार्य के आशीर्वाद की ही अभि लाषा व्यक्त की।

इसप्रकार की अनेक निःस्वार्थ घटनायें आपकी ज़िंदगीमें हुई हैं।

हालमें आपकी उम्र ६८ सालकी होते हुएभी शारीरिक प्रकृति और मानसिक उत्साह नवजवानों को आदर्श रूप हैं। आपके दो पुत्र हैं,वे भी संगीत-कला में निपुण हैं। आजकल आपका कौटुंबिक जीवन, सुख और संतोषसे प्रसन्न हैं। आप जैसे अनुभवी, वयोवृद्ध ज्ञानवृद्ध, तपोवृद्ध, विद्वान, संस्कारी कलावंत की उपस्थितिमें अधिकसे अधिक संगीत विद्या का प्रचार हो ऐसी हार्दिक आशा आपके परिचयमें आनेवाले हरकोई व्यक्तिके ह्रदयसे स्वाभाविकही व्यक्त होती है। परमपिता परमात्माआपको दीर्घ आयु और आरोग्य प्रदानकरे।

मंडल-वृत्त व अन्य बातें

'श्रीराम संगीत विद्यालय' (सरकार-मान्य संस्था) शोलापुर 'गांधर्व-महाविद्यालय' की 'संगीत-परिक्षा' का केंद्र होने से आस-पास के गाँवों के विद्यार्थी वहाँ परीक्षा दे सकेंगे। **संचालकः— प्रो. रामचंद्र भिकाजी सोमण, पता—** श्रीराम भुवन, घ. नं. ८९, सिद्धेश्वर पेठ, शोलापुर।

० ० ०

बम्बई के प्रो. देवधर के विद्यालय में गुरुवार दिनांक २२ जुलाई १९४८ की रात्रि कों पं **भीष्मदेव वेदी** का सुश्राव्य गायन हुआ। पं. वेदी को भिन्न-भिन्न अनेकों गुरुओं से विद्या प्राप्त हुई है। अतः गायकी में विविधरंग दिखाई दिया। उनकी तैयारी अच्छी है। तबले के साथ के लिये श्री. **कामुराव मंगेशकर** व हार्मोनियम के साथ के लिये **श्री. मधुकर पेडणेकर** थे, जो विशेष रंग के कारण हुए। पं. वेदीजीने अनेकों अपरिचित राग गाकर श्रोताओं का बड़ा मनोरंजन किया। **उस्ताद विलायत हुसैन, खां साहब अजमत हुसैन, प्रि. बाळकृष्णबुवा कपिलेश्वरी,** इत्यादि ६०-७० 'संगीत-व्यवसायी' लोग उपस्थित थे।

० ० ०

गांधर्व- महाविद्यालय- मन्डळ की ओर से सन्गीत-परीक्षा बम्बई, सातारा, कराड, नासिक, मन मॉड, के केंद्रोपर दि. ७-८ अगस्त को होगी।

० ० ०

गा. कै. पं. विष्णु दिगंबर पलुस्कर
की
१७ वी पुण्यातिथि

ऑल-इंडिया-रेडियो, बम्बई-केंद्र-दिनांक २१ आगस्त १९४८ की रात्रि को इस केन्द्र पर पुण्यतिथी-निमित्त विशेष कार्य-क्रम रखागया है।

० ० ०

प्रो. देवधर के विद्यालय की ओरसे पुण्यतिथि **दि. १८,१९,२०,२१ आगस्त** को संस्था के दीवानखाने में मनाई जायगी और बम्बई के तमाम घरानों के कलाकारोंने आमंत्रण स्वीकार कर लिया है, अतः कुछ कलाकार स्वयंस्फूर्ति-वश बाहर से भी आने वाले हैं। नृत्य का कार्यक्रम **पं. सुन्दर प्रसादजी** की विशेष देखरेख में होने वाला है। कार्यक्रम में भाग लेने वाले कलाकारों की संख्या १२५ से भी अधिक तो अभी पहुँच चुकी है।

० ० ०

गांधर्व-महा विद्यालय मंडल व व्यास-संगीतविद्यालय, इन संस्थाओं की ओरसे पुण्य तिथि दि. २१-२२ अगस्त को दादर में मनाई जायगी ! प्रि. शंकरराव व्यास तथा दादर-विभाग के कलाकार कार्यक्रम बनाने में तल्लीन हैं। दादर तथा वपनगर के सारे गवैये-बजैये इस स्थान पर एक होकर यह पुण्यतिथि मनाते हैं।

० ० ०

अॅकेडेमी ऑफ इन्डियन-म्यूज़िकः-प्रो. नवरंग की इस संस्था की ओरसे दि. २८-२९ **अगस्त** को गाने-बजाने के भरपूर अति मनोरन्जक कार्यक्रम द्वारा पुण्यातिथि मनाई जायगी

० ० ०

प. ओंकारनाथजी ठाकुर सूरत में गु. विष्णु दिगंबर की पुण्यतिथि दिनांक १९-२०-२१ अगस्त को मनायेंगे। कार्य-क्रम में भाग लेने के लिये बाहर के कलाकारों को भी निमंत्रण भेजे गये हैं।

० ० ०

(" भिन्न-भिन्न स्थानों की संस्थाओं के कार्य-क्रम व नवीन क्रमक्रम, इत्यादि की सूचना इस विषय के अन्तर्गत प्रकाशित की जा सकती है। हर मासके दिनांक २० से पहिले आये हुए समाचार आगामी मास के दिनांक १ के अन्क में प्रकाशित होंगे—")

० ० ०

(संपादक 'विहार')

'पत्र–व्यवहार'

श्रीयुत एडीटर साहब !

मने पहिली जून का 'संगीत–विहार' का अंक देखा। यह अच्छी बात है कि उसके 'उत्तर–हिन्दुस्तानी–संगीत' लेख में मि. मुकुंद बादशाह बी. ए. और साधुराम योग बी. ए. ने प्राचीन–घरानों का हाल लिखा है; परन्तु लेख में बहुत सी बातें गलत लिखी हैं। मेरे गुरू, और मामा, खां साहब अल्ताफ़ हुसैन खां साहब रामपुर घरानेसे नहीं हैं; बल्कि वे खुर्जे खानदान से हैं। उनके पिता, जहूर खां साहब रामदासजी, संस्कृत और हिन्दी के बहुत बडे पंडित, गायक और नायक थे। उनकी हजारों ध्रुपद अस्थाई और ख्याल हिन्दुस्तान भरमें गाई जाती हैं। इस घराने के सिवाय, मुझे मेरे काका, मरहूम (स्वर्गीय) अलादिया खां से भी विद्या मिली है। इनका और मेरा कुटुम्ब एक ही हैं। श्री. रानडे जीने इनके विषय में १ मार्च के अंकमें बहुत कुछ लिखा है। किसी घराने का हाल लिखने से पहिले मालूमात करलेने से लोगोंके सामने सच्चे हालात आ सकते हैं। उन्होंने दिल्ली घराने के मशहूर गायक खां साहब तान रस खां व उनके पुत्र, मरहूम उमराव खां साहब के घराने साथ खादिम हुसैन खां, व अनवर हुसैन खां, व लताफत हुसैन खांको मिलाकर बडी गल्ती की है। ये भाई अत्रोलीके रहने वाले हैं और इन्हें आग्रे घराने की विद्या मिली है। इन्होंने आग्रे–घराने वाले मरहूम कल्याण खां साहब और अपने सगे मामू विलायत हुसैन खांसाहब से सीखा है। मुझे मालूम हुवा है कि मुकुंद बादशाह मेरे भाई, अनवर हुसैन का शागिर्द है। इस संबंध में मैं उनको सूचना देता हूँ कि किसी घराने का हाल लिखने से पहले अच्छी तरह मालूम कर लेना चाहिये। मुझे आश्चर्य होता है कि यह संबंध होते हुए इतनी गलत बातें कैसे लिखदी गई। एक बात और बताता हूं, आग्रा, दिल्ली, अत्रोली व खुर्जे के घराने विद्या के हिसाब से अलग–अलग हैं, परन्तु सबका गहरा सम्बंधी नता है। विलायत खां साहब मेरे बहनोई और खादिम हुसैन मेरे साले हैं। मरहूम अलादिया खांसाहब के छोटे बेटे मुर्जी खां साहब का कोई भी ज़िक्र नहीं किया है। यह एक अच्छे गायक हैं और इनमें पिताजी की झलक मौजूद है। बहुत से लोगों को इनसे विद्या मिल रही है। अगर जरूरी हुआ तो मैं पुराने घरानों का हाल लिखता रहूंगा।

अज़मत हुसैन खां (मेकश) अत्रोलीवाले

राग खमाज, टप्पा.

(लेखकः—त्र्यंबक वैजनाथ पैठणकर)

मांडिते कदरनुजा आनजा सोनामिया। बेपरवाई नलेजा अनजा सोना मिया। मांडि०॥ गोई मक्कन् नजर न गोई मक्कन गला सांडे नहीं अनजा सोना०॥

ग ग गमपम गपमगरेग ग म पधनी ध प
मां ऽडि तेऽऽऽ ऽऽऽऽऽऽ क द रऽऽ मु जा
१३ १

म ग प गमपध नीधपध प गमपनी. नीधपम गरे सा
अ न जा सोऽऽऽ ऽऽऽऽ ना मिऽऽऽ याऽऽऽऽऽऽ
५ +

गमपनी नी सां नी सां प नी
बेऽपर वा ई न ले जा आ
१३

नीसानीध पध प ग म ध प प ध नी ध ध नी सा नी ध प
आऽऽऽ नऽ जा सोऽ ऽ ऽ ना ऽ ऽ ऽ मि ऽ ऽ या ऽ ऽ
१ ५

म ग रे सा ग म प ध नी सा नी ध प ध प
ऽऽऽऽ ऽऽऽऽऽऽ ऽऽऽऽऽ
+

अंतरा—ग म प ध नी सा ध नी सां सां नी सां नी सा नी ध
गोऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ई ऽ म क्कं न ज र न गों ऽ
+ १३

प ध सां ऽ नी सा नी सां प गपधनी पधनीसां नी सां
ऽ ऽ ई ऽ म क्कं ग ला ऽ सांऽऽऽ डेऽऽऽ न ही
१ ५ +

संगीत कला विहार

वर्ष–प्रथम] वार्षिक–शुल्क { ६–०–० वी. पी. विना / ६–६–० वी पी. सहित [अंक १० वां

★ अनुक्रमणिका ★

मुख–पृष्ठ चित्र... ... प. विष्णु दिगंबर (आयु ५५ वर्ष)

१ कै. पं. विष्णु दिगंबर पलुस्कर ... प्री. न. र. पाठक
२) गायन–सम्राज्ञी बाई केसरबाई ... ... श्री. मारुलकर
३) गवैयांच्या गोष्टी ... ...
४) पत्रव्यवहार ... ...
५) श्री बच्चू मल्लिक तथा उनकी होली ... श्री. भरतजी व्यास
६) पं. विष्णु नारायण भातखण्डे ... श्री. बी. आर. देवधर
७) सुप्रसिद्ध चित्रपट–संगीत दिग्दर्शक के कुछ विचार ... श्री. रा. कि. भटनागर
८) शिवमत हनुमन् मत ... ... कुं. सुरेंद्र सिंहजी
९) नोटेशन ... ...

—एजेंटों की आवश्यकता है—

नियमों के लिये पत्र–व्यवहार करें।

निम्नलिखित पते पर पत्र–व्यवहार कीजिये।

परिक्षा और दूसरा काम

प्रो. व. य. राजोपाध्ये,
१४८, हिंदु कॉलनी,
दादर.

मासिक–पत्रिका

प्रो. बी. आर. देवधर,
स्कूल ऑफ इंडियन म्युजिक,
फ्रेंच ब्रिज गिरगाँव,
बम्बई. ४

मिरज के मशहूर फरीद साहब सितार–मेकर के नाती का तंतू–वाद्यों का कारखाना—

इस कारख़ाने मे सितार, तंबूरा, बीन, सुर–बहार, दिलरुबा वगैरह साज़ सुरेल और खूबसूरत बनते हैं; इसीलिये संगीत–तज्ञों की तरफ से मैडिल और सर्टीफिकेट मिले हैं। ज्यादह मालूमात के लिये लिखे:—

पत्ता—

प्रो. अब्दुल करीम इस्माईल साहब ॲन्ड सन्स

सितार–मेकर, शनिवार–पेठ; मिरज।

प्रो. बी. आर. देवधर

प्रकाशन

रागबोध	भाग	१	......	मू.	१५	आने
,,	,,	,,	२	......	,,	१ रुपया
,,	,,	,,	३	......	,,	१ रु. ४ आ.

(वी. पी खर्च अलग)

ये पुस्तकें समस्त विद्यार्थियों के लिये अत्यंत उपयोगी हैं। प्रत्येक भाग में १० राग प्रत्येक राग, की ३ खानदानी चीज़ें, व एक गाने पर आलाप-तानें तथा बोल–तानें दी गई हैं।

मिलने का पता:—

स्कूल ऑफ इन्डियन म्यूजिक रॉयल ऑपेरा हाऊस के पास बम्बई ४.

विज्ञापन का शुल्क

कव्हर पेज नं. ४	रु. १२५–०–०
,, नं २ और ३	रु. १००–०–०
संपूर्ण पृष्ठ	रू. ६०–०–०
अर्ध ,,	रू. ३०–०–०
पाव ,,	रू. १५–०–०
अर्धपाव पृष्ठ	रू. ७–८–०

प्रतिसमय

मुद्रित पृष्ठ ६" × ८" दो कॉलममें

कव्हर–पेज विज्ञापन के लिए व्यवस्थापक को लिखिये विज्ञापन हमारे पास प्रति मास की १५ तारीख़ के पहिले पहुँचना चाहिये।

व्यवस्थापकः—संगीत कला विहार कार्यालय
स्कूल ऑफ इंडिअन म्यूज़िक,
फ्रेंच– ब्रिज–गिरगाँव बम्बई

लेखकों को सूचनाएँ

१ लेख कागज के एकही ओर सुवाच्य अक्षरोंमें, दूर-दूर, केवल ½ फुल–स्केप साईज पर लिखकर भेजिये।

२– लेख की पसंदगी या नापसंदगी का जवाब पंदरह दिनके बाद लेखकों को मिल सकेगा।

३– पसंद किए हुए लेख यथावकाश प्रकाशित किये जायेंगे।

४ नापसंद लेख वापस मंगानेके लिये पोस्ट–टिकिट भेजिये।

संपादक
प्रो. बी. आर. देवधर
सहसंपादक
पं. विनयचन्द्रजी मौद्गल्य
प्रो. प्राणलाल शाह
व्यवस्थापक
प्रो. वसंतराव राजोपाध्ये

★ संपादकीय ★

समस्त देश के लिये अगस्त एक अत्यन्त महत्त्वशाली मास बन बैठा है। गत वर्ष ही दि. १५ अगस्त के दिन भारत स्वतंत्र हुआ, तथा इस वर्ष भी वह चिर-स्मरणीय दिवस बड़ी धूम-धाम से देशभर में मनाया गया।

शताब्दियों के पश्चात् मिला हुआ यह स्वातंत्र्य राजकीय तो है ही; किन्तु, संस्कृतिक भी अवश्य है। विदेशी-शासन-काल में कला को यथोचित सरकारी पाठ-बल न मिला। चित्र तथा शिल्प कलाओं को तो कुछ मिल भी गया; परन्तु अभाग्य-वश संगीत-कला को लेष-मात्र भी नहीं। स्वतंत्र-भारत के नवीन-शासन-सूत्र को आरंभ हुए एक वर्ष भी पूरा न हो पाया था कि इसी अल्प-काल में मध्यवर्ती सरकार के शिक्षा-मंत्री मौलाना आज़ाद ने एक घोषणा द्वारा यह प्रकाशित किया कि संगीत-कला के निमित्त व्यय करने के लिये एक विपुल धन-राशि सरकार ने रख छोड़ी है। अतः हम मध्यवर्ती सरकार व विशेषतः मौ. आज़ाद का हार्दिक-अभिनन्दन करते हैं।

अब केवल एक बात तनिक विचित्र सी है, तथा वह यह कि इतना बड़ा भारत-वर्ष और उसके लिये केवल लखनऊ एवं मद्रास, दो ही स्थान संगीत-शिक्षण के लिये सरकार को पसन्द आये। जिस बंबई प्रान्त के घर-घर में संगीत के प्रति प्रगाढ़ प्रेम विद्यमान है, जहां प्राचीन काल से अनेकों संगीत-विभूतियों के घराने क़ायम हैं, जहां पं विष्णु दिगंबर पलुस्कर व पं. विष्णु नारायण भातखंडे ने अपने समस्त अद्वितीय एवं महान कार्य किये और जिस बंबई में मरहूम ख़ाँ साहब अल्लादिया ख़ां के जयपुर घराने, उस्ताद विलायत हुसैन के आग्रा घराने, मरहूम ख़ां साहब अब्दुल करीम ख़ां के किराना घराने, कै. पं. बालकृष्ण बुआ के ग्वालियर घराने व अन्य अनेकों घरानों के गुणी लोग स्थायिक हुए हैं, वहाँ के लाखों बालकों के संगीत शिक्षण का क्या प्रबंध है। ऐसी बम्बई में मध्यवर्ती-संस्था क्यों नहीं है? अस्तु, बम्बई में एक संस्था अवश्य ही होना चाहिये तथा इसके लिये एक होकर सरकार से माँग करना बम्बई के कलाकारों का कर्तव्य है।

कै. विष्णु दिगंबर पलुस्कर की पुण्य-तिथिः—

अगस्त मास में दि. २१, गा. कै. गु. पं. विष्णु दिगंबर पलुस्कर का पुण्यतिथि-दिवस होता है। जगह-जगह गायन वादन के जल्से रख कर पुण्यतिथि बड़े ठाट-बाट से मनाई जाती है। बम्बई के रसिक-गण तो अगस्त के आरंभ से ही जल्से कब और कहाँ होंगे, इस की पूछ ताछ शुरू कर देते हैं। बम्बई के प्रायः समस्त घरानों के नामवंत व गुणी कलाकार, संगीत शिक्षक व नवीन भावी गवैये, ये सब इस जल्से में बड़े आनंद भाग लेते हैं, तथा समस्त वातावरण लगभग बड़ा हिला-जुला प्रेममय रहता है, यह एक विशेष बात है। उस समय भिन्न-भिन्न घरानों का भेदभाव व पक्ष-भेद की तनिक भी वास तक कहीं नहीं आती। एक दूसरे का गाना-बजाना सुनना, व सबही गाने का मज़ा लूटना व सबको लुटाना, यही सबका उद्देश रहता है।

गायनाचार्य कै. पं. विष्णु दिगंबर
व
उनके कार्य

(लेखक:—प्रा. नरहर र. पाठक......बम्बई)

प्रा. नरहरपंत पाठक सन् १९०५ से सन् १९०७ तक लाहौर में पन्डित जी के पास गाना सीखने के लिये रहे थे, यह बात अधिक प्रसिद्ध नहीं है। प्रा. पाठक को पंडित जी विशेष रूप से चाहते थे, तथा समय-समय पर उन्हें विद्यालय में बुला कर, मैंने प्रत्यक्ष देखा है कि, वे उनके साथ घंटों बातचीत करते रहते थे। कई प्रसंगों पर, वे प्रा. पाठक से सलाह लेते थे। सब जगह उनकी विपुल-विद्वत्ता के लिये प्रा. पाठक का सन्मान होता है' चौकस-बुद्धि एवं सूक्ष्म निरीक्षण, ये गुण आप में बचपन से ही विद्यमान तथा पंडित जी का निकट तम-सानिध्य और सहवास उन्हें भरपूर प्राप्त होने के कारण, उनका लिखा हुआ यह परिचयात्मक लेख वाचकों को विशेष नाविन्य-पूर्ण प्रतीत होगा।"

—संपादक

पं. विष्णु दिगंबर पलुस्कर नामक अर्वाचीन, महाराष्ट्र में ही नहीं, वरन् अखिल-भारत में एक कला-क्षेत्र के विभूति प्राय अद्वितीय नेता का चरित्र, पहिले बिल्कुल ही निकट, तदनन्तर दूर से; परन्तु श्रद्धा एवं विश्वासपूर्वक सन् १९०५ से १९३१ अर्थात उनके अन्त-काल तक देखने का सौभाग्य से संयोग प्राप्त होने से अनुभव की हुई तथा स्वयं पंडित जी के मुखार-विन्द से सुनी बातों को आज प्रकट करना है। इनमें से कितनी बातों की, पहिले के प्रसंग आने पर पुनरावृत्ति, तो कदाचित् कितनी बातें बिल्कुल नई होना संभव है।

सन् १९०१ में पंडित जी ने लाहौर में 'गांधर्व-महा विद्यालय' नामक संस्था स्थापित की। सन् १८९६ में उन्होंने गुरू-गृह [मिरज] छोड़ा। इसके बाद चार वर्ष से भी कम अवधि में ही उन्होंने दक्षिण से लेकर निःशंक दिग्विजय करते हुए, महाराष्ट्र से इतनी दूर, लाहौर जैसे स्थान में अपने संकल्पित-संगीतोद्धार के मुहूर्त की नींव डाली, यह एक आश्चर्यजनक घटना है। उस समय लाहौर में दक्षिणी-लोग बहुत थोड़े थे, और वे भी कुछ बहुत नामांकित न थे। पंडितजी ने ही, वहाँ दक्षिण-वासियों का गौरव बढ़ाया। उन्होंने लाहौर में अपने चरित्र और अर्वाचीन पद्धति को शोभा देने वाले कार्य-कौशल्य द्वारा अपना दर्जा विशेषतः नागरिक-जीवन में इतना बढ़ाया कि, उस नगर के सार्वजनिक व्यवहार के प्रत्येक विशेष-प्रसंग पर सरकारी अधिकारी-वर्ग, नामांकित वकील, बॅरिस्टर, डॉक्टर, तथा संपादक इत्यादि लोगों के मंडल में पंडित जी की अनुपस्थिति का एक भी अवसर न आया। उनक पहिले किसी भी गायक को ऐसा सन्मान संपादन किये जाने का उदाहरण ढूँढ़ने से भी न मिलेगा और न उनके पश्चात् देखा हुआ इस तरह के कमाये हुए संगीत-निष्णात का उदाहरण झट स्मरण हो, ऐसा विश्वास ही होता है। कलावंत भी समाज का एक घटक होने के नाते, उसे उसकी कला के लिये दूसरे सन्मानितों के साथ ही, जनता द्वारा स्थान दिया जाना चाहिये-यही पंडित जी की अकांक्षा थी। लोगों में संगीत के प्रति अभिरुचि बढ़ाना, उसके पोषणार्थ शाला-संचालन, तथा लोगों में संगीत-प्रचार, इतने ही तक वे अपने संगीतोद्धार के व्रत की पूर्ति के प्रति कर्त्तव्यों का अन्त नहीं समझते थे। 'जिन बातों से अन्य लोगों को समाज में मान-प्राप्ति होती है, वही बातें संगीत-व्यसायी लोग स्वीकार करें'-इस मत के अनुसार ही उन्होंने अपना रहन-सहन और व्यवहार बना रखा था। उसी के ज़ोर पर लाहौर में नागरिक अथवा सार्वजनिक जीवन में एक महत्त्वशाली, अपितु अपरिहार्य घटक होने के सन्मान के वे स्वामी बने हुए थे।

जब लाहौर में उन्होंने विद्यालय स्थापित किया तो उनके पास भरपूर द्रव्य-संग्रह नहीं था। उल्टी टुटपुंजिया की भी दशा थी। तीन-चार महिने में ही, विद्यालय का व्यय अगले महिने में कहाँ से आये, इस चिन्ता के उद्भव होने के योग्य स्थिति हो गई। विद्यार्थी कम, तो उनकी फीस से कम ही प्राप्ति भी होती; इस पर खर्च बहुत। जो पास में थी, उसी पूँजी पर आ अटकी, इस स्थिति को विचार कर, उन्होंने अपने सहकारियों से विचार-विनिमय किया। कोई सा भी प्रसंग आये, तो भी धैर्य नहीं त्यागना, ऐसी निश्चयपूर्ति ही उसका उद्देश्य था। सहकारियों ने भी पंडित जी को इस विषय में आश्वासन दिया। इन्हीं चिन्ता-ग्रस्त दिनों में, कोई ज्ञानी-ध्यानी न होते हुए भी, काश्मीर के महाराजा का निमंत्रण आया। पंडित जी तुरन्त श्रीनगर गये। वहाँ दरबार में तथा अन्यत्र गानों की बैठकें इत्यादि हुई; तथा एक ही सप्ताह के अन्दर सब मिलाकर लगभग दो हजार रुपयों तक कमाई करके पंडितजी लाहौर वापस आगये और धन के अभाव में विद्यालय-संचालन की कठिन समस्या को हल करने की चिंता का विसर्जन हो गया। तत्पश्चात्, उन्हें विद्यालय के लिये द्रव्य-अभाव का कभी भास तक न हुआ। विद्यालय जम गया। विद्यार्थियों की संख्या बढ़ गई लोगों ने भी आर्थिक सहाय्य देना आरंभ कर दिया। काश्मीर के महाराज ने डेढ़ हजार रुपये वार्षिक देने का प्रबंध कर दिया। केवल शर्त यह थी कि काश्मीर में विद्यालय की एक शाखा स्थापित करना, तथा दरबार में हर साल एक बार पंडित जी का गायन हो। पंडित जी के आने-जाने तथा काश्मीर का अन्य व्यय संस्थान की ओर से होता था। पंडित जी को मिलने वाली सालाना-रकम पर उसका कुछ भार न था।

अपने घर से फीस देकर सीखने के लिये आने वाले विद्यार्थियों के अनुसार, पंडित जी ने अपने ही खर्चे से सीखने के लिये बहुत से विद्यार्थी रख छोड़े थे। उनके इस व्यय का प्रबंध भी पंडित जी के लिये एक चिंता का विषय था। सन् १९०५ में, पं. श्री कृष्णा जी हिर्लेकर, कै. केशवराव दातार, कै. नारायण राव खांडेकर पं. कशालकर, कै. लक्ष्मण सिंह मुधोलकर, दौलत राम, पं. गोविंद राव आपटे, तथा जनार्दन थत्ते, ये लोग लाहौर में थे। उनमें पं. श्री. कृष्णा जी सबसे पुराने तथा शेष बाद के थे। १९०५ के अन्त में पंडित जी के भान्जे श्री. बापूराव गोखले तथा पंडित जी के भतीजे (चिंतामणराव और धोंडोपंत) इत्यादि; उनके पीछे पं. विनायक राव पटवर्धन और कै. नारायणराव खेर (मिरजकर की छात्रवृत्ति वाले विद्यार्थी) तदनन्तर अजमेर के आर्यसमाज की ओर से व किशनगढ़, अलवर, इन संस्थानों के चार-पांच विद्यार्थी गाना सीखने आये। परन्तु वे बहुत दिन न ठहरे। वर्ष-डेढ़ वर्ष के अन्दर ही वे विद्यालय छोड़ गये। लक्ष्मण सिंह मुधोलकर, मुधोल संस्थान के संगीत-विद्या के घराने में ही से। थे ये सितार बहुत अच्छी बजाते थे व अनेकों वर्ष ये ही पंडित जी के साथीदार थे। इनकी आवाज अच्छी थी। उनके बंधु, अंबादास ने विद्यालय में रहकर तबला मृदंग-वादन—कला में विशेष-नैपुण्य कमाया था। दौलतराम का भी हाथ उत्तम था। इस कारण पंडित जी के साथ तबला वादन का काम अधिकतः उनके ही ऊपर आ पड़ता था। 'नैपुण्य' कम होने पर भी उनके बजाने का डौल ऐसा था कि, किसी को भी यही विदित होगा, मानो कोई निपुण—वादनकार ही हो। सन् १९०८ में पंडित जी के बम्बई में विद्यालय स्थापित कर देने के पश्चात् के उनके विद्यार्थी वर्ग में बहुत से लोग थे, अतः साधारणतः वह प्रख्यात होने के कारण, उनका नाम मात्र परिचय इस जगाह देने की आवश्यकता नहीं

पंडित जी ने दक्षिण, अर्थात् अपना स्वदेश छोड़कर उत्तर दिशा की राह क्यों ली? इस विषय में स्वयं उनके ही मुँह से एक चमत्कारिक प्रसग के समय सुनी हुई बात पढ़ने योग्य है। सेंडहर्स्ट रोड पर के, उनके विद्यालय के बिकने से पूर्व एक बार रात्रि के आरंभ (लगभग ८-८॥ बजे) में पंडित जी अपने कमरे में अकेले अंधेरे में बैठे स्वर-साधन कर रहे थे। बचपन में ही उनकी आंखों को बडा आघात पहुँचने के कारण उन्हें कम दिखता था। फिर धीरे-धीरे आयु के अनुसार उनमें अधिक शक्ति शेष न रही थी, अतः आँखों को कष्ट कम हो, इस हेतु से वे अंधेरे में बैठे थे। स्वर-साधन करते हुए, वे पास बैठे कुछ लोगों से कुछ बोल•कर रहे थे। बातें करते—करते वे अत्यंत उदारतापूर्वक अपने गत-आयुष्य की समालोचना करने लगे। संगीतोद्धार की प्रतिज्ञा करके घर छोड़ा। हिंदुस्तानभर में संगीत प्रचार किया। संगीत की ओर अब कोई तिरस्कार की दृष्टि से नहीं देखता। देश में सैकडों विद्यालय खुल गये हैं और उनमें कुलीन तरुण लड़के-लडकियाा, हजारों की संख्या में संगीत का ज्ञान प्राप्त करते हैं; इस प्रकार, अपने २४-२५ वर्षों में किये कामों का वर्णन दोहराते हुए पंडित जी नें एकदम सिसकी भरी और

ज़ोर से कहने लगे. "नाथ, अब मेरी करनी में क्या कसर दिखाई देती है, अतः तुमसे भेंट नहीं होती ? महाराज, अब और क्या करना शेष रहगया है ? कब मिलोगे? क्या उस समय मुझे टाल देने के लिये ही, मेरी इच्छानुसार काम हुआ कि मैं तुझ से मिलूँगा यह झूठा ही अश्वासन दिया?" पंडित जी को अत्यन्त ही दुःख भी हुआ था; परन्तु उसका आवेग उन्होंने ३-४मिनिट में रोक लिया । वे अकेले नहीं थे । व उनके पास अन्य व्यक्ति भी थे; उनके समक्ष इस प्रकार करना उचित न था, यह ध्यान में आते ही उन्होंने शांत होते हुए एक दूसरा ही विषय आरंभ किया । किन्तु, पास बैठे लोगों की जिज्ञासा-वश, उन्होंने बार-बार पंडित जी की व्याकुलता का कारण पूछने का नये-नये ढंगों से सिलसिला (क्रम) शुरू किया तो, उन्हें तृप्त करने में पंडित जी को भाग लेना ही पडा। पंडित जी ने अपने हृद्गत विचार एवं भाव प्रकट करने के पूर्व अपने जीवन की उस समय विदित होने वाली बात की चर्चा न की जाय; श्रोताओं से ऐसी सौगन्ध ले ली, फिर वह २६ वर्ष पहिले का अपने हृदय के गर्भ में सुरक्षित व बहुत समय व्यतीत हो चुकने के कारण अस्पष्ट होने की अपेक्षा तीक्ष्ण बने हुए अनुभव का उन्होंने वर्णन किया।

काठियावाड में दिग्विजय के आरंभ में, जूनागढ़ के गिरिनार डूँगर के दत्तात्रेय के दर्शनों के लिये, पंडितजी अपने सब साथियों सहित निकले। वे आधा डूँगर चढ़ चुके होंगे कि इतने में मूसलाधार वर्षा होने लगी और उन्हें चढ़ना छोडकर पास ही रहने वाले एक गृहस्थ के यहाँ जाना पडा। काफी देर बाद वर्षा बन्द हुई। निर्मल सूर्य ने भूतल पर धूप बखेर दी और तब वे सब अगली मंज़िल तै करने के लिये उठ दिये। पंडित जी से उनके साथ न जाते बना, तथा अन्त में वे अकेले ही पीछे रह गये। सब साथी आगे निकल गये। पंडित जी के पास मनोरंजन के लिये उनकी विद्या थी ही। उन्होंने रास्ते से बहुत दूर पर, किसी को दिखाई तक न दे सके, ऐसी जगह एक चट्टान पर आसन जमाकर कालोचित गाना आरंभ कर दिया। बिल्कुल मग्न हो जाने पर, उन्हें ऐसा भास हुआ मानो उनके पीछे कोई खड़ा हो। उस ओर ज्योंही मुड़कर देखा तो एक वैरागी (गुसाईं) दिखाई पड़ा। एकांत भंग करने वाले उस गुसाईं की ओर पंडित जी ने चिढ़कर देखा और एक रूक्ष प्रश्न किया, "गाना समझते भी हो ?" 'गाना समझता है' इस आशय के गुसाईं के उत्तर पर पंडित जी ने बड़े गर्व के साथ दूसरा प्रश्न किया, तो फिर बताओ, तुम्हें मेरा गाना कैसा लगा ?" वह गुसाईं पक्के गुरू का चेला था। उसने पंडित जी का गर्व-खंडन करने वाला ऐसा कोरा उत्तर दिया, "गाने ही के लिये कहते हो, तो वह लगभग ठीक है, तो भी वह निपट निर्दोष नहीं। उसमें व्यंग है।" यह उत्तर सुनते ही पंडित जी को भारी आघात पहुँचा और वे घबरा से गये; किन्तु उस गुसाईं के सामने अपना अवसान-भंग करना उचित न समझ कर उन्होंने उच्च-स्वर में 'बैठ मेरे साथ। दिखा तो सही मेरे गाने में जो व्यंग है, नहीं तो अपने शब्द वापस लेकर क्षमा माँग और यहाँ से चलता बन,' इस भावार्थ के शब्द कहे। परन्तु, उसने बडी शांति से उत्तर दिया, "तुम अपनी इच्छा से लहर में आकर गारहे थे, मेरे कहने से तो कुछ गा ही नहीं रहे थे। फिर मैं भी तुम्हारे कहने से क्यों गाऊँ ? जब लहर आयेगी, तब मैं भी गाऊँगा, और तेरे नसीब में होगा तो सुन लेना।" इसके बाद डूँगर की झाडियों के बीच वह उस घाटी में पंडित जी की दृष्टि से ओझल हो गया।

पंडित जी फिर एकांत पाते ही, उस गुसाईं के शब्द याद करके अपने गाने का परीक्षण करने लगे। ताल व स्वर देखे; परन्तु कुछ दोष समझ न पाया। तब उस गुसाईं के उद्गार का क्या अभिप्राय हो सकता था, इसी का बार-बार विचार करते रहने के अतिरिक्त कुछ उपाय ही न था। इस प्रकार आधा पौन घंटा व्यतीत होनेपर घाटी के एक भाग की ओर से उन्हें एक आलाप की आवाज़ सुनाई दी। जिस ओर से आलाप की आवाज़ आरही थी, उसी ओर जाते-जाते वे एक मन्दिर के पास पहुँचे। वहाँ किसी का गायन हो रहा था। पंडित जी ने मन्दिर में प्रवेश किया, तो देखते क्या हैं कि उस देवी के मन्दिर में, प्रतिमा के सामने बैठा वही गुसाईं गा रहा है। मन्दिर बिल्कुल टूटा-फूटा सा था। मंदिर के सारे पत्थर ढीले और गिराऊ हो रहे थे, तथा जहाँ देखो वहीं दरारें (चीर) दिखाई पड़ती थीं। मानो उस गुसाईं की ही आवाज से वे दरारों वाले मन्दिर के पत्थर भी उसका साथ दे रहे हों, बस पंडित जी को यही प्रतीत होने लगा। समस्त वातावरण गुसाईं की आवाज से गूँज रहा था। पंडित जी तटस्थतापूर्वक उसके गाने के इस चमत्कार का अनुभव कर रहे थे कि, उन्हें यह कल्पना होते ही कि वह आवाज उनके रोम-रोम में मानों घूम रही हो, वे घबरा गये, तथा इस गुसाईं के पास कुछ विशेष अदभुत-शक्ति है, यह विदित

होते है जब यह विचार उत्पन्न हुआ कि, पिछले प्रसंग पर उनसे इस गुसाईं का वृथा अपमान हुआ है। अस्तु, उन्होंने गुसाई को दंडवत [प्रणाम] किया। चिढ़े हुये की भाँति, अपना गाना रोक कर वह गुसाई उठा, और उसने पंडित जी से विकट प्रश्न किया, " मेरे गाने में विघ्न डालने का तुझे क्या अधिकार है? " इस बार पंडित जी संगीत–ज्ञान संबंधी अपना समस्त गर्व भूल गये और बड़प्पन अथवा बराबरी का नाम तक छोड़ कर उहोंने नम्रता–पूर्वक प्रार्थना की, " महाराज, कृपा करके यह बता येथे कि आपके पास की स्पर्श करते ही नाद-ब्रह्म का रूप देनेवाली, गायन–शक्ति को मैं किस प्रकार पा सकता हूँ ? " " ये ठाठ-बाट के भड़कीले कपड़े पहन कर ही वैभवशाली बनजाने की कल्पना करके, व हरएक से उजड्डपन से बर्ताव करके, वह सामर्थ्य किस प्रकार पा सकते हो ? वह शक्ति घोर तपस्या से मिलती है।" यह उत्तर सुन कर पंडित जी हताश न हुए। उन्होंने अपने वे वस्त्र तुरन्त ही उतार दिये। " कृपया बताइये कि तपस्या में क्या करना पड़ता हैं?" यह पूछेत हुए वे उस गुसाईं के पीछे–पीछे चल दिये। उस समय वह गहन अरण्य के विकट–मार्ग पर सीधा चला जा रहा था। कुछ दूर जाने पर वह रुका और पंडित जी की ओर देखकर अतिशय सौम्य–सांत्वना के स्वर में बोला, " बेटा! तूने जो घर छोड़ा वह किस लिये? शरीर पर भस्म लपेट कर घास–फूस पर जंगलों में आयु व्यतीत करने के लिये नहीं। संगीतोद्धार की प्रतिज्ञा को अपूर्ण छोड़ना उचित नहीं। जाओ, लौट जाओ, उत्तर की ओर जाओ। वहीं तुम्हारी उद्देश्य प्राप्ति का उत्कर्ष होगा। तुम्हारी गायन–विद्या निर्दोष है। मैंने जिस व्यंग के विषय में कहा था, वह गाने में नहीं, व्यवहार में है। संगीतोद्धार का उद्योग उजड्डपने से सफल नहीं होगा। उसके लिये नम्रता ग्रहण करके जन संग्रह करने की शक्ति सिद्ध करना आवश्यक है। इसका अभाव दिखाई दिया, अतः व्यंगमय कहा था। जा, तू अपनी प्रतिज्ञा को पूरी करने के लिये कार्य कर। " इसके पश्चात् गायन—शास्त्र के ग्रन्थों का परिचय देकर उन्होंने पंडित जी को, तपस्या का निश्चय त्याग देने पर बाध्य किया। पंडित जी उनके भाषण के संदर्भ के कारण आश्चर्य–मुग्ध हो गये और किसी भी प्रकार का वाद उपस्थित करने का साहस तक न हुआ। उन्होंने कुछ भी बुरा न मान कर वह सन्देश स्वीकार कर लिया और गुसाईं जी ने उन्हें पूर्ण आशीर्वाद दिया। पंडित जी उस संदेश को प्राप्त करते समय गुसाईं जी से एक वचन लेना न भूले, "अपना समाधान हो जाय, इतना तेरा कार्य सफल होने के पश्चात् मैं तुझसे फिर मिलूँगा। " इस अभिवचन की पूर्ति क्यों नहीं होने पाती? यही प्रश्न अन्तिम दिनों में पंडित जी के हृदय में रोग की भाँति घर कर बैठा था, यह कहना आपत्ति–जनक नहीं है। नासिक में, दुख के उन अन्तिम दिनों तो वे अपनी संयमशीलता को त्याग बैठे और बार–बार 'नाथ कब मिलोगे?' इसी आशय के उद्गार प्रकट करके विलाप करने लगते थे। जिस प्रसंग–वश, उन्हें अपने जीवन का वह विलक्षण अनुभव कहना पड़ा, उस समय उस गुसाईं से मिलने की उत्सुकता अत्यन्त प्रबल हो रही थी और अटक-अटक कर, रुकते हुए लगभग आधे घंटे तक उस अनुभव का वर्णन चलता रहा। [लोगों को इस पर विश्वास नहीं होगा, फिर पंडित जी ने भी एक आडम्बर सा खड़ा कर दिया था, तथा उसका ज़िक्र किसी से न करने का उन्होंने समस्त श्रोताओं से पहले ही वचन लेकर, उन्हें शपथ भी दिला दी थी। उनकी कल्पना के अनुसार, लोगों को यह वृत्त सच्चा प्रतीत हो अथवा न हो; परन्तु पंडित जी ने उत्तर दिशा ही में अपने कार्य की पताका क्यों फहराई, इसका उत्तर इस हकीकत में आवश्य है। पंडित जी के चरित्र में सार्वजनिक–कार्यकर्त्ता के नाते, जो व्यवहार को नम्र बनाने वाला उच्च–कोटि का परिवर्तन हुआ, उसका बीजांश भी वाचकों को उस गुसाई के उपदेश में दृष्टिगोचार होगा।

उत्तर में बिल्कुल काश्मीर–पंजाब की सीमा तक–यदि प्राचीन ऐतिहासिक भाषा में कहा जाय तो, उन्होंने अटक तक केवल, चार ही वर्षों में मंज़िल दर मंज़िल विजयशाली संगीत-संचार किया। लाहौर में विद्यालय स्थापित करने के पूर्व एक सिक्ख जमादार के पास उन्होंने सवेतानिक नौकरी भी की। किन्तु संगीतोद्धार का गुरु कौन सा है, यही लगन उनके हृदय में सदैव जागृत थी! पहिले गुरु–गृह जाकर, गुरु-सेवा द्वारा विद्यार्जन करने की प्रथा थी; किन्तु उसके कारण विद्या का यथेष्ठ प्रसार नहीं होता था। अब सर्वत्र शालायें खुल जाने से ज्ञान का प्रसार होता है। तब चार सेवक शिष्य पास रखकर उन्हें मर्जी के अनुसार विद्यादान देने की अपेक्षा इसके लिये सार्वजनिक शालाओं द्वारा विद्यादान करने का उत्तम मार्ग है, इस प्रकार के संकल्प की उन्होंने गाँठ बाँधली थी।

शाला का प्रश्न उठते ही पुस्तकों की आवश्यकता होती, तथा पुस्तकों के लिये संगीत–लेखन आवश्यक, ऐसा दृढ़ निश्चय करके उन्होंने संगीत–लेखन (नोटेशन) का उद्योग आरंभ किया । संगीत–शालायें निर्माण करके, आपने इस विद्या को लोक-शाही की दीक्षा दी, वे यह कहते थे । संगीत को आपने ही थिएटर में गाने आरंभ करके लोकशाही की मात्रा का चक्कर देने की बाबत भी वे सगर्व कहते थे । प्रथम किसी एक शहर में जाना, फिर धनाढ्य–रसिकों के पास अवसर ढूँढ़ने के पश्चात् उनकी महरबानी होने पर उन्हें गाना सुनने के लिये बुलाना और फिर गाना, इस पद्धति से वे उकता गये थे । काठियावाड़ के एक संस्थान में, उन्होंने इस पद्धति का परित्याग करके, सहज थिएटर में टिकिट लगाकर गाने के जलसे किये । धनाढ्यों के यहां गाना होने से, सर्वसाधारण लोग उसका आनंद–भोग न कर पाते थे । परन्तु, थिएटर में श्रीमंत एवं निर्धन दोनों को गाना सुनने का अवसर मिलता था । उनमें से यदि किसी एक–आध श्रीमंत के मन में अपने घर गाना कराने का विचार आता, तो वह आपके पास आता था । आपको उनके पास वसीला (सिफ़ारिश) भेजने का सिर दर्द मोल नहीं लेना पड़ता था । सर्वसामान्य में यदि संगीत के प्रति प्रेम की वृद्धि करना है, तो वह श्रीमंतों तक ही सीमित रहकर किस प्रकार संभव है ? पंडित जी की यह विचार–युक्ति, उस समय को ध्यान में रखकर, अपने मनोरथ की सिद्धि का योग्य–मार्ग ढूँढ़ने में कितनी निपुण तथा सफल थी; इसकी कुछ कल्पना हो सके, इस अभिप्राय से किंचित् सविस्तार वर्णन की है ।

पंडित जी की स्वकार्य–कुशलता के कुछ और उदाहरण वर्णन योग्य हैं । सन् १९०५ में भाद्रपद के आरंभ मे पंडित जी अजमेर गये । उस समय वहाँ अच्छे योग्य दाक्षिणी लोगों की बहुत काफ़ी संख्या होने के कारण वहाँ गणेशोत्सव की बड़ी धूम रहती थी । पंडित जी के आगमन का समाचार पाकर उत्सव–कर्ताओं ने पंडित जी से गाने के लिये अनुरोध किया । उन्होंने भी रुपये–पैसों के बारे में कुछ बात न करते हुए गाने का दिवस निश्चित कर लिया, और उस रोज़ वे ठहराये हुए समय पर वहाँ पहुँचे । उनके साथ तम्बूरों की पेटियां थीं । जिस समय वे आये, उस समय अजमेर में सबसे अधिक चाही जाने वाली जयपुर की एक नायका का गाना व नाच चल रहा था–उस जलसे में बहुत ही भीड़ थी । नायका की प्रसिद्धि के कारण ही तो लोग जमा हुएथे; परन्तु पंडित जी के विषय में भी लोगों में बड़ी उत्सुकता थी । बस, इसी कारण इतनी अधिक भीड़ हुई थी । उस नायका का नृत्य–गायन समाप्त हो जाने पर रात के लगभग ११-१२ बजे पंडित जी ने गाने के लिए आसन जमाया । जब उनके शिष्यों ने पेटियों में से तंबूरे निकाले तब उस नायका ने 'यह किसकी कब्र है' इस प्रकार के द्वेषयुक्त कुत्सित शब्द कहे थे-कि इस आडम्बर के पीछे गाने की विद्वत्ता बस विचारने योग्य ही होगी ! पंडित जी ने उसकी ओर लक्ष्य न देकर, दो-तीन मिनिट ही में गाना आरम्भ कर दिया । तम्बूरे तो घर से लगा कर लाये थे । वही तबले का हाल था । इससे समय बच गया और गवैयों के सम्बन्ध में अनुभव किया हुआ लोगों का जानबूझ कर खाँसना-खकारना इत्यादि भी न हो पाया । इस अनुशासन के कारण, श्रोताओं में पंडित जी की धाक जमगई । लगभग ३ घंटे तक पंडित जी का गाना हुआ । उस समय के सुनने वाले लोग कहते थे कि गणेशोत्सव जैसा पंडित जी ने पुन: अजमेर में कभी नहीं गाया, इसका केवल इतना ही अर्थ है कि, दूसरी जगहों पर सच्चे रसिकों का अभाव था । गणेशोत्सव में गाकर तो उन्हें अपना उद्देश्य सिद्ध करना था । अस्तु उस गाने से उनकी जो प्रशंसा हुई वही आगे उनकी इच्छापूर्ति में उपयोगी हुई । परन्तु पंडित जी श्रोतागण देखकर ही गाते थे । उन्हें भिन्न-भिन्न समाजों में गायन विषयक अभिरुचि का अचूक ज्ञान होने के कारण, जहाँ मारवाड़ियों का समुदाय अधिक दिखता, वहाँ मांड राग की नई–नई चीज़ों से ही वे अपना काम पूरा करते । जालंदर में हरसाल 'बाबा हरि वल्लभजी, के समाधि-स्थान पर भरने वाले संगीत–परिषद में चुनी हुई ख़ास उस्तादी चीज़ों के प्रभाव से, आपका गायन जानकार श्रोताओं में अद्‌भुत परिचय करा देने का कारण था क्यों कि, वहाँ देशभर के संगीत–ज्ञानी जमा होते थे । एक बार सन् १९०७ में अजमेर आर्यसमाज ने एक जलसा किया, जिसमें लगभग सारा समाज शिक्षित था व देश में विदेशी–बहिष्कार की हवा फैली हुई थी, इसको ध्यान में रख कर केवल देश–भक्ति पर ही सदा गाने गाकर श्रोताओं को कितनेही घन्टों तक आनंद—सागर में डुबाये रखा । सन् १९१२ में पंडित जी पंढरपुर गये थे । वहाँ उन्होंने नामदेव व तुकाराम के अभंग गाकर जनता को पागल बना दिया था । इस

सम्बंध में एक सहज ही बात-चीत चलते-चलते पंडित जी ने ही इस प्रकार खुलासा किया कि, जब पैसा खर्च करके ही काम बने तो वे अधेली—रुपया भी खर्च न करते, ऐसा ही इसका अर्थ है।

अजमेर से पंडित जी उदयपुर गये। वहाँ लोकशाही का प्रयोग करनेवाले को अवकाश ही न था। उदयपुर एक बहुत ही पिछड़ा हुआ संस्थान था। संस्थान में सड़कें न थीं। परन्तु, वहीं अच्छा समझा जाता था। पुरुष घोड़ों पर बैठते, स्त्रियां म्याने(पालकियों) में बैठकर जातीं, फिर सड़कों की क्या आवश्यकता थी—यह राजा का युक्ति-वाद था। ऐसी जगह वसीला लगाने का अवसर आया। पंडित जी ने उनसे मिलने आनेवाले दरबारी लोगों से राजा के स्वभाव का मर्म जान लिया। राजा को सच्चे गायन के प्रति तनिक भी प्रेम न था। केवल भजनों पर ही मानो वह आसक्त था। राजा ने पंडित जी के कार्यक्रम के लिये तो बिल्कुल मना सा ही कर दिया था; परन्तु अन्त में केवल १५ मिनिट गाने की अनुमति दे दी। राजा को सूरदास के पद, वह भी कौन-कौन से अधिक पसन्द थे, यह सब पंडित जी ने पता लगा लिया था। अस्तु कार्यक्रम के समय ऐसा ही एक पद उन्होंने गाया और राजा उसके आनंद में तल्लीन हुआ ही था कि, १५ मिनिट समाप्त हो गये। बस, तुरन्त तम्बूरे बन्द कर दिये। इस पर राजा ने जब यह प्रश्न किया कि तम्बूरे क्यों बन्द किये, तो बताया गया कि उसका निश्चित किया हुआ समय (१५ मिनिट) समाप्त हो चुका था। राजा ने फिर १५ मिनिट गाना चालू रखने की इच्छा प्रकट की। पन्डित जी ने दूसरा पद आरम्भ किया, तथा उसका रंग जमने लगा था कि, वह ठहरी हुई मुद्दत समाप्त हो गई। पुनः गाना बन्द हो गया। किन्तु, राजा को समाधान न होने के कारण १५ मिनिट की मुद्दत और दी गई तथा, फिर से पहले जैसे अनुभव की आवृत्ति हुई। समय के अभाव से मनोभन्ग होजाने के कारण राजा यद्यपि कुछ अस्वस्थ सा होगया; परन्तु वह प्रायः खुश भी अवश्य हुआ। उसने पण्डित जी को केवल धन्यवाद ही नहीं, वरन् तीन बार गाने की खातिर तिगुनी बिदायगी देकर उनको संतुष्ट किया। पण्डित जी के इस गौरव के कारण उदयपुर नगर में कितनों के डाह-वश, मस्तक में मानो शूल उठ बैठा। पण्डित जी को किसी भी प्रकार हानि अवश्य पहुँचाई जाये, ऐसी व्यूह-रचना की गई। एक बार संध्या समय पण्डित जी बाज़ार में जा रहे थे कि, उस व्यूह के लोगों में से एक लड़के ने हाथ में एक कैंची लेकर पण्डित जी की रौबदार बड़ी-बड़ी मूँछों पर चलानी चाही। वह लड़का नौसिखा ही था। पण्डित जी ने उसका हाथ उनके चहरे के पास आते ही तुरन्त पकड़ लिया, तब वह कैंची दिखाई दी और उन को हानि पहुँचाने का उसका हेतु ध्यान में आते ही, पण्डित जी ने उसके एक जोर का चाँटा रसीद किया और दूर धकेल दिया। हाथ पकड़ते ही उस लड़के ने चिल्ल-पुकार शुरू करदी; तथा उसके दो एक भाईबंद-साथीदार, जो पास ही थे, उसे बचाने के बहाने पण्डित जी पर टूट पड़े। लेकिन, इसी क्षण लक्ष्मण सिंह व दौलत राम पंडित जी का इशारा पाते ही उन्हें बचाने के लिये पंडित जी के सामने आ खड़े हुए। लक्ष्मण सिंह ६ फुट ऊँचा व पहलवानी शरीर वाला, तगड़ा, जवान आदमी था। उसने एक हल्ला करने वाले को अपनी लम्बी टाँग से ऐसी लात मारी कि वह बदमाश जबरदस्त मार के कारण धरती-माता की गोद में लोट कर धूल चाटने लगा। दौलत राम यद्यपि छर छरे बदन का था, तो भी उसके स्नायु फ़ौलाद की भांति कड़े और मजबूत थे। उसने दूसरे बदमाश की गर्दन पकड़ कर ऐसी दबाई कि उसे अपने प्राण बचने की भी कदाचित् ही आशा रही हो इसी गड़बड़ में जो लोग वहाँ जमा होगये थे, उनमें से कुछ पंडित जी को पहचानते तथा उनका सन्मान भी करते थे। कुछ ऐसे लोग भी वहाँ थे, जिनका राज्य में सन्मान था और धाक जमी हुई थी। उन लोगों ने पंडित जी को सुरक्षित घर पहुँचा दिया। किन्तु, जिन दो गुंडों की भरे बज़ार आबू धूल में मिल गई थी, उन्होंने बदला लेने का संकल्प किया और अपने कुछ और साथीदारों को बुलाकर दो तीन घंटे में पंडित जी के घर पर जा पहुँचे। इसी बीच शहर के सर-कोतवाल साहब पंडित जी से सहज मिलने चले आये। कुशल इत्यादि की पूछ-ताछ के पश्चात्, उन्होंने पंडित जी से गाना सुनाने की प्रार्थना की। पंडित जी ने भी तुरंत स्वीकार कर लिया और उन्हें भरपूर गाना सुनाया, जिससे सर-कोतवाल बड़े प्रसन्न हुए। गाना समाप्त होने पर, जब मान-पान चल ही रहा था कि, बाहर एक भारी शोर-गुल हो रहा है, इस ओर सर कोतवाल का ध्यान आकर्षित हुआ। अपने साथ के सिपाहियों द्वारा पूछ-ताछ की तो ज्ञात हुआ कि, पंडित जी पर हमला करने के लिये ५०-६० आदमी बड़ी तैयारी से जमा हैं और पंडित जी व उनके शिष्यों को चुनौती देकर बाहर

बुला रहे हैं। सर-कोतवाल ने पंडित जी से २-२॥ घन्टे पहले हुई बाज़ार की वह सारी घटना मालूम की और उस भीड़ के दो-एक अगुआओं को बुलाने के लिये सिपाही भेजे। जब लोगों को यह मालूम हुआ कि पुलिस के प्रमुख ही पंडित जी के पास बैठे हैं तो बहुतसों के अवसान भूल गये। फिर भी झूठ-मूठ न्याय की दुहाई देने के लिये २-४ आदमी आये और बातें गढ़-गढ़ कर अपनी शिकायतों का सरकोतवाल सा: के सामने मानो ढेर लगा दिया। तब पंडित जी ने संक्षेप में ही उस लडके की करतूत तथा समस्त षड्यंत्र कह सुनाया। अंत में उस लडके द्वारा कैंची के प्रयोग का जब भेद खुला, तो कोतवाल सा: ने झगडे का सारा दोष उन गुण्डों के ही सिर मँढ़ दिया और हुक्म दिया कि, वे सब तुरन्त वहाँ से चलते बनें। कोतवाल सा: को अधिक क्रुद्ध करने की उस भीड में हिम्मत न थी। अस्तु, उन्होंने उसी क्षण उनकी आज्ञा का पालन किया।

कोतवाल साहब ने गाना सुनाने के लिये पंडित जी का बड़ा आभार माना और जाते समय पंडित जी के घर पर कुछ उपद्रव न हो, इस आशय से पुलिस की गश्त का विशेष प्रबंध कर दिया। कोतवाल की विनंति पर पंडित जी ने एक क्षण भी विलंब न करते हुए गाने की सम्मति देने की नीति तब उनके साथवालों की समझ में आई। जो पंडित जी, किसी के केवल 'गा' कह देने से ही गाने नहीं लगते थे, उन्हों ने कोतवाल के शब्दों को क्यों व्यर्थ न जाने दिया और उसका आग्रह मान लिया, इस बात की दूर-दर्शिता और इसका रहस्य, उस संस्थान के उस संकटमय-वातावरण में उस भारी आपत्ति का निवारण इतनी सहज गति से हो जाने पर ही सब जान पाये। उदयपुर से फिर पंडित जी अजमेर आये, तथा वहाँ से लाहौर गये। इस वर्ष पंडित जी ने लाहौरसे बाहर सदैव की अपेक्षा अधिक महिनों तक दौरा किया था।

सन १९०६ में पंडित जी की संगीतोद्धार के प्रति कल्पनाओं में से एक की पूर्ति का अवसर आया। उस वर्ष, हिन्दुस्तान में बादशाह पन्चम जॉर्ज का युवराज के नाते चारों-ओर सरकारी-सत्कार हो रहा था। वे लाहौर भी पधारे। पंडित जी के मन में आया कि उस समय के मनोरंजन के कार्य-क्रम में भारतीय-संगीत को भी किसी प्रकार स्थान मिल जाय, तथा उसका यथोचित सत्कार भी हो। भाग्य से बड़ी खट-पट के बाद उनकी वह इच्छा भी पूरी हुई। लाहौर शहर के पास ही के बादशाही बाग में युवराज के लिये दरबार भरा और उसी में संगीत—कार्य क्रम में से १५ मिनिट पंडित जी को भी गाने का अवसर मिला। वहाँ से लौटने पर पंडित जी को ऐसा प्रतीत हुआ मानो किसी अपूर्व विजय-श्री को प्राप्त किया हो। पंडित जी संगीत को नारद जी का मिशन कहते थे। इस मिशन का प्रवेश ब्रिटिश-राज्य के बादशाह के समक्ष हुआ, इस कृतार्थता की भावना का कुछ समय तक उनके हृदय में संचार बना रहा, यह बात कोई अनोखी सी लगने योग्य नहीं है। भारतीय-संगीत को इतने उच्च तथा दुर्गम स्थान तक पहुँचाने का प्रयत्न पंडित जी से पहिले न किसी ने किया और न उनके पश्चात् किसी ने किया, यह सुनने में ही आया। नागरिक-जीवन में जो उन्होंने अपने प्रति आदर निर्माण किया था, उसी का यह फल था।

दरबार के पश्चात्, दूसरे दिन जिस रास्ते से युवराज का जुलूस निकल ने वाला था, उसी रास्ते पर विद्यालय की इमारत होने के कारण, पंडित जी ने इस रास्ते की ओर वाली एक गैलेरी सजाकर पुन: एक बार युवराज को भारतीय—संगीत के स्वर सुनाये। अपने उद्योग सम्बंधी समाचार लोगों को सदैव ज्ञान होता रहे, अत: पंडित जी ने समस्त समाचार-पत्रों के अधिकारी-वर्ग, से घनिष्ठ सम्बंध रख छोड़ा था। यही कारण था कि, इस प्रसंग की हकीकत लाहौर के समाचार-पत्रों में प्रकाशित भी होगई। इस प्रसंग से पंडित जी का मान सामान्य नागरिकों ही में नहीं, बरन् राजे-रजवाडों में भी कितना होता था, इसका अनुमान हुआ। जब पंडित जी लाहौर में थे, तो पंजाब तरफ़ के समस्त राजे-रजवाडों के जागीरदार इकट्ठे हुए और उनके उद्यानोपहार का समारंभ लाहौर के गोल-बाग में हुआ। वहाँ लाहौर के बड़े-बड़े लोग बुलाये गये थे। पंडित जी के पास भी निमंत्रण आया था। पंडित जी के वहाँ पहुँचते ही बहुत से उनके परिचित लोग उनके आस-पास एकत्रित हो गये तथा बिल्कुल बराबरी के नाते से उनके साथ संवाद एवं हास्य-विनोद करने लगे। कलावंत ऐसे बड़े लोगों से अदब के साथ दूर ही खड़े रहे और बड़ों की कृपा-दृष्टि जब भी हो, उसकी प्रतीक्षा करें, तथा ऐसी किसी की नजर होने पर निपट साधारण से शब्दों को सुनकर ही स्वर्ग का सा आनंद प्राप्त हुआ, कलावंत मानें; यह पंडित जी के कला-व्यवहार में नहीं था।

पंडित जी ने ब्रिटिश बादशाही के वैभवोपचार में भारतीय संगीत को भी स्थान दिलाने के लिये जो उद्योग किया, उसके विषय में दी हुई उपर्युक्त हकीक़त पर से यदि कोई यह धारणा कर बैठे कि उन्हें देशाभिमान न था, तो वह भारी भूल होगी। पण्डित जी बड़े देश-भक्त थे। देश के अनेकों उग्र व नम्र नेताओं से स्नेह संबंध होने के नाते मेल-मिलाप का संयोग आने पर देश-भक्ति संबंधी विचार-विनिमय होते रहने के कारण, देश-भक्ति के जितने कार्य आपने किये, उतने कदाचित ही किसी संगीत-निष्णात ने किये हों। सन् १९०५ में बंगाल-विभाजन के कारण देश में जो क्षोभ की लहर उठी, उसने पण्डित जी को भी प्रभावित किया, तथा वे भी संगीत द्वारा उस हलचल को सहायता पहुँचा कर देश-भक्ति के उस उद्देश्य की मानो सेवा करने लगे। पन्डित जी ने लाहौर में अपने विद्यालय में ही व्यवसाय-शिक्षण की दृष्टि से एक छोटा सा छापाखाना चला रखा था, तथा वहाँ से 'सङ्गीतामृत-प्रवाह' नामक एक छोटा सा मासिक प्रकाशित होता था। इसके अतिरिक्त विद्यालय की, पुस्तकें इत्यादि वहीं छापने की योजना थी। इस छापेख़ाने में ऐसे विद्यार्थी-गण, जिनके निर्वाह का भार पंडित जी ही पर था, दुपहर के समय काम करते थे। सन् १९०५ के पश्चात् इस मासिक में हर महिने, समाचार-पत्रों में प्रकाशित होने वाले चुनीदा देश-भक्ति के पद, स्वरों सहित छापे जाने लगे। बंग-भंग के क्षोभ के कारण देशभर में सभा-सम्मेलनों की मानो हवा सी चली। लाहौर में यदि कोई महत्वपूर्ण सभा हुई, तो पंडित जी को अवश्य बुलाया जाता था। बहुत सी बार वे यदि स्वयं न जाते, तो अपने शिष्यों को अवश्य ही वे सभा के आरंभ में देश-भक्ति का एक-आध पद गाने के लिये भेज देते थे। यदि यह कहा जाय कि, सभा के अन्त में 'वन्दे-मातरम्' नामक राष्ट्रगीत गाने की प्रथा लाहौर में पंडित जी ने ही आरंभ की, तो कुछ अतिशयोक्ति न होगी। १९०७ में, लाला लाजपतराय, व अजीत-सिंह को लाहौर में क़ैद किये जाने पर 'पगड़ी सँभाल ओ जट्टा' व 'इक़बाल' का 'सारे जहाँ से अच्छा' इन दो पदों के स्वर हर घर में बस कर गूँजने लगे। पंडित जी ने इनकी भी सुन्दर तर्जें बनाकर ख़ूब प्रचार किया। इन्हीं दिनों एक छोटी सी घटना और घटी। उस समय लाहौर में प्लेग फैला हुआ होने के कारण पंडित जी अजमेर आकर रहने लगे थे। यहाँ एक बंगाली नवयुवक ने अंग्रेजी वृत्त-पत्र चलाने का दृढ़ संकल्प कर रखा था; परंतु दो-एक अंक निकलते ही उस पर अधिकारियों की वक्र-दृष्टि पड़गई तथा उसे किसी प्रकार क़ानून के अनुसार सबक़ सिखाने की काना-फूसी अधिकारी-वर्ग में आरंभ हो गई। बस पुलिस ने भी अपना जाल फैलाया और जहाँ-जहाँ वह जाये, वहीं उसके पीछे-पीछे ही पुलिस, उसे बन्दी करने के आशय से, जा पहुँचती। उस बेचारे को पुलिस की निगाहों से बचकर दिन बिताने की विकट-परिस्थिति का सामना करना पड़ा। इसी तरह, छिपकर, चलते-चलते वह एक दिन पण्डित जी के पास आश्रय के लिये आ पहुँचा। भला वे इसे आश्रय क्यों न देते? दयालु पन्डित जी ने, दूसरे ही दिन बड़ी सुबह उस के कपड़े इत्यादि बदलाकर, कुछ रुपये दिये और अपने विद्यार्थियों में से दो आदमियों को साथ करके रेलगाड़ी द्वारा अजमेर छोड़कर दूसरी ही जगह भेज दिया। जब वह निर्विघ्न-रूप से परदेश के लिये रवाना हो गया, तो उस के पश्चात् पुलिस ने पंडित जी के घर की तलाशी ली, तथा उनसे व अन्य लोगों से बड़ी पूछ-ताछ की; परन्तु पुलिस के कुछ भी हाथ न लगा। इसके अतिरिक्त ऊपर उल्लेख किया जा चुका है कि, इसी शहर में पंडित जी ने देश-भक्ति के पद गा-गा कर लोगों को मस्त बना दिया था।

पण्डित जी, अपनी ही कला के उद्धार में मग्न रहने वाले स्वार्थी दृष्टि के कलाकार नहीं थे। उन्हें भी मार्मिक स्थिति की बड़ी चिन्ता व ज़िम्मेदारी प्रतीत होती थी। अस्तु, यह देश के नेताओं को भली प्रकार विदित होने के कारण ही काँग्रेस के अधिवेशनों में हरसाल नियम से 'वन्दे-मातरम्' गाने के लिये वे बुलाये जाने लगे। देश-सुधार के माने संस्कृति का विकास तथा इसमें से संगीत-विद्या को पृथक् कर देना असंभव समझकर ही म. गांधी ने अपने राजनैतिक-परिवार में कै. नारायणराव खरे को सम्मिलित किया था। पंडित जी का चित्त राम-भक्ति की ओर एकाग्रतापूर्वक आकर्षित होने पर 'रघुपति राघव राजाराम, पतित पावन सीताराम' इन शब्दों को राष्ट्र गीत के समान महत्व प्राप्त हो, यह उनकी इच्छा थी। उनकी वह मनोकामना १९३० में, जब म. गांधी दांडी की ओर अपना मोर्चा लेकर निकले, तो पूरी हुई। उन्हीं शब्दों के ठेकों पर महात्मा जी के स्वयं-सेवक अपने क़दम उठा रहे थे; क्योंकि

उस दल के आगे-आगे एकतारे पर कै. नारायणराव खरे 'रघुपति राघव' ये ही शब्द गाते हुए चल रहे थे। इससे पंडित जी को जो हर्ष हुआ, वह अनिर्वचनीय है। सन् १९३० के अन्त अथवा सन् १९३१ के आरंभ में पंडित जी दक्षिण हैद्राबाद गये थे। वहाँ उन्होंने तुलसी-कृत रामायण पर संगीत-प्रवचन किये, तथा उनमें गाया जाने वाला 'रघुपति राघव राजाराम' श्रोताओं के कण्ठ में ऐसा बस गया कि, कई महिनों तक बच्चों से लेकर बूढ़ों तक के मुँह से आप से आप वे निकल पड़ते थे। इनके श्रोताओं में मुसलमान बच्चे और बूढ़े भी थे। उन्होंने भी ये शब्द अनजाने ही कण्ठस्थ कर लिये थे। सन् १९३१ के मई-महिने में 'महाराष्ट्र-साहित्य-सम्मेलन' के समय तक 'रघुपति राघव' पंडित जी की पद्धति के अनुसार ही गाने वाले मुसलमानों के बच्चे पाये गये। इस पर से, वहाँ की जनता पर प्रवचनों का जो प्रभाव पड़ा था' इसका अनुमान हो सकता है। 'रघुपति राघव' का घोष मुसलमानों को भी निषिद्ध प्रतीत नहीं हुआ, अतः इन शब्दों को राष्ट्रीय-गीत की सी मान-प्राप्ति की पंडित जी की कल्पना का अनुमोदन हो कर रहा।

सन् १९२३ में-कोकोनाडा में काँग्रेस के अधिवेशन में, उस समय के अध्यक्ष मौ. मुहम्मद अली ने पहिले की भाँति 'वन्दे-मातरम्' गाने का निषेध किया। इस निषेध को सुनते ही पंडित जी ने मौलाना साहब को जो उत्तर दिया, उसका गुणानुवाद समस्त समाचार-पत्रों में गूँज उठा। जितनी ठसक व अध्यक्षता की शान के साथ मौलाना ने वे शब्द कहे थे, उतने ही आवेश से गरजकर, पंडित जी ने 'वन्दे-मातरम्' गाया ही जाना चाहिये, ऐसा आग्रह पूर्ण उत्तर दिया। उस पर भी एक और प्रश्न किया कि, "कल अध्यक्ष महोदय का जब जुलूस निकल रहा था तो बाजों के मन चाहे ढंग में गर्जना करते समय मौलाना साहब का संगीत-विरोध कहाँ लुप्त हो गया था? उस समय यदि संगीत अच्छा लगा, तो अब मौलाना को उससे क्यों नफ़रत (घृणा) हो गई। यह मस्जिद नहीं, राष्ट्र-सभा का मंडप है, यह अध्यक्ष महोदय को नहीं भूलना चाहिये।" यह ताना मार कर, मौलाना के कुछ बोलने की तनिक भी प्रतीक्षा न करके पंडित जी ने वंदे-मातरम् का पद गाया। पंडित जी के इस धैर्यशाली प्रसंग के लिये सब ओर से अभि-नंदन की वर्षा होने लगी। जिस प्रकार कोकोनाडा में 'वन्दे-मातरम्' की आब्रू पंडित जी ने अपने धैर्य द्वारा सुरक्षित रखी, उसी तरह एक बार अहमदाबाद में 'रघुपति राघव' की भी आब्रू उन्होंने रखी। इस शहर में उनका तुलसी-रामायण पर प्रवचन समाप्त होने पर 'रामायण' का जुलूस निकालना निश्चित हुआ; तथा यह लक्षण भी विदित होने लगे कि मुसलमान इसका विरोध करेंगे। दंगा हो जाने के भय से कितने ही सभ्य तथा अधिकारी लोग उस जुलूस का विचार छोड़ देने की सलाह देने लगे। पंडित जी ने उनकी सलाह की ओर ध्यान न देते हुए, 'जुलूस तो निकलकर ही रहेगा, जो होगा सो देखा जायगा' यह निश्चय करके जुलूस निकाला। आगे-आगे स्वयं पंडित जी थे। जुलूस में थोड़ी सी गड़-बड़ हुई; परन्तु वह जैसा का तसा अन्त तक गया।

पंडित जी राष्ट्रीयता के लिये अपनी कला का किस प्रकार उपयोग करते थे, इस सम्बंध में एक बात लिखने जैसी ही है। सन् १९३० में म. गांधी ने सविनय क़ायदा-भंग करने की सत्याग्रह का आन्दोलन आरंभ किया। लग-भग उसी समय पंडित जी ने बम्बई में संगीत-परिषद् का आयोजन किया था। परिषद में उनके एक शिष्य का गाना होना निश्चित हुआ था। अतः वह मंच पर जा बैठा। ज्योंही उसने एक चीज़ का पहिला चरण आरंभ किया कि पंडित जी ने आज्ञा दी, "यह चीज़ मत गाओ"। उसे ईर्षा हुई, तथा उसने गुरु जी को याद दिलाई, "यह चीज़ आपने ही सिखाई है।" परन्तु पन्डित जी ने फिर कहा, "हाँ, मैंने ही सिखाई और अब मैं ही कहता हूँ कि यह चीज़ मत गाओ।" इस पर तो उसे समझ जाना चाहिये था; किन्तु उसने सोचा कि, वह सभा का मत तो पन्डित जी को प्रकट करके कह दे। अतः उसने उत्तर दिया, "सभा के मत के अनुसार इस चीज़ को गाने में यदि आप आपत्ति करेंगे तो सभा का अपमान होगा।" अब तो पंडित जी मानो आग-बबूला हो गये, तथा बोले, "इससे सभा का कोई संबंध नहीं है। मैं बस यही कहता हूँ कि, इस चीज़ को न गाने देने के अनेकों कारण हैं। व्यर्थ की बक-वास न करो और यदि मेरा कहना नहीं मानना है, तो मंच पर से नीचे उतर आओ। मेरे पास बहुत से दूसरे गाने वाले लोग हैं।" इन कठोर एवं आवेशमय वाक्यों को लगातार सुनकर, उसने अपना हठ त्याग दिया और दूसरी चीज़ आरंभ करदी। उसने बहुत अच्छा गाया, तथा पंडित जी स्वयं बीच-

बीच में प्रशंसा के उद्गारों द्वारा उसे उत्साहित कर रहे थे। शिष्य का चहरा आवश्यकतानुसार खिल अवश्य उठता था; परन्तु उसका मन गाने के लिये नहीं हो रहा था। गाना समाप्त होते ही वह तुरंत मंच पर से कूद पड़ा और दौड़ कर सबके देखते ही देखते पंडित जी के पैर पकड़ कर कहने लगा, "महाराज! आप से वाद-विवाद करके मुझसे बड़ा अपराध हुआ, क्षमा करें।" पंडित जी ने अत्यन्त वात्सल्य पूर्वक उसके सिर से पीठ तक हाथ फेरा और उसे उठा कर अपने ही पास बैठा लिया; तथा जो उपदेश किया, वह पंडित जी की जागृत-राष्ट्रीय-दृष्टि का प्रमाण है। पंडित जी ने अत्यन्त ममतामय शब्दों में कहा था, "कलावंत को देश, काल व वर्तमान को ध्यान में रखना चाहिये। जिस चीज़ को गाने के लिये मैंने मना किया था, वह शृंगार-रस की होने के कारण, उसके पहिले चरण में ही मद्य-पान के अनुकूल सदर्भ है। आज देश में शराब-बन्दी की हल-चल शुरू है। अपनी सैकड़ों मा-बहिनें प्रकृति व लोगों के समस्त संताप सहन करके मदिरालयों के सामने धरना दिये दिख रही हैं। ऐसे समय मदिरा-पान के सुखों का वर्णन करने वाला शृंगार-रस पूर्ण पद गाने से राष्ट्र का द्रोह सिद्ध होता है, यह तुम्हें अवश्य सोचना चाहिये था। तू ने मुझे सभा के मत का जो भय दिखाया, वह ग़लत था। लोगों का क्या? लोग तो गाना सुनने आते हैं। कुछ भी गाया तो वह उन्हें पसंद ही आयेगा, ये लोग ऐसे ही हैं। हम गुणी लोगों को सावधान रह कर, उन्हें भी अपने कर्तव्यों का ज्ञान हो, तथा वे जागृत हों, ऐसा व्यवहार व ऐसी बातें करना चाहिये। इसी लिये मैंने सभा के मत की तनिक भी चिन्ता न की। आज के इस प्रसंग को ध्यान में रखकर काम करते चलो।"

बहुत से लोगों का माना हो जाने पर, अन्त में पंडित जी गाने के लिये बैठे। उन्होंने एक मराठी का अभंग व दो हिन्दी के भजन गाये। 'अब की टेक हमारी, लाज राखो गिरधारी' यह भजन गाने से पहिले आपने निम्न आशय का थोड़ा सा सम्भाषण किया:—

"भयंकर कठिन प्रसंग आ पड़ने पर ईश्वर की कृपा का मनुष्य को क्या आधार होता है, तथा अत्याचारों का ईश्वर अन्त करके कैसे भक्तों का उद्धार करता है, इस भजन में दरसाया गया है?" इतना कह कर उस समय लोगों की हल-चल तथा सरकारी अत्याचारों के उग्र-ताण्डव का चित्र, प्रत्यक्ष घटना का वर्णन न करते हुये, बड़ी कुशलतापूर्वक लोगों के सामने रख कर गाना आरंभ किया। इस प्रस्ताविक भाषण से उस भजन में पौराणिक बड़े-बड़े लोगों के छलों के वर्णन ने पंडित जी के कण्ठ से निकलने वाले संगीत के रूप में निकल कर हृदय निचोड़ डाले। दूसरा भजन 'तू दयाल' था। वह गाते समय पंडित जी के सामने मानों साक्षात् देवता आ खड़े हुये हों, वे बिल्कुल मुग्ध हो गये तथा श्रोताओं को भी एक बड़े गंभीर आवरण ने घेर लिया। कितने ही सहृदयों के नेत्रों से अश्रु-जल की वर्षा होने लगी। इसके बाद उन्होंने 'शेवटची विनवणी संतजनी परिसावी' नामक अभंग गाया था, तथा उसका परिणाम भी श्रोताओं पर बिल्कुल पाहिले के भजनों का सा ही हुआ। यह लिखने में कुछ आपत्ति नहीं कि, पदों के अर्थ की ओर ध्यान देकर गाने से श्रोतागण केवल कसाई हुई आवाज़ की क्रीड़ा का ही अनुभव नहीं करते थे, वरन् आवाज़ के पीछे-पीछे शब्दों का भी पूर्ण आस्वाद कर सकते थे, यही पंडित जी के गायन की विशेषता थी। इस सम्बन्ध में कै. कवि जयकृष्ण केशव उपाध्ये (नागपूर) पंडित जी के स्वयं श्री-मुख से सुने हुए एक अभंग की स्मृति प्राय: कहा करते थे। 'किती वेळा जन्मा यावें' इस अभंग को गाते समय पंडित जी इस प्रकार शब्दों को रंग देते थे कि श्रोताओं को जान पड़ता था, मानो प्रत्यक्ष देवता से भिड़-भिड़ा कर झगड़ रहे हों।

इस सब जानकारी का वर्णन करने का अभिप्राय पंडित जी की गायकी से नहीं, वरन् उनकी राष्ट्रीय-दृष्टि से ही है। पंडित जी को राम-भक्ति का रंग कैसे चढ़ा, इसकी कथा बहुत ही उपदेशक है। लाहौर में पंडित जी प्रति-वर्ष होली के त्योहार पर विशेषतः रंग-पंचमी की रात को शहर के चुने हुए नागरिकों को बुलाकर शृंगार-रस पूर्ण चीज़ें गाकर सुनाते थे। उस समय विद्यालय की इमारत 'हीरामंडी' नामक स्थान पर थी। इमारत के सामने खुला हुआ बड़ा मैदान था। इतना बड़ा मैदान कि वहाँ प्राय: सर्कस कम्पनियों की छावनी पड़ी रहती। पंडित जी जब अपने दीवानखाने में गाना शुरू करते तो उस खुले हुए मैदान में गाना सुनने के लिये, लोग जमा होकर बीच-बीच में हर्ष-नाद कर उठते थे। ऐसी ही एक रात को पंडित जी का गाना हुआ। कॉफी-पान समाप्त होने के पश्चात्

निमंत्रित लोग अपने-अपने घर जाने के लिये उठे कि, इतने ही में लाला निरंजन नामक एक वृद्ध सज्जन पंडित जी के पास आये। उनके हाथ में रेशमी रूमाल में लिपटी हुई एक मोटी सी कुछ चीज थी। वे पंडित जी के सामने खड़े होकर सादर कहने लगे, "पंडित जी! जवानी ढलने के दिन आगये हैं। आप जवानों को शोभा देनेवाली चीजें गाते हैं। वह ठीक हैं; तो भी मनुष्य को भविष्य की भी याद रखना चाहिये, तथा उसके लिये मैं एक वस्तु लाया हूँ। उसे आप स्वीकार करें।" लाला जी ने रूमाल खोला और उसके अन्दर की तुलसीकृत-रामायण रूमाल सहित पंडित जी के हाथों पर रख दी। इसके पश्चात्, वे कहने लगे, "यह तुलसी दास की रामायण है। आप उसका वाचन-मनन करें। आप के पास किसी भी व्यवहारिक-गुण का अभाव नहीं है। फिर भी मेरे हृदय में सदा यही भावना रही कि ईश्वर-सेवा की ओर भी आपका ध्यान रहे, तथा आज ऐसा कुछ प्रतीत हुआ कि अपनी इच्छा आप से कह डालूँ और ईश्वर-सेवा का मार्ग भी प्रदर्शित करदूँ, इसी लिये मैंने यह साहस किया। आशा है, वह सार्थक होगा।" इतना कह कर वे पीछे हट गये। समस्त निमन्त्रित गृहस्थ यह सब बड़े आश्चर्य-पूर्वक देखते रहे। लाला जी का स्वरूप देखने योग्य था। गौर-वर्ण, चांदी सी सफ़ेद भरी हुई डाढ़ी, शानदार चहरा व वाणी में विलक्षण माधुर्य की विपुलता थी। लाला जी, पण्डित जी के एक अपनापन बरतने वाले हित-चिंतक व सलाह कार होने के कारण उनका उस समय का व्यवहार तथा भाषण पण्डित जी के अन्तःकरण पर साक्षात् मानों अंकित सा हो गया। उन्होंने बड़े प्रणामपूर्वक, व सादर उस ग्रन्थ को स्वीकार कर लिया, तथा उसी क्षण राम की भक्ति की अटल प्रतिज्ञा उन्होंने मन ही मन में करली। इस प्रतिज्ञा का फल कालान्तर में लोगों को दिखने लगा।

पण्डित जी के पिता एक प्रसिद्ध कीर्तनकार व दत्त—भक्ति के वातावरण में ही सदा रहते थे। अतः बिल्कुल बचपन से ही, पंडित जी को भक्ति-रस तो मानो घुटी में ही पिला दिया गया था। मार्गशीर्ष की प्रतिपदा से लेकर पूर्णिमा (दत्त-जन्म-दिवस) तक, पन्द्रह दिन पंडित जी लाहौर में नियत एकांत में दत्तोपासना के कुछ अनुष्ठान करते थे। इमारत की सबसे ऊपर वाली एक छोटी सी कोठरी में ही इन दिनों प्रायः वे रहा करते थे और २४ घंटे में वे किसी को दिखाई भी न देते थे। बड़े सबेरे ही, दूसरे लोगों के उठने से पहिले पंडित जी प्रातः क्रिया व स्नानादि कार्य समाप्त करके अपने कमरे में प्रवेश कर चुकते थे। अनुष्ठान के समय एक लंगोटी के अतिरिक्त उनके शरीर पर कोई वस्त्र न रहता था। अनुष्ठान का वृत्तांत जानने का कोई साधन न होने के कारण, उसका लिखना कठिन है। अनुष्ठान समाप्त होने पर दत्त-जयंती के उत्सव के बाद पन्डित जी अन्न-ग्रहण करते थे, जिससे इस अनुष्ठान का परिणाम उनके शरीर पर से स्पष्ट दृष्टिगोचर होता था। शरीर दुर्बल हो जाने पर भी उनके अंग पर कान्ति व चहरे पर तेज बढ़ जाता था। अन्न-ग्रहण के कुछ ही दिन पश्चात् शरीर की समस्त क्षति-पूर्ति भी हो-जाती। सारांश यह कि उनकी ईश्वरोपासना की प्रकृति-सिद्ध अभिरुचि को राम-भक्ति का अन्तिम-स्वरूप मिला। पहिले यही भक्ति वर्ष में केवल एक ही बार दिखाई देती थी। इसके पश्चात् राम-भक्ति के लिये समय की मर्यादा पूरी न हुई, वह क्यों? यह जानने योग्य बात है।

पन्डित जी का राम-भक्ति के प्रति अनुशासन अतिशय कठोर था। उस अनुशासन के लिये वे कब, किस पर, व कैसे दबाव डालते इसका किसी को भरोसा न था। एक बार जब वे अजमेर में थे, तो एक धर्मशाला के खुले अहाते में उन्होंने तुलसीकृत-रामायण का प्रवचन का उपक्रम किया। प्रवचन रात के समय होते थे। वहाँ एक दिन कोई कोटि-धीश सेठ जी आये थे। उन्होंने गादी-लोढ़ तथा सरपोश इत्यादि सामान पहिले से भेजकर अपने आराम का प्रबंध कर लिया था। पंडित जी का वाक-चातुर्य प्रसिद्ध है। ठीक निश्चित समय पर प्रवचन आरंभ हो गया। सेठ जी महाशय कुछ देर से आये, अतः अपनी जगह पर जब तक वे बैठें, तब तक श्रोताओं में उनके कारण कुछ गड़-बड़ व प्रवचन में कुछ विघ्न सा पड़ा। अतः पंडित जी को कुछ क्षोभ हुआ, किन्तु वे भले-मानस अपनी गद्दी पर बिराजते ही पैर फैला कर सो गये। बस, यह देखते ही पंडित जी का क्रोध उबल पड़ा और बड़ी ही कड़कदार आवाज में कहने लगे, "यह क्या सोने की आरामगाह है? सोना है तो इसी क्षण चलते बनिये। यह केवल श्रोताओं अथवा प्रवचनकार का ही अपमान नहीं, प्रत्यक्ष श्री. रामचन्द्र जी की बेअदबी है। उन सेठ महाशय को यह ताडना देते ही वे चौंककर घबरा गये, तथा अपनी शिथिलता को त्यागकर लोढ से आगे हटकर अन्त तक सचेत बैठे रहे। प्रवचन

(शेष पृष्ट २२ पर)

गायन-सम्राज्ञी बाई केसर बाई

[ले. श्री. ना. र. मारुलकर, संगीत-शिक्षक, पूना]

रातके दस बज चुके थे। जो देखो सो, गाना शुरू होने की बाट जोह रहा था। लगभग सात-आठ सौ लोगों के बैठने योग्य एक बड़ा हॉल श्रोताओं से खचा-खच भर गया था। इतने ही में केसरबाई ने तंबूरा मिलाया और सारंगी तथा तबला मिलाने के पश्चात् गाना आरंभ किया। बाई की शानदार भव्यमूर्ति, चहरे पर विद्या के तेज एवं पूर्ण आत्म-विश्वास से युक्त स्वरूप में, उन्हें बिल्कुल पहली ही बार देखने वाले श्रोताओं को भी, उनमें दुसरों की अपेक्षा कुछ विशेषता होने का भास हुआ। इतनी ही देर में अपनी अत्यन्त कमाई हुई आवज़ में 'षड्ज' लगाकर उन्होंने 'सावनी-नट, आरंभ किया। प्रथम सम में ही तज्ञ एवं अज्ञ श्रोताओं में उनकी प्रशंसा के रूप में 'वाह-वाह' की झड़ी लगादी। पहले ही सम पर उन्होंने अपने शिक्षण तथा अपनी तपस्या का अनुभव करा दिया। सांस रोक कर ताल के अंगों में बिलंवत भरने का ढग नवीन श्रोताओं को अत्यन्त आकर्षक तथा निपुण एवं गुणी लोगों को अध्ययनशील प्रतीत हुआ। तत्पश्चात् धीरे-धीरे उनकी तानों के क्रमशः फव्वारे छुटने लगे। जरा सी ही देर में बडी-बडी तानों की चक्की शुरू हो गई। वे प्रत्येक तान की चित्र-विचित्र, किन्तु आकर्षक एवं विद्वत्तापूर्ण व्यूह-सदृश रचना करती और उस सम के जोड़ इतनी कुशलतापूर्वक जमातीं, कि श्रोताओं को प्रत्येक सम पर केसरबाई की विद्वत्ता एवं तपश्चर्या का प्रत्यक्ष प्रमाण मिलता। इसी क्रम से उन्होंने कई पलटे इस प्रकार लिये, कि गुणी जनों को वे, जैसे प्रतीत हुए, उसका केवल विचार ही किया जा सकता है। उन्हें जान पड़ा, कि वह तान मानो बिजली सी चमकाती हों। चमक चुकने पर उसका विचार ही क्या व कैसे किया जा सकता है ! हां, जीवन-भर वह अवश्य ही न भुलाई जा सके गी। इतने ही में 'सावनी-नट' समाप्त हो गया।

रसिकों को ताज महल देख लेने जैसा समाधान हुआ। भावुकों को रामायण, महाभारत एवं भगवद्गीता के पढने और सुनने से जो सात्विक एवं उच्च आनंद मिलता है, वहीं आनंद, केसरबाई नें उत्पन्न कर दिखाया। इसके बाद उन्होंने 'मियां-मल्हार' व 'रायसा-कानडा' राग गाकर विश्राम किया। लगभग आधे-घंटे विश्राम करने का बाद 'जयजय वंती' शुरू करके 'शुद्ध-नट' 'गौड मल्हार' और 'अडाणा' राग क्रमशः गाकर अन्त में, सर्किल के मंत्री (Secretary) की 'फर्मायश' पर 'ललित' गाकर तीन बजे अपना गाना समाप्त किया। गाने के समय, तथा वह समाप्त होजाने पर भी, उन्होंने श्रोतोओंके चारों-ओर एक अत्यन्त उच्च, भव्य एवं शान्त वातावरण उपस्थित कर दिया था।

लगभग १२ वर्ष पूर्व, पहली बार मैंने बाई केसर बाई का गाना सुना था। उसके बाद उनका गाना सुनने का मुझे कई बार सौभाग्य प्राप्त हुआ है। अस्तु, उनके प्रति जो मेरे विचार हैं, वे ही मैं लिखूंगा, तथा वह मेरा कर्तव्य भी है। जो परिस्थिति अंधों की हाथी के वर्णन करने में होती है वही बाई की कला के सम्बन्ध में लिखते समय मेरी भी हो जाना कोई आश्चर्य की बात नहीं, तथा किसी भी निःपक्ष रसिक की साधारणतः ऐसी ही दशा होगी।

मैंने जब पहिल-पहिल बाई का गाना सुना, तो मुझे दृढ निश्चय होगया था कि यह गायकी कुछ विशेष है। अतः उनका गायन सुनने का जब-जब अवसर आया, मैंने वह कभी भी न गंवाया। मेरे सौभाग्य से मरहूम खां साहब नथ्थन खां [म. खां अल्लादिया खां के भतीजे], खां साहब भूर्जी खां, बाई मोघूबाई कुर्डीकर व रा. गोविंद बुआ शालिग्राम, इत्यादि का गाना मुझे बहुत कुछ सुनने का अवसर मिला था, अतः बाई की गायकी में, कुछ उच्च भूमिका के रूप में, समझने लगा।

बाई में, एक 'भरतीदार' गायिका होने के लिये उपयुक्त साधन–सामग्री विपुलतापूर्वक विद्यमान हैं। उनके विषय में कुछ लोगों का विचार है कि बाई को केवल उनके घराने के ही कुछ ठहरे हुए अस्थाई–अन्तरे याद हैं। किन्तु, मैंने उनकी कई ऐसी बैठकों में भी गाना सुना है कि जिनमें उन्होंने कभी भी न सुनी हुई चीज़ों एवं रागों की मानों ख़ैरात बाँटी हो। इसके अतिरिक्त किसी ऐसे व्यक्ति की गायकी, जिसे केवल मर्यादित अस्थाई व अन्तरे ही याद हों, इतनी गूढ़ एवं गम्भीर होना संभव ही नहीं।

स्वरों की सत्यता जैसा गुण, जो अन्यत्र बहुत ही कम गायकों में है, इनमें दर्शनीय एवं सुनने योग्य है। जिस समय बाई 'बसंती केदार' व 'बसंत–बहार' जैसे जोड़ राग गाती हैं, तो उनके जोड़ों में शास्त्र–रूप से सुनने वालों को भी मेरे कथन का प्रमाण मिल जायगा। जहां एक राग समाप्त होकर दूसरा आरंभ होता है, वहां स्वरों का सच्चा-स्वरूप बनाये रखना कितनी बेढब बात है; यह केवल उनके विचार में ही आसकती है, जिन्होंने उस प्रकार का कभी प्रयत्न किया हो। अन्य को तो वह एक विशेष प्रकार की गम्मत (दिल्लगी) ही प्रतीत होगी।

इस विषय में कुछ लोगों की ऐसी भ्रमात्मक धारणा है, कि बाई का स्वर जिस राग पर जैसा उपयुक्त चाहिये, वैसा नहीं लगता। इस पर मेरा अपना कहना यह है, कि उन रागों के स्वरों की परीक्षा करते समय एक ही स्वर देखने की अपेक्षा, उस स्वर का उस राग पर, सब मिलाकर जो परिणाम होना चाहिये, वह होता है कि नहीं, केवल इतना देखना ही आवश्यक है। एक राग यदि भिन्न-भिन्न घरानों के गायकों से गवाया जाय, तो बारीकी से देखने वाले को भली प्रकार, उनकी भिन्न-भिन्न स्वर-रचनाओं के अनुसार, स्वर ऊँचे–नीचे हुए विदित हो जायेंगे। परन्तु, सारे विद्वान् गवैयों की रागों के (मूल–स्वरूप यदि एक ही हुआ तो) स्वरूप समान ही रहेंगे। इस दृष्टि से अमुक को ठीक कहकर उसे विद्वान् तथा तमुक को ग़लत बताकर वह अविद्वान् इत्यादि ठहराने की कुछ आवश्यकता नहीं है।

केसरबाई विशेष कर जोड़–राग, अथवा अप्रसिद्ध राग ही गाती हैं। कितनी ही बार अच्छे–अच्छे गुणी लोगोंको भी उन रागों के नाम नहीं समझपाते; परन्तु इसका अभिप्राय यह नहीं है कि जिसे रागों के नाम नहीं समझ पाते वे विद्वान् ही नहीं और यदि किसी को संयोगवश वह समझ में आजाये तो वही विद्वान् एवं रसिक हैं। यदि रागों के नाम समझ में न भी आये, तो उन में सच्चा मर्मज्ञ,' गानेवाला रागोंकी रचना किस ढंगसे करता है? उसका राग पर प्रभुत्व कैसा है? तथा अस्थाई एवं अंतरों में जिन नियमोंका ताना–बाना पूरा है। उनका गायक अन्त तक पालनभी करता है अथवा नहीं,' इत्यादि ही देखेगा। उसका व्यवहार में आने वाला एक सादा उदाहरण इस प्रकार दिया जा सकता है, कि एक व्यवहार चतुर गृहस्थ के सामने कोई अपरिचित व्यक्ति आये तो उसका नाम–ग्राम ज्ञात न होने पर भी अपने बोलने–चालने से ही उसकी संस्कृति, शिक्षा एवं सर्वसाधारण–पात्रता को वह व्यवहारी–व्यक्ति तुरन्त परख सकता है। वह किस वर्ग का है, यह निश्चित करने में उसे उसके नाम–ग्राम की कुछ भी अड़चन अथवा आवश्यकता प्रतीत न होगी। ठीक यही संगीत–रसिकों के साथ है। इसके अतिरिक्त एक ही (विशेषतः अप्रसिद्ध) राग के विषय में भिन्न–भिन्न समझ तथा मतभेद भिन्न–भिन्न विद्वानों में अविचल हैं। मुझे स्वयं ऐसे रागों की की कितनी ही चीजें मिली हैं, कि उनके नाम तो मुझे मालूम ही नहीं; परन्तु उनके सम्बन्ध में मैंने अनेकों विद्वानों से पूछ-ताछ की थी, तो कुछ ने कहा कि उन्हें उन रागों के नाम मालूम नहीं थे और कुछ ने परस्पर-विरोधी नाम बताये।

बाई पर कितने ही और लोग भी ऐसे आक्षेप करते हैं, कि उनके राग–नियम अत्यन्त 'ग़लत' होते हैं। अतः केवल यह आक्षेप विचारणीय है, कि उन्हें विद्वान् कहना निपट अनाड़ीपन एवं मूर्खता है।

भिन्न–भिन्न घरानों के राग–नियम भिन्न हो सकते हैं। इस दृष्टि से 'यह नियम ठीक' और 'वह गलत है' ऐसा कहने का ढाढस किसी को नहीं करना चाहिये। इसके अतिरिक्त एक ही घराने में एक ही राग को उसी चीज़ के अंगों में भिन्न-भिन्न नियमों एवं पद्धतियों में गाते हैं। उदाहरणार्थ 'काफ़ी–कानड़ा' राग में 'सुखकर आई' 'लाई रे मधु पीया,' व 'डार–पात बोला' ये चीजें भिन्न–भिन्न नियमों से गाई जाती हैं, यह जानकार वाचकों ने अनेकों बार अनुभव किया होगा।

केसर बाई की बैठक में कितनी ही बार यह देखने में आता है, कि उनकी 'तबीयत' लग गई, तो उस समय यदि उनके 'कानडे' के प्रकार शुरू होजाते तो एक के बाद एक भिन्न-भिन्न प्रकार के कानडों की क़तार लग जाती; 'नट' के प्रकार शुरू हो जाते तो 'नट' के ही भिन्न-भिन्न प्रकार और यदि 'मल्हार' के प्रकार शुरू होते तो 'मल्हार' ही के प्रकारों की झड़ी सी बंध जाती है। इस प्रकार से गाने में' एक में दूसरे राग के उलझ जाने तथा सम्मिश्रण का भय रहता है, अतः ऐसे कठिन दाव-पेच के काम करना विद्वत्ता के शिखर पर पहुँच कर ही संभव है। सर्व-साधारण श्रोताओं को वे सारे राग एक जैसे ही प्रतीत होंगे। इतना होते हुए भी उनके गाने का रंग तो केवल उत्तरोत्तर चढ़ते हुए क्रम से ही बढ़ता रहता है। केसर बाई को विद्वान् न मानने वालों को ऐसी अनेकों बातों पर, बिल्कुल शांतिपूर्वक अवश्य ही विचार करना चाहिये। इस प्रकार यदि वे विचार करें तो उनकी अन्तरात्मा (inner-voice) अवश्य इस बात की साक्षी देगी कि 'केसर बाई की विद्वत्ता असाधारण है;' फिर वे बाह्य-रूप से उदारता पूर्वक उसे चाहे मानें अथवा न मानें।

इसके अतिरिक्त यदि दूसरी भाँति विचार किया जाय, तो यह ध्यान में रखना पड़ेगा, कि संस्कृत में सौ मेंसे ९६ अंक पाने वाला विद्यार्थी शंकर-सेठ की शिष्य-वृत्ति देने योग्य है, अथवा शेष ४ अंक नहीं मिले इस अपराध में वह छड़ियों की मार का पात्र बनने योग्य। कमल-पुष्प अत्यन्त सुन्दर होने के नाते परमेश्वर के चरणों में अर्पण किया जाय, अथवा कीचड़ में पैदा होने कारण दूषित ठहरा कर पैरों-तले रौंध दिया जाय। किसी उच्च-कलाकार द्वारा चित्रित एक सुन्दर बालक के चित्र को देखकर, उसका आनन्द-भोग करना छोड़कर, फुट-रूल (Scale) हाथ में ले, चित्र में बालक के कान-नाक कितने लम्बे हैं इस, सब की छान-बीन कौन करेगा? सच्चे-रसिक को चित्र-लिखित बालक के मुख पर निर्व्याज (सरल) भाव देखकर, वैसे ही बालक के फूले-फूले कोमल तथा सुडौल अंग देखकर आनन्द ही होगा।

इस सम्बध में एक और बात के स्पष्टीकरण (खुलासा) की आवश्यकता है और वह इस प्रकार, कि ऐसे कुछ टीकाकारों ने बाई के गायन के विषय में टीका करते समय उनकी ध्वनि मुद्रिका का, आधार-भूत मानकर, उपयोग किया है। हम सबके सौभाग्य से बाई प्रत्यक्ष स्वयं अपनेही सामने गा सकने पर भी ध्वनिमुद्रिका को आधार क्यों मानते हैं? गंगा के तट पर रहने वाले को, गंगा कैसी होती है, यह देखने के लिये 'गंगाजली' लाना आवश्यक नहीं। केवल ध्वनि-मुद्रिका पर से ही उस कलावंत की योग्यता निश्चित करना कितना अनुचित होगा, यदि यह देखना हो तो म. खां साहब रहमत खां, कै. रामकृष्ण बुआ वझे, व रा. मास्टर कृष्णा राव, की विशेषतः आधुनिक नई ध्वनि-मुद्रिकायें अवश्य सुनें और विचार करें तो उपर्युक्त गायकों की ध्वनि मुद्रिका की अपेक्षा उनकी गायकी कितनी गुना अधिक श्रेष्ठ थी, इसका सहज ही में ज्ञान हो जायगा।

केसर बाई के सम्बंध में एक और आक्षेप किया जाता है। वह यह कि, बाई का शब्दोच्चार अत्यन्त गलत होता है। परन्तु, यह बड़े दुःख के साथ कहना पडता है, कि ऐसा कहने वाले ने शब्दोच्चार पर तनिक भी विचार नहीं किया; क्योंकि मेरा तो निश्चित मत यह है कि बाई का शब्दोच्चार वास्तव में, आदर्श समझा जाने योग्य है। जो संगीत में धुरधर विद्वान् हैं और जिन्होंने उच्चारों के विषय में गूढ़ एवं गम्भीर विचार किया है (परन्तु, वे अल्लादिया खां साहब के घराने के नहीं हैं,) ऐसे एक महाराष्ट्र के उच्च एवं माने हुए गृहस्थ ने बाई के गाने के अनुसार ही उनके उच्चारों के विषय में मुझसे अनेकों बार मुक्त-कंठ से प्रशंसा की है।

कुछ आक्षेप-कर्ताओं का यह भी कहना है, कि बाई के गायन में रंग, चित्ताकर्षण, तथा हृदय-स्पर्शी सामर्थ्य नहीं (जिस गाने में रंग नहीं, वह गाना ही नहीं, अतः केसरबाई जो गाती है वह गाना ही नहीं है--यह उनका अन्तिम निर्णय एवं निष्कर्ष होता है)। इसके विषय में केवल चार शब्द लिखना आवश्यक हो जाता है।

आरंभ में, मैंने जिस बैठक का वर्णन किया है, उससे पहले, उसी सर्किल में उनकी और दो बैठकें हो चुकी थीं, अतः वह तीसरा गाना था। बाई का गाना यदि, सचमुच रंगीला तथा चित्ताकर्षक न होता, तो सर्किल की पहली बैठक में वह भी केवल बड़ा नाम सुनकर केवल भीड़ ही हुई होती और किसी समय तो श्रोतागण अवश्य ही उठकर चल दिये होते। परन्तु प्रत्यक्ष अनुभव

इसके बिल्कुल विपरीत ही हुआ। पहिली बार से दूसरी बार अधिक और दूसरी से तीसरी बार और भी अधिक भीड़ हुई। अन्त में, तीसरी बार सर्किल के चालकों को कुछ अति आवश्यक कारणों से इतना अधिक प्रवेश–शुल्क रखना पड़ा कि जितना आज तक किसीने किसीके भी गाने पर न रखा होगा; तिस पर भी लगभग ७–८ सौ श्रोतागण एकत्रित हुए और रात के १० बजे से लेकर प्रातः ३ बजे तक समस्त श्रोतावृन्द गाना सुनते रहे, वह क्यों? बाई के गायन मे चित्ताकर्षक रंग नहीं है, क्या इसी लिये? सब जगह तथा हर समय रंग और आकर्षण की एक ही कसौटी कैसे उपयुक्त हो सकती है? कै. नाथ माधव अथवा प्रा. फड़के की लेखन कला का लालित्य यदि सर्व साधारण वाचकों को रंग सकता हैं, तो कालीदास के काव्य में विद्यमान रंग किसी दूसरेही वर्ग के लोगों को रंग सकेगा। इसके लिये केवळ सद्–पात्रता एवं सद्प्रवृत्ति की ही आवश्यकता है।

कुछ आक्षेपक, बाई के गायन एवं घराने के विषय में बातें करते समय, उस घराने में लय अत्यन्त ठाय (धीरी) रखते है, जो एक दोष है, इतनी ठाय लय रखने की कुछ भी आवश्यकता नहीं क्यों कि ऐसी लय रखना भूल है इत्यादि, ऐसे ही अनेकों बार अटल उद्गार प्रकट करते हैं।

सर्व साधारण मनुष्य की वृत्ति ही कुछ स्वभावत: ऐसी होती है, कि जो वह स्वयं करता अथवा समझता है वही केवळ ग्राह्य, और जो दूसरा करता अथवा समझता है वह निपट त्याज्य; परन्तु इससे तनिक ही उच्च भूमिका में सर्व साधारणत: विचार करनेवाला, दूसरे के लिये हुए कार्य में वास्तव में कुछ तथ्यांश है अथवा नहीं, यही बारीकी से देखने का सफल प्रयत्न करेगा।

वास्तव में, यह कहने की, कि गाने में अमुक लय ही होना चाहिये कोई आवश्यकता नहीं। जिसे जो लय शोभा दे और मन भावे वह वही लय रखे। अभिप्राय केवल इतना है कि उस लय में वह कुछ करामात दिखा सकता है या नहीं भिन्न–भिन्न घरानों में विशेश काम करके दिखाने वाले महापुरुष हो चुके हैं तथा आज भी हैं। इसी लिये तो उनकी गायकी पर से ही घरानों का निर्माण हुआ।

अब बाईने इनकी विद्या का संपादन किस प्रकार किया और उसकी रूप–रेखा कैसी तथा वह किस कोटि की है, इस पर विचार करना अनिवार्य हो गया है।

केसरबाई का प्रत्यक्ष शिक्षण कम से कम २५-३० वर्ष तक लगातार हुआ है। वर्तमान काल में इतनों वर्षों तक शिक्षण प्राप्त करनेवाला गायक कदाचित ही देखने को मिले। उसी प्रकार उनके सौभाग्य (व संगीतकला के सौभाग्य) से म. खां साहब अल्लादिया खां जैसे गुरु उन्हें मिले। इस प्रकार शिक्षा प्राप्त करने में उन्हें कितना कष्ट एवं व्यय–भार झेलना पड़ा होगा वह ऐसे लोगोंको ही विदित हो सकता है, जिन्होंने इस कला के लिये थोड़े–बहुत भी संकट झेले और अपना गाढा पसीना बहाने के सुअवसर आमंत्रित किये हों। ईश्वर प्राप्ति के मार्ग में आनेवाले कष्टों एवं परिश्रम की कल्पना एक नास्तिक क्या कर सकता है इतनी विद्या एवं कीर्ति तथा उच्च श्रेणी मिलने के पश्चात् भी आज तक उनकी महनत सदैव चलती ही रहती है, तथा इसी में उनकी महानता का स्रोत छिपा हुआ है।

अत्यन्त निर्दोष व खुली हुई आवाज़ निकालना, तथा उसे गल की सुविधा के लिये कहीं भी बारीक–मोटी न करते हुए, मंद्र पंचम से वही तार मध्यम–पंचम तक एक सा चलाना, इसी योग्य महत्व पूर्ण गुण को बाई ने घोर परिश्रम, समझदारी, तथा योग्य गुरु के मार्ग–दर्शन द्वारा साध्य किया है।

बिलंवत में स्वर की 'आस' रोक कर, खुली आवाज़ में बिलंवत कहना (वह भी लय के अंगों में) विशेष अभ्यास के बिना साध्य नहीं हो सकता। बाई के गायन में बिलंवत नहीं है, ऐसा कहने वाले को यह बता देना आवश्यक है, कि मैंने स्वयं पाहिले अनेकों बार उत्तम प्रकार से की हुई उनकी बिलंवत सुनी है और आरंभ ही में लिखे गये कार्य–क्रम में भी विशेषत: 'मियां–मल्हार' व 'जय–जयवंती' में उन्होंने लगभग ३५ मिनिट तक उत्तम–प्रकार की बिलंवत की थी।

तानों के विषय में उन्होंने जो कुछ भी किया है, उसका वर्णन करने की विशेष आवश्यकता इस लिये नहीं है कि उनकी तानों के सम्बंध में सबका एक ही मत है। फिर भी इस सम्बंध में थोड़ा सा उल्लेख करने के मोह का निग्रह नहीं हो पा रहा है।

उनकी तानों की निर्मलता, गमक, तानों में स्वच्छ-आकार, स्वर-लेपन, जोड़-राग, गाते समय का गले पर प्राप्त प्रभुत्व एवं कल्पना का आवेग, तानों में लय के भिन्न-भिन्न वजनों के आकर्षक तथा ठसकेदार धक्के; इत्यादि, उनकी और उनके घराने की गायकी की विशेषता है। उसी प्रकार सम पर, कई नई-नई योजनाओं के चातुर्य, किन्तु अतिशय उत्तम-रीति, से आना संगीत में विद्वत्ता का एक महान् चिन्ह समझा जाता है। यह गुण बाई में इतनी उच्च-कोटि का है जो कदाचित् ही किसी और में पाया जाय।

अस्थाई-अंतरे भली-प्रकार कह पाना और उन्हें अच्छी तरह भर सकना भी विद्वता का एक महत्व पूर्ण अंग है। इस सम्बंध में बाई को पूर्णता (उनके घराने की कीर्तिके अनुसार प्राप्त है। उनके अस्थाई-अंतरे कहने तथा भरने के प्रत्यक्ष-ढंग की कल्पना, जिस किसीने भी उनका गाना प्रत्यक्ष तथा भली प्रकार सुना हो, वही कर सकता है।

उपर्युक्त सारे विवेचन पर से, उस गायकी के, प्रत्येक-विभाग में कितने लोग आते हैं, वे सब कल्पना के योग्य हैं।

इस स्थान पर 'संगीत-क्षेत्र' में के कुछ विद्वानों के बाई के विषय में प्रकट किये हुए मतों का उल्लेख अनुचित न होगा:—

कुछ वर्ष पूर्व कै. रामकृष्ण बुआ वजे के पास जब रा० गजानन बुआ जोशी सीखते थे, तब उन्होंने बम्बईमें पहलो बार बाई का गाना सुना। उन पर इस गानेका ऐसा अच्छा प्रभाव पड़ा, कि उस समय सहज ही उन्होंने कै. बुआसाहब से कहा, 'मुझे बाई का गाना अत्यंत ही प्रिय लगा। मैंने आज तक ऐसा गाना कभी नहीं सुना। बाई के विषय में आपका क्या मत है?" यह प्रश्न रा. गजानन बुआने अत्यन्त कौतूहल वश कै. बुआ साहब से किया तो उन्होंने-अपनी पुरानी पीढ़ि में एक अत्यंत विद्वान् माने गये वृद्ध गृहस्थ—जो उद्गार प्रकट किये हैं, वे विचारणीय हैं। कै. बुआ साहब ने कहा, "केसर बाई के गायन का वर्णन क्या और कैसे किया जाय? एक अत्यन्त सुगन्धित पुष्पों का गुच्छा बनाकर उस पर बहु-मूल्य इत्र छिडकने के पश्चात् उस गुच्छे में जो योग्यता एवं सुंदरता विद्यमान् होती है वही केशर बाई के गायन में है।" इसके पश्चात बाई का गाना, सुनकर उनके प्रति रा. गजाननराव का आदर दुगुना हो गया।

लगभग १०—१२ वर्ष पहले (१९३५ या १९३६) बम्बई के लक्ष्मी-बाग में एक सर्किल की ओर से अखिल-भारत में मधुर-कंठ के लिये प्रसिद्ध, तथा जिनके गाने में पाई जानेवाली प्रफुल्लता के विषय में सबका एक ही मत था, ऐसी एक गायिका के गाने का कार्यक्रम सायंकाल के समय होना निश्चित किया गया था। सर्किल के मंत्री ने उस गाने के समय सुनने के लिये आने का आग्रहपूर्ण निमंत्रण केसर बाई को दिया था। गाने वाली बाई ने 'पूरिया-धनाश्री' आरंभ की। लगभग १५ मिनिट में बाई केसर बाई अपनी पुत्री सहित आई। 'पूरिया-धनाश्री' समाप्त होते ही उस गानेवाली बाई ने केसर बाई से अत्यन्त नम्रतापूर्वक कहा, "आपके सामने गाने योग्य मैं नहीं।" यह सुन कर केसर बाईने भी उतनी ही नम्रता-पूर्वक कहा, "आप तो अच्छा गाती हैं। जो आप गाती हैं, वह मुझे कहाँ आता है?" अर्थात् वह गानेवाली बाई भी अपनी गायकी की अधिकारिणी थी।

आरम्भ में ही उल्लेख किये गये पूना म्युज़िक सर्किल के गाने में आग्रा घराने के एक अग्रसर विद्वान् गुरु ने अपने एक शिष्य को यह कह कर भेजा था, "तुमने केसरबाईका गाना यद्यपि अनेकों बार सुना है, फिर भी पुनः एक बार ज़रूर सुन आओ।"

ऐसे ही महाराष्ट्र में एक नामांकित गवैये केसरबाई का गाना सुनकर अक्षरशः पागल हो गये थे। उन्होंने यह बात मुझे अनेकों बार कह कर बताई थी," गाना आये तो ऐसा, अन्यथा हम तो बस गाते ही हैं।"

उपर्युक्त उदाहरण किसी को छोटा बताने की दृष्टि से नहीं लिये गये हैं। वे तो केवल ऐसे लोगोंके लिये जो केसरबाई को विद्वान् नहीं मानते, तथा सर्वसाधारण वाचकोंके लियेही दिये गये हैं, जिन्हें केसरबाई का गाना प्रत्यक्ष सुनने का सुअवसर प्राप्त नहीं हुआ है। इसमें एक और महत्व की बात देखने में आती है, और वह ऐसी कि जिनके उदाहरण दिये गये है, उन्होंने कुछ भी भेद अथवा दुराव न रखकर, बाईके गुणोंका गौरव-गान अत्यन्त सहृदयता से किस प्रकार किया है, तथा एक सच्चा गुणी दूसरे सच्चे गुणीका आदर कैसे कर सकता है, यह सब दर्शाने के लियेही वे दिये गये हैं। अस्तु, यदि केसरबाई को अविद्वान् ठहराना हो तो पहले उपर्युक्त लोगोंको अरसिक ठहराना आवश्यक है; तथा जिसे ऐसी तैयारी का अधिकार प्राप्त हो, वही प्रसन्नतापूर्वक केसरबाई पर अविद्वत्ता का आरोप लगावे।

गत् कई वर्षों से हमारे तथा संगीत–कला के दुर्भाग्य से कितने ही बड़े–बड़े कलावंत इमसे सदा के लिये बिछुड़ गये हैं, तथा परिस्थिति कुछ ऐसी चमत्कारिक सी हो गई है कि जो कलाकार चिर–निद्रा में सोगये हैं, इनके रिक्त–स्थानों की पूर्ति करने वाला व्यक्ति बन ही नहीं पाता। वह स्थान तबसे रिक्त ही पड़ा हुआ है। ऐसी दशा में केसर बाई जैसी कला–संपन्न–विभूति की अतुल संपत्ति सौभाग्य से आज तक हमें प्राप्य है, तो उस कला रूपी संपत्ति का उचित गौरव–गान करना छोड़कर, उसे निन्दित एवं लज्जित करने के, व्यर्थ के उपद्रव में हम भाग लेते हैं, यह एक अत्यन्त ही खेद का विषय है। अपना और कला का दूसरा कौन सा दुर्भाग्य होगा?

आज तक संगीत–कला में बड़े–बड़े कलावंत हुए हैं और आज भी हैं। संगीत–कला के इतिहास में इन कलावंतों ने अपने नाम अजर–अमर कर रखे हैं। बाई केसर बाई का नाम भी इस संगीत–कला के इतिहास में स्वर्णाक्षरों में लिखा गया है, इसमें तेल–भर भी शंका नहीं है।

इसके अतिरिक्त बाई में कुछ दोष हैं, यदि यह मान भी लिया जाय, तो उसके सम्बन्ध में इस प्रकार विचार करना पड़ेगा, कि दोष किसमें नहीं हैं? प्रत्येक–प्राणी में कुछ न कुछ दोष तो होते ही हैं, अतः सद्गुणों के लिये आदर प्रदर्शित करना ही चाहिये। आज तक ऐसा कोई भी कलावंत नहीं हुआ है और न भविष्य में ही होने की सम्भावना है, कि जिसकी कला में एक भी दोष न हो। दोष निकालने का यदि संकल्प ही करलिया हो तो फिर प्रत्येक में दोष बताये जा सकते हैं; किन्तु, हंस–क्षीर–न्याय ही रसिक–वृत्ति का सच्चा दर्शक है। दूसरों में दोष देखना अथवा निकालना अत्यंत सरल है; परन्तु, दूसरे में क्या गुण है, यह समझने के लिये सच्ची रसिक–वृत्ति की ही वास्तव में आवश्यकता है और दूसरे के गुणों को सहृदयता पूर्वक स्वीकार करना तथा उन्हें आदर की दृष्टि से देखने में वस्तुतः सच्चे–रसिक के अंतःकरण की उदारता प्रकट होती है।

'पत्र–व्यवहार'

श्रीयुत सम्पादकजी!

सादर नमस्कार स्वीकार हो! वि. वि. यह है कि आपके प्रत्येक अंक में संगीत व कलावंतो के विषय में विपुल उपयुक्त जान कारी पढने में आती है, तथा मेरा विश्वास है कि मेरे ही समान मेरी श्रेणी के अन्य विद्यार्थियों को अवश्य ही इससे बड़ा लाभ पहुँचता होगा। मैं 'गन्डा–बाँधना' इस प्रथा के विषय में कुछ जानकारी जानाना चाहता हूँ, अतः कृपा करके क्या आप अथवा वाचकों में से कोई सज्जन इस सम्बंध में सची जानकारी देने का कष्ट करेंगे?

नवीन विद्यार्थियों को, 'गंडा बाँधना' किसे कहते हैं, इस विषय में ठीक ज्ञान नहीं होता। यह अनुभव में आया है कि कुछ गायक गंडा–बाँधे बिना सिखानेके लिये तैयार ही नहीं होते। कुछ गायक तो ऐसी शर्तें रखते हैं, कि गंडा बाँधने के लिये अमुक रकम ही देना पड़ेगी। ऐसा भी अनुभव हुआ है कि किसी विद्यार्थी ने यदि यह सब शर्तें किसी प्रकार मान भी लीं और गंडा बाँधलिया, तो भी वे उस विद्यार्थी को "आज मुझे समय नहीं है कल आना।" इस प्रकार हर बार कह कर इतना थका (थका) देते हैं, कि विद्यार्थी अन्त में गायन सीखने का नाद ही छोड़ देते हैं। कितने ही गवैये तो गंडा बाँधकर रकम ले लेते हैं और फिर २–३ महिनों के बाद कह देते हैं कि 'उन्हें सिखाने के लिये समय ही नहीं, किसी और के पास सीखो'। इस प्रकार विद्यार्थीको एक गन्डे के बाँधने का दंड भर कर, दूसरे ही उस्ताद के पास जा कर गंडा बाँधने की तैयारी करनी पड़ती है। गंडा बाँध लेने पर भी, उस्ताद लोग नये–नये कई दूसरे ही ढंगोंसे विद्यार्थियों से धन छीनकर संचय भी करते हैं। कभी कहते हैं," मुझे शेरवानी का कपड़ा ही ला दो," तो कभी" मुझे रिस्टवॉच ही ले दो" इत्यादि।

विद्यार्थियों की सहनशीलता की भी कुछ मर्यादा तो अवश्य होतीही है। बे हिसाब धन–व्यय होता है, तथा प्रति दिन गुरुजी के पीछे–पीछे फिरते–फिरते कई घन्टे व्यर्थ जाते हैं सो अलग ही। अस्तु,'गंडा बाँधना' क्या है, तथा उसके नियम क्या हैं? इत्यादि, समझाने में मुझ जैसे ऊबे हुए विद्यार्थी पर बड़ा उपकार होगा।

अमृतकुमार (बम्बई)

कलाकारों के क़िस्से

हमारे वाचकों मेंसे जिन महानुभावों को 'गवैयों व बजवैयों' के मनोरंजक किस्से ज्ञात हों, वे उन्हें लिखकर हमारे पास भेजने की कृपाकरें। ये क़िस्से मनोरंजन, विनोद तथा बोध संबधी और सच्चे हों। पसंद आनेपर, वे समयानुकूल इस विभागके अन्तर्गत छापे जायेंगे, तथा पुरुस्कार-स्वरूप, ऐसे प्रकाशित क़िस्से भेजने वाले सज्जन को आगामी-मास का 'संगीत-कला-विहार' का अंक निःशुल्क (मुफ्त) मिलेगा। नापसंद क़िस्से वापस मँगाने के लिये, प्रेशक 'डेढ़ आने' के पोस्ट टिकिट भेजें।

'संपादक'

(१) कै. पं. बाबा दिक्षितः—

म. खां साहेब हस्सू खां की शिष्य-मंडली में उनके पट्ट-शिष्य में एक कै. बाबा दीक्षित भी थे। उनकी आवाज़ इतनी मधुर और गायकी इतनी सुन्दर थीं कि उनके गुरूजी ने ही उन्हें 'नीलकंठ' की पदवी दी थी। जब मैं गवालियर में शिक्षा प्राप्त कर रहा था, तो उनके विषय में मैंने बहुत से किस्से सुने। बैठक में न गाने का संकल्प, उन्होंने अपने गुरूजी (म. हस्सूखां) के ही हाथों पर जल छोड़कर किया था। इस विषय में निम्न दो कथायें प्रचलित रूप से सुनी जाती हैं :—

बाबा दीक्षित की तैयारी इतनी अच्छी थी, कि उनकी गायकी की तुलना में किसी की भी गायकी का रंग श्रोता ओं पर न जमता था। यह देखकर हस्सू खां ने सोचा कि बाबा यदि इस प्रकार महफ़िलों में नाम कमाने लगा, तो अपने पुत्र इत्यादि में से किसी को संसार में कीर्ति न मिलेगी; क्यों कि बाबा के महफ़िल में रहते हुए कोई भी अपना रंग नहीं जमा पायेगा। अस्तु, विद्यादान समाप्त होने पर खां साहब ने बाबा से गुरू-दक्षिणा माँगी। बाबा ने तुरन्त प्रसन्नतापूर्वक कहा, "गुरूजी कहें उसी प्रकार और उतनी ही गुरु-दक्षिणा देने को मैं तैयार हूँ।" हस्सू खां ने अपनी पानी की झारी सामने रखदी, और अपना दाहिना हाथ आगे करके बोले, "मैं जिस प्रकार कहूँ, उस प्रकार तुम यह पानी संकल्प के रूप में छोड़ो।" बाबा दीक्षित मानो तैयार ही बैठे हे। झट झारी उठाली। तब हस्सू खां ने कहा, "तुम अब यह वचन देकर, यह पानी छोड़ो कि तुम इसके पश्चात् कोसी भी महफ़िल अथवा जल्से में नहीं गाओगे।" एक सच्चे शिष्य की भांति बाबाने निःसंकोच होकर वह वचन दिया और गुरूजी के हाथपर पानी छोड़ दिया। तबसे बाबा दीक्षितने कभीभी बैठक इत्यादि में नहीं गाया। उनका गाना केवल उनके घर पर, देवालय में अथवा भोजन के समय श्लोक के रूप में ही लोग सुन पाये।

यही क़िस्सा कुछ लोग इस प्रकार कहते हैं, कि एक बार हस्सू खां के यहाँ बहुत से गवैये-महमान आये थे। उन सब की एक बड़ी भारी महफ़िल हुई। अन्त में, हस्सू खां ने अपने शिष्य बाबा दीक्षित को गाने के लिये बैठाया। बाबा ने उस दिन इतना अच्छा गाया कि उनसे पहले के लोगों का गाना मानो कुछ गाना ही न था, बस यही सारे श्रोताओं को जान पड़ा। इस पर उन गवैयों में से किसी एक को इतना क्रोध आया कि वह तुरन्त अपनी तलवार खींच कर बाबा को मारने के लिये उठ खड़ा हुआ। भाग्यवश, हस्सू खां ने उसे रोक लिया और किसी प्रकार समझा-बुझाकर शान्त किया। परन्तु, उसी दिन से उन्हें बाबा के प्राणों की रक्षा की चिन्तार रहने लगी। वे सोचने लगे कि उनके घटनास्थल पर होने के कारण वह अनर्थ होते-होते टल गया; किन्तु, यदि बाबा को इसी प्रकार महफ़िलों में कीर्ति प्राप्त करने का अवसर मिलता रहा तो कोई न कोई सिर-फिरा गवैया निश्चय ही उसकी जीव-हत्या कर डालेगा। अस्तु, यह घातक संभावना, उसका इस प्रकार गाना बन्द करके ही टल

सकती है। यह विचार कर ही उन्होंने उपर दिया हुआ वचन बाबा से लिया था।

(प्रे.) श्री. शरदचंद्रजी आरोलकर

(२) म. खांसाहब बंदेअली खां:—

म. खांसाहब बन्देअली खां एक प्रसिद्ध बीनकार थे। उनके लहरी-स्वभाव के विषय में अनेकों आख्यायिकायें (कथायें) प्रसिद्ध हैं। पूना के कुछ लोगों ने एक बार उनकी एक महफ़िल करना निश्चित किया। शहर के बड़े-बड़े लोगोंको आमंत्रण दिये गये थे। सब सुशिक्षित विलायत से शिक्षा प्राप्त करके आये कॉलेज के प्रोफेसर, डॉ. इत्यादि लोगों को खांसाहब के सामने बठाया गया। शहर के बहुत से संगीत प्रेमी तथा संगीतज्ञ भी वहाँ आये; परन्तु आमंत्रित न होने के कारण सब लोगों के पीछे तथा यहां वहां, जहां भी जगह मिली खडे हो गये। खांसाहबनें अपना वादन शुरू किया। दो-एक आलाप बजाकर मंद सप्तक पर से एक सुन्दर मींड के द्वारा वे सा पर जा पहुँचे। किन्तु, किसी ओर से भी वाह-वाहन होते देख, वे बड़े ध्यान से सामने बैठे हुए श्रोताओं की ओर देखने लगे। उनके निर्विकार चेहरों को देखते ही, उन्होंने कहा, "येतो सब गधे ही यहां बैठे हैं। इनके सामने बजाना भी तो क्या ?" पीछे ही बैठी हुई चुन्ना (उनकी शिष्या) की ओर मुड़कर, उससे कहा, "चलो चुन्ना हम अब चलें।"

एक बीनकार सामने बैठे हुए उन बड़े-बड़े-श्रोताओं को गदहा बताकर मानि करे, इस पर वे सब बहुत नाराज़ हुए और बिगड़ कर उठ खड़े हुए। बेचारे व्यवस्थापक लोगों ने खां साहब को किसी प्रकार समझा कर रोका और समस्त श्रोताओं से हाथ जोड़कर क्षमा की याचना करते हुए सानुरोध विनय की, "आप समस्त सज्जन तनिक ठहरें, खां साहब वास्तव में बहुत नामी कला कार हैं। परन्तु, एक गल्ती हम से ही हो गई है, उसे दुरुस्त करते हैं। बस फिर सब ठीक हो जायगा।" पीछे खड़े हुए समस्त जानकार श्रोताओं को बुलाकर, खां साहब के ठीक सामने बिठाया गया और खां साहब से फिर बीन बजाने की प्रार्थना की। उन्होंने भी, फिर से बीन को कन्धे का सहारा देकर सँभाला और बजाना आरंभ कर दिया। इस बार जानकार श्रोतागण सामने होने के कारण प्रथम खींच पर ही वाह-वाह शुरू हो गई। खां साहब तुरंत रंग में आगये, और यह वादन फिर तीन घंटे तक चलता रहा।

यह समाप्त होने पर विलायत से आये एक विद्वान् गृहस्थ ने कहा, "हम लोगों को गदहा बताते समय तो अपने आपको हम लोग खां साहब द्वारा अपमानित हुए समझ कर चले ही जाने वाले थे, परन्तु व्यवस्थापकों की अनुनय के कारण ही हम ठहर गये। अतः अब खां साहब का वादन सुन कर तो मैं स्वयं ही स्वीकार करता हूँ कि आपकी इतनी उच्च कला के विषय में हम वास्तव में निपट गदहे ही हैं। हम उनका बीन-वादन पूरी तौर पर नहीं समझ पाये; फिर भी उस नाद में हम अवश्य ही इतने तन्लीन हो गये कि हम अपने निश्चयानुसार एक-एक करके धीरे-धीरे खिसक जाना बिल्कुल ही भूल गये।"

(प्रे.) श्री. पं. गो. स. टेम्बे से सुना हुआ किस्सा

(३) म. खां. साहब मुराद खां बीन कार:—

एक गैरसरकारी (Private) कम्पनी ने जब बम्बई रेडिओ आरंभ किया था, उस समय एक बार खां साहब ने रेडियो पर बीन बजाना स्वीकार कर लिया था। जनता को रेडियो के विषय में अधिक परिचय न होने के कारण, किसी ने उनसे कह दिया था, "ये रेडियोवाले प्रत्येक वादन के रेकार्डस बना लेते हैं और फिर बेचते हैं।" फिर भी मेरे आग्रह के कारण वे बीन बजानेको तैयार हो गये। एक घन्टे तक बीन-वादन अत्यन्त ही सुन्दर प्रकार का हुआ। उन्हें ८० रु. बिदायगी मिली, तो भी खां साहब मंच (Stage) पर से न उतरे तो क्या, हिले तक नहीं। वे मुझ से कहने लगे, "देवधर साहब मुझे मेरा बीन सुनाओ।" मैंने उन्हें अनेकों भांति समझाया कि आपका वादन हवा में चला गया है, वह अब फिर कैसे सुन सकते हैं? वे कहने लगे, "नहीं, इन लोगों ने इस वादन का रेकार्ड बना लिया है।" अन्त में किसी बहाने से मैं उन्हें वहां से टेलीफोन पर ले गया और एक आदमी से उन्हें उस पर बात करने में लगा दिया। तत्पश्चात् उन्हें समझाया कि जिस प्रकार टेलीफोन की बात बीत फिर सुनाई नहीं देती, उसी प्रकार आपका वादन भी नहीं सुन सकते। फिर इस प्रकार शंका-समाधान करके उन्हें स्टुडियो के बाहर लाना पड़ा।

(प्रे.) श्री. बी. आर. देवधर

(४) कै. राम कृष्ण बुआ वज़े:—

बम्बई में रेडियो नया-नया ही आरंभ हुआ था। बहुत खट-पट के बाद बुआ साहब ने रेडियो पर गाना स्वीकार किया। वहाँ के अधिकारियों ने 'माइक' के सारे तंत्र बुआ साहब को समझा दिये थे। एक घन्टे तक गाना होना निश्चित हुआ था, तथा अन्तिम गाना २० मिनिट में समाप्त करके १० बजने से एक मिनिट पहले ही वह समाप्त करना था। बुआ साहब अन्त में घड़ी की ओर देखते हुए गाने लगे और लाल दिया दिखने से पहिले ही रुक गये तथा, एक गाली देते हुए बोले, "देखो! गाना समय के पहिले ही समाप्त हो गया न!" 'माईक' चालू होने के कारण यह गाली और संभाषण रेडियो पर समस्त श्रोताओं को भी सुनाई दिया।

(प्रे.) श्री. बी. आर. देवधर

(५) खां साहब रजब अली खां (देवास सीनियर):—

खां साहब के विक्षिप्त तथा धूर्त स्वभाव के विषय में अनेकों कथायें प्रचलित हैं। उनमें से एक इस प्रकार है:—

अच्छे-अच्छे सारंगी वालों को, ऐसी तान इत्यादि लेकर जो उनसे न निकल सकें, लज्जित करने में कितने ही गवैयों को आनंद प्राप्त होता है। एक बार बम्बई-रेडियो पर खां साहब का गान चल रहा था और साथ के लिये एक नामी सारंगी वाला भी मौजूद था। खां साहब की एक तान ज्योंही हूबहू सारंगी वाले ने निकाली कि वे बस रंग में आगये और दूसरी तान उन्होंने कुछ दाव-पेच के साथ निकाली; परन्तु, सारंगिये ने वह भी निकाललो। इस बार सारे स्वर ठीक-ठीक नहीं निकले। इस पर खां साहब ने कहा, "नहीं हुई, फिर सुनो!" यह कह कर उन्होंने फिर वही तान भरी। सारंगी वालेने पुन: उसे सही निकालने का प्रयत्न किया। भाग्य-वश उसमें फिर कुछ कसर रह गई, अत: खां साहब ने फिर कहा, "नहीं हुई!" यह सुनकर रेडियो-अधिकारी माईक बन्द करके स्टुडियो में आया और उनसे पूछने लगा, "अरे! खां साहब, इस समय बातचीत नहीं करना चाहिये, यह आपको मालूम नहीं क्या?" इस पर खां साहब ने उत्तर दिया, "हुजूर! मैं तो समझता था कि, इसमें लोगों को केवल गाना ही सुनाई देता है, दूसरी और कोई बात नहीं।" यह हाजिर-जवाब उत्तर सुनकर अधिकारी को बड़ी हँसी आई और उसने फिर से इस प्रकार न बोलने की उनसे प्रार्थना की और गाना आगे चालू हुआ।

(प्रे.) श्री. बी. आर. देवधर

अगस्त मास में संगीत-कला विहार को विशेष-सहाय्य प्रदान-कर्ताओं के नाम

(श्री. बी. आर. देवधर द्वारा)

१.	सेठ मदनमोहन आर. रुइया—(बम्बई)...	...रु. १२५-०-०
२.	सेठ राधाकृष्ण आर. रुइया— ,, ...	...रु. १२५-०-०
३.	सेठ सुशील कुमार आर. रुइया— ,, ...	...रु. १२५-०-०
४.	कुमारी सुधा राजेंद्र—(मसूरपुर)	...रु. १२५-०-०
५.	सेठ राम प्रसाद जी खंडेलवाल—(बम्बई)...	...रु. १२५-०-०
६.	सेठ मुकुंदराव राने— ,, ...	...रु. १२५-०-०
		कुल रु. ७५०-०-०

(पृष्ठ १२ का शेष)

समाप्त होनेपर उन्होंने पंडित जी से क्षमा—याचना की,तथा पंडित जी ने भी मधुर—शब्दों में ' ईश्वर का नाम जपने ' का उपदेश देकर उन्हें बिदा किया।

नेपाल में पंडित जी की वहाँ के महाराणा को किसी दूसरे ही कारण-वश कही हुई इसी प्रकार की उपदेश-पूर्ण बात, यद्यपि इसके बाद की है, तो भी इसी प्रकार की होने के कारण, यहीं उसका वर्णन कर देना भी उपयुक्त है। पंडित जी नेपाल गये तथा ब्रिटिश राजदूत की हद में ही उतरे, तथा राज-दूत की आज्ञा से उन्होंने ब्रिटिश हद के एक कोने में प्रवचन करना आरम्भ कर दिया। धीरे-धीरे उनके प्रवचनों की ख्याति नेपाल की प्रजा में फैल कर श्रोताओं की संख्या बढ़ते-बढ़ते इतनी अधिक हो गई थी कि वह उस हद में न समाती थी। अत: नेपाल की हद में एकत्रित हो कर वे लोग प्रवचन सुनने लगे। नेपाल में सभा करना मना होने के कारण, वहाँ के अधिकारी लोग, अपनी हद में इकट्ठी होने वाली भीड़ को फिर न जमने देने के विचार से पण्डित जी के पास आये तथा प्रवचन बन्द कर देने का अनुरोध किया। इस पर पण्डित जी ने उल्टी उन्हीं को ऐसी खरी खरी सुनाई कि बस चुप होते ही बना। पण्डित जी ने कहा, "नैपाल एक हिन्दु—राज्य है और वह भी पूर्णतया स्वतन्त्र। यहाँ यदि किसी के भी हाथ से गौ-हत्या हो जाय तो प्राण—दण्ड की सज़ा मिलती है, हिन्दु-धर्म में गौरक्षा का इतना महत्व है। फिर ऐसे हिन्दु—राज्य में प्रभो, श्री रामचन्द्र के चरित्र का कीर्तन करने की भी स्वतंत्रता नहीं, इससे अधिक लज्जा की और कौनसी बात हो सकती है। आपकी प्रजा को ये प्रवचन इस प्रकार चोरी—छुपके सुनना पड़ता है, अत: अच्छा तो यह हो कि आप अपने राज्य में भी इस ईश्वर के गुणानुवाद को सुनाने—सुनाने की आज्ञा घोषित कर दें, तो आपकी प्रजा और मेरे दोनों के इस पवित्र भक्ति—मार्ग में बाधा खड़ी न हो।" पंडित जी के इस बुद्धि-वाद को सुनकर नैपाल राज्य—की हद में प्रवचन करने की आज्ञा देने के अतिरिक्त कुछ और न बन पड़ा। अस्तु, नैपाल की सेना के परेड के विशाल मैदान प्रवचन होना आरंभ हो गया। भीड़ का तो बस कोई शुमार ही न रहा। अन्त में वहाँ के पशुपति—नाथ के मन्दिर में प्रवचन कर चुकने के बाद आपने अपना कार्य—क्रम समाप्त किया।

पण्डित जी की कीर्ति कितनी दूर तक फैली हुई थी, इसकी कल्पना कराने वाली एक और बात पहिले बता कर पीछे उन्होंने महाराणा को कैसे फटकारा इसका वर्णन करना अच्छा होगा। नैपाल छोड़कर, पंडित जी समस्त साथियों सहित जब वापस लौटे, तो ब्रिटिश-नैपाली सीमा में प्रवास करने की आज्ञा-पत्रिका में कुछ भूल हो जाने के कारण नैपाली अधिकारियों ने उन्हें रोक दिया। सब लोग उतर पड़े और समस्त सामान पास ही किसी अधिकारी के बंगले के पास एक खुली जगह में रख दिया पण्डित जी ने तम्बूरा निकाल कर राम—नाम गायन शुरू कर दिया। हद पार करने से सम्बधित पूछ ताछ। सामाप्त हो चुकने पर जब वह अधिकारी अपने बंगले के पास आया तो पण्डित जी की ओर देख कर कौन व कहाँ इत्यादि पूछने की इच्छा हुई। नैपाल में रामायण के प्रवचनों द्वारा मस्त बनाकर प्रजा के स्तुति-पात्र बने हुए प्रवचनकार यही हैं, यह, ज्ञात होते ही उस अधिकारी ने उनकी देख-भाल व सुरक्षा के लिये सेना के कुछ सिपाही नियुक्त कर दिये। उन सिपाहियों को पण्डित जी का पूर्ण—परिचय जानकर आनन्द हुआ। अधिकारी भी उत्सुक था कि सिपाहियों की भाँति वह भी प्रवचन सुन सके, तथा इसकी पण्डित जी एवं अन्य लोगों को सूचना देदी। पण्डित जी ने भी उसकी बात मान ली। रात को प्रवचन हुए तथा सबको प्रसन्नता हुई। प्रवास—आज्ञा—पत्र में भूल-संबंधी समाधान भी हो गया। अब तो पंडित जी के आदर—सत्कार में भी कुछ कमी न रही। दूसरे ही दिन आवश्यक आज्ञा की व्यवस्था करके, ब्रिटिश हद में स्थित रेलवे-स्टेशन तक कुछ सिपाहियों सहित, पंडित जी को अच्छी तरह पहुँचा दिया गया। राम-नाम के इस प्रभाव का वे सगर्व गुणानुवाद करते थे; क्योंकि साधारण सिपाही से लेकर राजा तक उसका समान ही प्रभाव पडता है।

परेड के मैदान में प्रवचनों की असीम लोक-प्रियता जब महाराणा को विदित हुई, तो उस असाधारण प्रवचनकार के भक्ति-रस का पान स्वयं भी करने की उन्हें इच्छा हुई। प्रवचन का विचार निश्चित हो जाने पर, पंडित जी महल में गये। प्राचीन राज-सभा का जो वर्णन पढने और सुनने में आता है, बस उसी का साक्षात दृश्य वहीं दिखाई दिया। सामने की ओर महाराणा का सिंहासन तथा दूसरी ओर दरबारियों के लिये नियत-स्थान; आगे-पीछे की खुली जगह में दूसरे लोग बैठते थे। राम-राज्य के आस-पास के काल जैसी थोड़ी-बहुत अर्वाचीनत्व की छटा देखकर पंडित जी का उत्साह बढ़ा। वाद्यों के स्वर छेड़ दिये। समस्त श्रोता स्तब्ध हो गये, तथा पंडित जी,

प्रवचन के निमित्त चुने हुए आख्यानों के तुलसीकृत-रामायण के पद गाने ही वाले थे कि, उनका ध्यान राज-सिंहासन की ओर गया। सिंहासन पर सुन्दर दास-दासियों का मेला सा लगा था। उनके हाथों में ताम्बूल-पान इत्यादि व्यसन-सामग्रियों को देखकर उन्हें बडा दुःख हुआ और अत्यन्त नम्रता एवं दृढता पूर्वक महाराणा साहब को सम्बोधित करते हुए कहने लगे, "श्री राम की सेवा के निमित्त दो-घडी यहाँ बैठने का अवसर आया है, उतनी देर के लिये भी लोग अपने व्यसनों को नहीं छोडते तब यह क्यों न समझा जाय कि वे लोग यहाँ रामचन्द्र जी की हँसी उडाने के ही लिये एकत्रित हुए हैं। इस समय ताम्बूल अथवा धूम्र-पान इत्यादि के साधनों को पास रखना अत्यन्त ही अनुचित है। इन साधनों का प्रवचन के समय तक यदि परित्याग न किया गया तो न प्रवचन आरंभ होगा और न मैं ही यहाँ ठहरूँगा। एक ओर रामचन्द्र जी की अवहेलना तो दूसरी ओर उनका गुणानुवाद करना असंभव है। महाराज, आप चाहे कितने भी बडे और आपके अधिकार कितने भी निःसीम क्यों न हों, तो भी आप सब श्री रामचन्द्र जी के सेवक के रूप में एकत्रित होने के नाते, आपको भी प्रवचन होने तक, अपना यह बडप्पन भुला देना चाहिये।" महाराणा साहब ने यह सुन कर उन सब दास-दासियों से चले जाने के लिये कह दिया और अन्त मे पंडित जी ने महाराणा से क्षमा याचना कर के प्रवचन आरम्भ किया। पंडित जी को प्रवचनों के लिये बिदायगी मिली; परन्तु उन्हें इस रकम अथवा कीर्ति का घमंड न था। इस सब के लिये वे सारा श्रेय सदैव राम-नाम के महत्व कोही देते थे।

इसी प्रकार की एक चिर-स्मरणीय घटना उनके जीवन मे और हुई। एक दिन बंबई में संध्या-समय, पंडित जी स्वय राम-नाम की साधना कर रहे थे, तो किसी राजा को उनका गाना सुनने की इच्छा हुई। अतएव, उसका कोई बडा अधिकारी उनके पास मोटर में आया और कहने लगा, "हमारे महाराज आपका गाना सुनना चाहते है, अतः यदि इसी क्षण हमारे साथ चले तो जितनी आप चाहें, उतनी रकम आपको मिल सकती है।" यह सुनकर, पंडित जी ने टेलीफ़ोन की ओर इशारा करते हुए, एक अपना शिष्य उनके साथ करके कहा, "जो माँगूँगा वही मिलेगा, यह तो ठीक है, फिर भी महाराज माँगने से अपना राज्य तो दे ही नहीं डालेंगे। इसलिये वे क्या देंगे इसका अनुमान हो जाना ही उचित है। टेलीफ़ोन पर पूछ लीजिये, तब तक मैं भी सोचता हूँ कि, क्या करना चाहिये?" पंडित जी ने अपने पास बैठे, एक दूसरे सज्जन से पूछा कि ऐसी स्थिति मे क्या करना चाहिये। ऋण अधिक होने के कारण विद्यालय की इमारत बिकने की नौबत आ पहुँची थी। अतः इन सब बातों को ध्यान में रख कर, उस बेचारे ने उत्तर दिया, "यदि, खासी रकम मिलती है, तो अवश्य ही जाना चाहिये।" इसी समय उस राजा के अधिकारी ने थोडी सी; परन्तु वह भी कुछ हजार की रकम देने की सूचना पण्डित जी को दी। पण्डित जी ने नम्रतापूर्वक गम्भीर शब्दों में उससे कहा, "महाराज से कहिये कि मैं भगवान की सेवा में बैठा हूँ। अतः अभी आध-घण्टे तक तो मैं यह जगह नहीं छोड सकता, यदि आध-घण्टे और ठहर कर वे मुझे बुलायेंगे, तो आज्ञा होने पर मैं भले ही मुफ्त भी गाना सुना दूंगा।" उस अधिकारी ने बहुत अनुनय-विनय करके भी देखा; परन्तु पण्डित जी का निश्चय न टला अस्तु, वह निराश लौट गया। उसके चले जाने के पश्चात् वे उस सज्जन से, जो उनके पास था, कहने लगे, "मेरा विचार था कि तुम चतुर एवं विचार-शील हो; परन्तु वह भूल थी। यह कहने से विदित होता है कि, तुम्हें राम-रहस्य का ज्ञान नहीं। अरे, राम मेरी परिक्षा ले रहे थे। राम श्रेष्ठ कि द्रव्य श्रेष्ठ, इसकी ही तो परिक्षा थी। ऋण की चिन्ता के कारण यदि मैं द्रव्य के चक्कर में पडता तो सदा के लिये श्री राम से वंचित हो जाता। तुमने, व्यवहारिक दृष्टि से मुझे राजा के पास जाने की सलाह दी थी, वह इस रहस्य को न जानने वाला उचित ही समझेगा; परन्तु राम-रहस्य इसी में तो अदृश्य-रूप से विद्यमान रहता है। वे मुझे मायामय अथाह सागर में धकेल कर सत्य की परिक्षा कर रहे थे। पर मैं अब ऐसे फन्दों में सहज ही फँसने में आनेवाला नहीं।" अब पंडित जी के बोलने में जो नम्रता थी, वह विलीन होकर, श्रीरामचन्द्र और इस मर्त्य-लोक के इन क्षुद्र-राजागणों की तुलना का विचार मन में आते ही, उनका स्वर कठोर हो गया। उन्होंने आगे कहा, "ये राजा लोग इस भू-लोक के मर्कट (वानर) देंगे भी तो क्या व कितना? फिर इनका दिया हुआ द्रव्य, कितने दिन ठहरेगा। इनके पैरों-पडने से तो त्रिभुवन-पति, श्री. रामचन्द्र के पैर यदि अपने हाथों से कस कर पकडे रखे, तो ऐश्वर्य की क्या कमी?"

उपर्युक्त प्रसंगों से यह पूर्णतया विदित हो जायगा कि स्व. पंडित जी का श्री. रामचन्द्र जी के प्रति विश्वास कितनी उच्च-कोटि तक पहुँच चुका था।

पत्र–व्यवहार :—

' गायन ' शास्त्र है अथवा कला ?

' संगीत–कला–विहार, ' मासिक के समस्त अंक मैंने बडे ध्यान से पढे हैं। अस्तु, किसे मालूम क्यों मेरे मन में यह विचार उठा कि, गायन एक शास्त्र है अथवा कला ? इस शास्त्र के कुछ नियम हैं, कुछ सर्व सामान्य संकेत हैं, तथा बहुत सा साहित्य भी है। वे सब पढ कर, कोई बहुत से बहुत विद्वान् हो सकता है, गायक नहीं। साहित्य में सर्व–संपत्ति व कला–विकास शब्द–निष्ठ हैं। शब्द और भाषा, इनसे आगे चल कर, स्वर, और आलाप हैं और इन्हीं के द्वारा गायक अपना कला–विकास रसिकों को अर्पण करता है। सब लोगों के बिल्कुल इसी नियम–बद्ध तथा निश्चित साँचे के अनुसार गाने से ही गायन कला की उन्नति नहीं होगी। अतः प्रत्येक कलावंत की भाँति गायक के लिये भी ' प्रत्युत्पन्न–प्रतित्व ' आवश्यक है। वर्तमान संसार, शास्त्र को केवल सुव्यवस्थित रूप से रख सकता है। वह न उसे उत्पन्न करता है और न उसमें कुछ वृद्धि ही। किन्तु, ये दोनों काम एक कलावंत करता है। मकडी के हाथ–पैर हिलाते ही, आप से आप उसके मुँह में से तार निकलने लगते हैं। तदनुसार कलावंत का ' कला–संसृति ' एक स्वभाविक—धर्म है। उसमें उसे कुछ परिश्रम नहीं करना पडता। गायन–क्षेत्र में से यदि शास्त्री–पंडित लोगों का लोप हो गया तो गायन–कला का अस्तित्व कुछ नष्ट नहीं हो जायगा। किन्तु, यदि यह मान लिया जाय कि कलावंत ही लुप्त हो गये; तो गायन–कला किसे कहते हैं, इसका लेश–मात्र अवशेष भी इस युग में विद्यमान न रहेगा। इसीलिये मुझे तो यही प्रतीत होता है, कि गायन मुख्यतः कला ही है। फिर चाहे वह शास्त्र हो; अथवा न भी हो।

शास्त्र एवं कला, इसका वाद सनातन है। कला में नव–वधु की नवीनता होती है; तथा शास्त्र, यह अच्छा तो है, किन्तु कला को उसकी ससुराल का सा नियंत्रण प्रतीत होता है। कोई भी समझदार सास, बहू के कर्तव्य–परायण व सयानी होने पर उस पर किसी भी प्रकार का बंधन अथवा नियंत्रण न रख कर समस्त गृहस्थी ही बहू के स्वाधीन कर देती है। उसी प्रकार ' संयम ' का कैसे, कहाँ, कब व कितना पालन किया जाय; यदि कलावंत यह समझ जाय, तो न शास्त्र की अड़चन होगी और न उसके गायन को कोई अशास्त्रीय ही बतायेगा। ' दाल में नमक ' जितना थोड़ा सा भी संयम पर्याप्त होता है; परन्तु उसका होना निपट अनिवार्य है।

कला का आविष्कार होते हुए, आत्म–विस्मृति की परम-सीमा का स्पर्श कर चुकने पर, जिस गुण के योग से आत्मा पुनः स्व–स्थान पर आ सकती है, उसी का नाम ' संयम ' है। यह सच्चा आत्म–गुण है। कला तथा सौंदर्य निर्माण, ये दोनों इतनी मादक हैं कि, उनके प्रयोग का परिणाम यदि हितकारक सिद्ध करना हो, तो ' संमय ' नामक आत्म–गुण से भी परिचय रखना चाहिये। शास्त्र की उन्नति तथा उसका पालन-पोषण अपने शरीर का रक्त खर्च करके, तथा प्राणों का विक्रय करके, कलावंतों ने ही किया। शास्त्र, बहुत से बहुत पढ़कर किसी से समझकर, समझ में आसकता है। किन्तु, स्वयं अपना कुछ (गुण–स्रोत) हुए बिना कलावंत हो जाना संभव नहीं। '**कलावन्त**' केवल इस एक विशेषण से ही किसी मनुष्य की जितनी वास्तविक गौरव–दर्शक–प्रशंसा हो सकती है, उतनी अन्य सहस्रों विशेषणों से भी नहीं होगी। इस एक ही पदवी की योग्यता का कितना महत्व है, यह कलावंत को कभी भी नहीं भूलना चाहिये।

का. न. केलकर (पूना)

संपादकीय (पृष्ठ १ परसे)

कै. पं विष्णु नारायण भातखंडेः—

पं. भातखंडेजीकी पुण्य–तिथि गणेश–चतुर्थी, दि. ६ सितंबर को है। पिछले वर्ष से प्रो. चिदानंद नगरकर व प्रो. भट्ट यह पुण्य-तिथि सार्वजनिक-रूप से मनाने लगे हैं, यह बड़े ही हर्ष की बात है। इस वर्ष भी यह पुण्य–तिथि मनाई जायगी। बम्बई के कलाकार वास्तव में दिलदार–वृत्ति के व सच्चे रसिक होने के नाते इस पुण्य-तिथि में भी उतने ही उत्साह–पूर्वक भाग लेंगे इसमें लेष–मात्र भी संशय नहीं।

इस वर्ष कै. पं. विष्णु दिगंबर पलुस्कर की पुण्य–तिथि जिस प्रकार ऑल–इण्डिया–रेडियो, बम्बई ने दि. २१ अगस्त को धूम–धाम से मनाई, उसी प्रकार कै. पं. विष्णु नारायन भातखंडे की पुण्य–तिथि भी अवश्य मनाई जायेगी, ऐसी हमें आशा है।

स्कूल ऑफ़ इन्डियन–म्यूजिक की ओर से दिनांक १८, १९, २०, २१ व २२ को स्व. गु. पं. विष्णु दिगंबर पलुस्कर की पुण्य–तिथि का भारी समारोह रहा, जिसमें भिन्न-भिन्न घरानों के लगभग १००–१५० प्रसिद्ध कलाकारों ने सहर्ष भाग लिया था।

गांधर्व–महाविद्यालय–मंडल की ओर से, स्व. पं. विष्णु दिगम्बर पलुस्कर १७ वीं की पुण्य–तिथि दि. २१–२२ अगस्त को छबील दास हाई स्कूल, दादर के दीवान खाने में बड़े ठाट–बाट से मनाई गई।

श्री. बच्चू मल्लिक तथा उनकी 'होली'

[ले.— श्री. भरत जी. व्यास, मथुरा यू. पी.]

> 'लेखक ने उदाहरणार्थ एक प्राचीन कलाकार की प्रसिद्ध होली पाठकों की सेवा में नम्रता पूर्वक रखकर, इस अलंकारों से युक्त, सुवाच्य तथा साहित्यिक रचना के आधार पर संगीतज्ञों से अनुरोध किया है कि साहित्य संगीत का प्राण है, जिसके बिना संगीत केवल एक निर्जीव शरीर रह जाता है। अतः संगीतकला के उपासक होने के नाते प्रत्येक संगीत–व्यवसायी का कर्तव्य है कि वह अपने कला पूर्ण स्वरों से निर्मित संगीत के शरीर में साहित्य–रूपी प्राण डालना न भूले।'
>
> संपादक 'विहार'

प्रिय पाठक–वृन्द !

आपने अनुपम होरी (होली) काव्य–साहित्य पढ़ा होगा। परन्तु, मैं कह सकता हूँ कि संभवतः इस प्रकार की अद्भुत-रचना पूर्ण सांगोपांग होली आप लोगों के पढ़ने में कम आई हो। यद्यपि आजकल नये लोग अनेकों प्रकार के काव्य नित्य गढ़ते रहते हैं, तथापि पूर्व–पुरुषों के किसी भी काव्य की रचना की तुलना उनसे नहीं हो सकती। इस मत से कोई यदि सहमत ही न हो तो उसका कोई उपाय ही नहीं। अस्तु, निम्न होली की रचना जिन महापुरुष ने की थी, वे कोई कवि तो थे नहीं, केवल एक भारतीय–संगीत–रत्न थे। इनका समय–काल लगभग सौ वर्ष के अन्तर्गत है। आप पूरब प्रान्त में एक डुमराव नामक राजधानी के निवासी थे। महाराजा डुमराव के आप आदरणीय एवं पूज्य गायक थे और श्रीमंत इन्हें 'भाई जी' कह कर सम्बोधित करते थे। काव्य के अन्त में जो नाम (घनारंग) है, वह तो काव्य की भोग–छाप है। वस्तुतः इनका नाम 'श्री. बच्चू मल्लिक' था। पूरब का 'संगीत—घराना' इन 'मल्लिकों' के घर के नाम से ही सब जगह व्याप्त है। संगीत के पुराने घरानों में जिस प्रकार राजपूत, अठाँथी, कोली और कथ्थक हैं, उसी प्रकार ये मल्लिक लोग भी हैं। केवल अन्तर इतना है कि यह जाति गायन और तंत्र में ही निपुण होने के कारण, अपने पुराने ब्राम्हण–स्वरूप में ठीक–ठीक स्थित है। ये लोग अन्य प्रान्तों में इस लिये नहीं जाते कि यहाँ की ज़मीन बहुत उपजाऊ है तथा पुराने समय में इन्हें यह इनाम (माफ़ी) के रूप मे पर्याप्त रूप से प्राप्त हुई है। पुनः उन्हीं प्रान्तों के रईस से इन्हें बहुत कुछ अर्थ–लाभ होता है। अस्तु, ये क्यों कहीं फिर जाने की सोचें ? इन्हीं लोगों में बच्चू मल्लिक, एक धुरंधर कलाकार हो चुके हैं। इनके वंशज, श्री. मार्कण्डेजी अभी जीवित हैं। लगभग १०० वर्ष के होंगे। मैंने बहुत भ्रमण किया है परन्तु वे राग–रागनियाँ जो इनके घराने में प्रचलित हैं, कहीं और नहीं सुनीं। इसके अतिरिक्त 'सोने में सुगंध' की भाँति इनके यहां के संगीत का काव्य–साहित्य इतनी उच्च–श्रेणी का तथा रसपूर्ण है कि उसके मेल का कदाचित् ही कोई गुणी सुना सके। इस होली के देखने से ही यह विदित हो जायगा कि इसमें काव्य–अंग अपने पूर्ण–रूप में प्रकट हैं। बच्चू जी के घराने के किसी शागिर्दने यह होली सूरज पुरा के राजा को सुनाई थी। उस समय वहाँ, पटना विश्व–विद्यालय के भूतपूर्व वाइस–चान्सेलर, श्री. सच्चिदानंद सिन्हा भी उपस्थित थे। उन्होंने बड़ी प्रसन्नता पूर्वक, मुक्त कंठ से उनकी प्रशंसा करते हुए कहा था, " आज तक मैंने ऐसी होली नहीं सुनी। बल्कि, यों कहना चाहिये कि वास्तव में, न तो किसी गायक को होली की

लाश है, और न उसे याद ही है। फिर वह कैसे सुनने में आती।" उत्तर में गायक ने भी कहा, "समझने वाला भी हमें स, आज ही मिला।"

सत्य है, आज कल तो संगीत ने साहित्य को प्रायः त्याग ही दिया है। यदि कुछ मिलता भी है तो वह वास्तव में, अपूर्ण सा हता है। प्रचलित गायन का अंग–प्रधान केवल तान–बाज़ी ो उसने मान रखा है। न कोई साहित्य पर ध्यान देता है और । टोकता है। पुराने कुछ घरानों के कलाकार ध्रुपद में पंडित अवश्य थे; परन्तु वे अल्प संख्यक और साहित्य की छाया के स्पर्श से भी वंचित। यह माना कि पूर्ण सांगो पांग–गायक वादक सदा अल्प संख्यक ही होते हैं, फिर भी इन्होंने साहित्य का अंग–भंग अवश्य किया है, जिसे सब ही मानेंगे। बच्चू जी के घराने में ध्रुपद–गायन इससे पृथक ही है। जो कुछ मुझे ज्ञात है उसी के अनुसार, आप लोग जो 'सोहनी' सुनते हैं, उसी संज्ञा में इनके यहाँ 'सोहनी, मोहनी और गोहनी' यह तीन राग–नियाँ व्यवहार में लाई जाती हैं। उसी प्रकार 'गुजरी–टोडी' संज्ञा में 'शुद्ध–गूजरी, श्याम–गूजरी और स्नेह–गूजरी' वरा टियों में शुद्ध–वराटी, नाग–वराटी, अशोक–वराटी तथा प्रताप–वराटी इस घराने में प्रचलित हैं। भैरवी की संज्ञाओं में मैंने इनके घराने की केवल 'भ्रातृ–स्नेही–भैरवी' ही पूरब प्रान्त के श्रेष्ठ कलाकार श्री. राम प्रशादजी पांडेसे सुनी है।

(होली)

सॉँवलिया धरि पायो री। आज खेलें होरी !!

(१) बृज की झुगाई, हरि–ठाँई, ऋतु राई, गाई पिक–स्वर
बाई, गाई होरी।
छवि दरसाई, सुख पाई, इत–उत धाई, रंग बर
साई, चहुँ ओरी॥
सॉँवलिया धरि पायो री !!

(२) बाजत ताल, मृदंग–पखावज, ढोलक, दारा जोरी।
जल–तरंग, करताल, वीण, रव–मुरली डंक टँकोरी॥
सॉँवलिया धरि पायो री !!

(३) चंग, उपंग, मृदंग संग लै, रंग–जंग उमगो री।
अंग अनंग–त्रिभंग संग लखि, तान–तरंग बढो री॥
सॉँवलिया धरि पायो री !!

(४) छबि छलकत छिन, छिपै, छपा–कर, छुटत
छहर पिचकोरी।
छैल–छबीले, छल–नंदन से, लीन्ही छीन छलो री॥
सॉँवलिया धरि पायो री !!

(५) जे रस के, चसके–हँसके, कहे रंग कसके अँखियोरी।
पग किसके मिसके जो भागत, कोउ
रिसके सिस को री॥
सॉँवलिया धरि पायो री !!

(६) झंझर–झांझ, झनाझन झन कत, झगरत झोरा–झोरी।
झूमक झुलनि झूलत, झुकि झूमत, झरत
झराझर झोरी॥
सॉँवलिया धरि पायो री !!

(७) कोउ गोरी, थोरी भोरी, दिन की निपट छोरी,
चोलिनिवि कसि बाँधे डोरी।
रोरि भरि झोरी दौरी, कीरति–किशोरी बोरि
नख–सिख, सारी सरबोरी॥
सॉँवलिया धरि पायो री !!

(८) ललिता लपकि, लाडली लालहिं लै गुलाल ललकोरी।
ललना–गण लखि, लपटि लला को,
गले लगाय लियोरी॥
सॉँवलिया धरि पायो री !!

(९) भुज फरकत, पट खरकत दरकत, धरकत उरज कठोरी।
मरकत–मणि–मोती लर लरकत, तड़कत कंचुकि डोरी॥
सॉँव लिया धरी पायोरी॥

(१०) कोउ गारी दै दै तारी, प्यारी पिचकारी मारी सारी
फारि डारी बर जोरी।
प्यारी–बनवारी, बनवारि पर रंग डारि, न्यारी–न्यारी
ठाढी भई गोरी॥
सॉँवलिया धरि पायो री॥

(११) डफ घमकत, तन चमकत, गमकत–झमकत रंग
चहुँ ओरी
रमकत पवन, दसन दुति दमकत, छमकत छम–छम गोरी॥
सॉँवलिया धरि पायो री॥

(१२) पिय–अर्चित–चन्दन तन–चर्चित, कोउ चितवत
पिय बोरी।

कोउ खर्चित बदला उदार-चित, कोउ करे चितवन चोरी ॥
सॉंवलिया धरि पायो री ॥

(१३) कोउ चिरकी सिरकी फिरकी सी कोउ भिरकी बर जोरी ।
कोउ खिरकी मग भागि बचावत, कोउ छिराकि रंग बोरी ॥
सॉंवलिया धरि पायो री ॥

(१४) पट खींचत कोउ, रंग उलीचत कोउ नीचे निरखोरी ।
कोउ कोचे नीचे भई जी चे कहेरी चे ठौरो री ॥
सॉंवलिया धरि पायो री ॥

(१५) छबि निरखत, हरखत सुर, बरषत सुर दरखत कुसुमो री
कोउ निरखत मुख वच आमरखत कहे सर खत लिखदोरी ॥
सॉंवलिया धरि पायो री ॥

(१६) कर झटकत, कहुँ कुम-कुम चटकत, लटकत लट भई भोरी ।
कोउगोरी हटकत, कोउ झटकत, कोउ छटकन मुख मोरी ॥
सॉंवलिया धरि पायोरी ॥

(१७) कोउ बॉंटत बादाम-छुहारा, कोउ बॉंटत पानोरी ।
कोउ साटत पिय को लै उरमें, कोउ अधरोरी ॥
सॉंवलिया धरि पायो री ॥

(१८) पिय पाही जाहीं, मुस कांहीं लपटाहीं तन सों री ।
'घना रंग' के राधा-माधव, अपनी भक्ति दियो री ॥
सॉंवलिया धरि पायो री ॥

दि. ८-८-४८ को कराड़ के रा. मुरलीधर शं. देशपांडे के घर कुमार विलास व प्रो. अप्पाराव इनामदार का गायन-कार्यक्रम, बहुत से रसिकों की उपस्थिति में हुआ।

—:×:—

'संगीत-अलंकार' पं. शंकरराव सप्रे के 'श्रीराम-संगीत-महा विद्यालय' नागपूर, की ओर स वंदनीय पूज्य गु. गायनाचार्य 'कै. पं. विष्णु दिगम्बर पलुस्कर' जी की १७ वीं पुण्य-तिथि दि. १४-१५ अगस्त १९४८ को डॉ. वा. शि. बालिंगे साहब की अध्यक्षता में बड़ी धूम-धाम से मनाई गई थी।

देवकरण नानजी
बेंकिंग कं., लिमिटेड
हैड-ऑफिस बंबई व ४७ शाखायें

ऑथो राइज्ड केपिटल	रु.	१,००,००,०००
स० सक्राइब्ड व पेड अप "	रु.	५०,००,०००
रिजर्व-फन्ड	,,	१५,००,०००
डिपॉजिट्स ३०-६-४८	,,	८,२१,६५,३६५
वर्किंग-फन्ड्स	,,	९,१३,८९,१२०
अकाउन्ट्स की संख्या		६१,६६५

बोर्ड ऑफ डाइरैक्टर्स

प्राणलाल देवकरण नानजी, जे. पी. चेअरमैन
युवराज उदयभान सिंहजी, पोर बन्दर
के. एम. मुन्शी
पिरोजशा एन. मेहता
नटवरलाल एस. चौकसी
रतनचंद हीराचंद, एम. ए.
जयन्तीलाल आर. त्रिवेदी
ललितचन्द्र सी. डी. नानजी
लक्ष्मीकांत एस. दाभोलकर, जे. पी.
राजमित्र आर. एस. माने पाटिल, सी. आई. ई.
प्रवीणचन्द्र वी. गांधी, जे. पी. मेनिंजिंग—
डाइरैक्टर

हैड-ऑफ़िस
देवकरण नानजी बिल्डिंग्स
एलफिस्टन सर्किल फ़ोर्ट
बम्बई

पं. विष्णु नारायण भातखण्डे

व्यक्तित्व तथा कार्य

(लेखकः—प्रो. बी. आर्. देवधर B. A.)

स्वर्गीय प. विष्णु नारायण भातखण्डेजीकी बुराई करनेवालोंकी सन् १९२१–२२ मे अधिकता थी। संगीत कलाका साधारण ज्ञान होने पर कई एक गवैयोंके साथ मेरा परिचय होने लगा था। कई बार तो हिंद गायक और मुसलमान उस्तादों की एकत्रित मेहफिल होनेके भी मौके आया करते थे। संगीत के सम्बन्ध में मेरा ज्ञान उस वक्त बहुतही थोड़ा और स्थूल स्वरूप का था। लेकिन संगीत-कला के शौकके कारण ऐसे लोगोंकी संगीत के सम्बन्धकी बातचीत और बहस मुबाहसोंको मैं खूब चौकन्ना होकर चावसे सुना करता था। मुझे अच्छी तरह याद है, कि उस वक्तके संगीतके कलाकारोंके मनमें पं. भातखण्डेजीके बारेमें विशेष आदर की भावना दिखाई नहीं देती थी। वे लोग कहा करते, कि भातखण्डेजी वकील हैं, गानेका उन्हें जरा भी ज्ञान नहीं; फिर भी हम गवैयोंको वे संगीतके कायदे सिखानेकी धृष्टता कर रहे हैं। हम क्योंकर उनका कहना मानेंगे ?

मेरे कानोंमें हमेशा इसी तरहकी आलोचनाएँ गूजती रहती थीं। इससे मैं भी इसी धारणाको मनमें लिये हुए था। सन् १९२४ मे पं. भातखण्डेजीके लिखे हुए 'हिंदुस्थानी संगीत पद्धति' नामक ग्रंथ का पहला भाग अपने किसी दोस्त के घर पर मुझे दिखाई दिया। स्वाभाविक कुतूहलके साथ मैं उस ग्रंथको पढ़ने लगा। उस ग्रंथमें इस्तेमाल किये हुए स्वरोंके कण, रागाङ्ग, राग वाचक, स्वरवाक्य, आदि शब्द मुझे कुछ अपरिचित और नये से प्रतीत होने लगे। उस पुस्तक की संपूर्ण पढ़ने की उत्सुकता मेरे मनमें जाग उठी। मैं वह पुस्तक घर ले गया और बडे चावसे मैंने एकही दम में उस सारी पुस्तक को पढ डाला। पुस्तकसे मैं बहुत प्रभावित हुआ। किसी पाश्चिमात्य शास्त्र की भांति हिंदुस्तानी रागों के सम्बन्ध में सांगोपांग सर्वांग परिपूर्ण और निष्पक्षरूप से की हुई चर्चा मुझे इस पुस्तकमें पहले पहलही दिखाई दी। संगीत शास्त्रके विषयमें रहे हुए मेरे अपने अज्ञानका मुझे पूर्ण रूपसे ज्ञान हुआ और ऐसे व्यक्ति से मुलाकात करने और उसका परिचय प्राप्त करने की उत्कंठा मेरे मनमें जाग उठी।

एक दिन अपने मनमें पं. भातखण्डे जीसे मिलने का पक्का इरादा करके मैं उनके वालकेश्वर स्थित निवासस्थान पर जा पहुँचा। इसके पहले मैंने सिर्फ एक बार उन्हें चौपाटी पर एक बैंचपर बैठा देखा था। डरते–डरते मैंने उनके कमरेमें पहुँचकर उन्हें प्रणाम किया। मुझे देखतेही उन्होंने अपना सुनने का यंत्र कानोंसे लगाया और पूछा,–" आप कौन है, किस उद्देशसे आये हैं ? " मैंने जवाब में कहा,–" मैं एक संगीत शिक्षक हूं। उन्होंने फिर पूछा,–" तुमने तालीम कहाँ पाई है ? इस प्रश्नके उत्तरमें मैंने कहा, –" मैं पं. विष्णु दिगम्बर पलुस्करजी का शिष्य हूं। हालहीमें मैंने आपका ' हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति ' नामक ग्रन्थ पढा है और कुछ रागोंके सम्बन्ध में कुछ जानकारी आपसे मुझे हासिल करनी हैं।

वकील भातखण्डे

विष्णु दिगम्बरजीका नाम सुनतेही चेहरेपर गभीर भाव धारण करते हुए वे बोले,— " देखिये साहब, मैं एक वकील हूं; गवैया नहीं; और न गाना सिखाने का मेरा पेशा ही है। ऐसी दशामें रागोंकी जानकारी भला मैं आपको क्या दे सकता हूं ?" इसपर मैंने कहा—"आपने तो इतने अच्छे–अच्छे ग्रंथ लिखे हैं। रागोंके बारेमेंभी उनमें परिपूर्ण रूपसे विवेचना की गई है। तब फिर आप यह कैसे कहते हैं, कि आपको गाना नही आता ?" इसपर आप बोले,—" मुझे गानेका शौक है। संगीत शास्त्रका अभ्यास मैंने किया है। मुझे उससे जो जानकारी हासिल हुई है, उसको मैंने अपनी पुस्तकोंके रूपमें लिख रखा हैं। इसलिये आप मेरी पुस्तकें पढ़िये। उनमें आपको अगर कहीं कुछ उपयुक्त बातें दिखाई दें तो

देखिये। मेरे नहाने का वक्त हुआ; अब अधिक फ़ुरसत मुझे नहीं है; ज़रूरत हो तो फिर कभी आइये। नमस्ते।"

पं. भातखण्डे जी के इस उत्तर से मैं निराश होकर लौट पड़ा। मेरी समझ में न आया कि इस तरहका कोरा जवाब उन्होंने मुझे क्यों दिया? मैंने अपनेसे बडे गुरुबंधुओं से पूछताछ की, तब मुझे मालूम हुआ, कि हमारे गुरु पं. विष्णु दिगम्बर और पं. भातखण्डेजी की आपसमें नहीं बनती। भातखण्डेजी की पुस्तकने मुझे रागोंके सम्बन्धमें विचार करनेकी एक बिल्कुल नई पद्धति का दिग्दर्शन कराया था और उससे मेरी ज्ञान लालसा अधिक प्रदीप्त हो उठी थी। लेकिन मैं विष्णु दिगम्बरजी का शिष्य था, केवल इतनेही कारणसे उसकी पूर्तिके आसार दिखाई नहीं देते थे। ऐसी उलझी हुई मनोवृत्ति में मैंने और दो तीन महिने बिताये तब जाकर मुझे एक तरकीब सूझी।

सफल तरकीब

एक दिन शामके कोई ६-६॥ बजेके क़रीब पं. भातखण्डेजी अकेले ही चौपाटीपर एक बैंच पर बैठे हुए मिले। मैंने आगे बढकर प्रणाम किया। उन्होंने मुझसे बैठनेके लिये कहा। पारस्परिक कुशल प्रश्नोंके बाद मैंने पंडितजी से कहा—"मैंने आपकी पुस्तक का तीसरा हिस्सा बड़े ध्यानसे पढा है। दो दिन पहले... गाना मैंने सुना। ये ख़ांसाहब बडे मशहूर (साम्प्रदाय) घरानेके हैं। उन्होंने 'पूरिया धनाश्री' राग लगातार एक घण्टेभर तक बडी खूबीसे गाया। लेकिन, उनके गाये हुए उस रागका स्वरूप आपकी पुस्तक के तीसरे हिस्से में दिये हुए उसके स्वरूपसे तो कहीं मेल ही नहीं खाता। वह तो उससे बिल्कुल भिन्न है। इससे मेरी धारणा हुई है, कि आपकी पुस्तक में जो विवेचना की गई है, वह बिल्कुल ग़लत है।

मेरी इस ढिठाईका परिणाम ठीक वैसाही हुआ जैसा मैंने पहलेही अंदाजा लगाया था। तीर ठीक निशाने पर लगा था। मेरी तरफ़ कुछ तीखी नज़रसे देखते हुए वे कहने लगे,—"तुम अभी बच्चे हो। दुनिया की अभी तुम्हें कुछ भी खबर नहीं है। जानते हो, इन रागोंके स्वरूप क़ायम करने के लिये मैंने कैसी कोशिशें की हैं? कान खोलकर सुनो।" इसकेबाद पूर्वी ठाठ के राग उन्होंने किन-किन गवैयोंसे सुने, हरएक रागकी चीजें किन किन खानदानों से इकठ्ठा कीं, किन-किन लोगोंके साथ शास्त्र-चर्चा की और यह सारी जानकारी हासिल करनेके लिये किन-किन शहरोंके चक्कर काटे, इसका कच्चा चिठ्ठा उन्होंने क़रीब डेढ घण्टे तक अस्खलित रूपसे कह सुनाया। उनका भाषण ख़तम होने पर मैंने उनसे ठंडे मिजाज़से कहा,— 'पंडितजी, तीन महिने पहले ये ही सब बातें पूछने के लिये मैं आपके पास आया था। लेकिन उस वक्त आपने मुझसे बात तक न करके रास्तेकी ओर इशारा किया था। आज अलबत्ता आपने 'पूर्वी' ठाठके सभी रागों और उनको गानेवाले विभिन्न खानदानों के बारेमें ख़ासी अच्छी विवेचना करके आपकी संशोधन पद्धति का भी कुछ दिग्दर्शन कराया, इसके बारेमें मैं आपका बहुत कृतज्ञ हूं। आप मुझे पहलेही महान् मालूम होते थे। लेकिन आजकी इस विवेचनाको सुनकर मुझे पूरा विश्वास हो गया, कि आप इस कला पर पूरा अधिकार रखने वाले पहुँचे हुए पुरुष हैं।" मेरे इस उत्तरसे उन्हें कुछ सन्तोष हुआसा दिखाई दिया।

बादमें उन्होंने मुझसे कहा,—"तुम अनधिकारी ऐरे गैरों के गाने ज्यादह न सुना करो। उससे तुम ग़लत राह पर चले जाओगे। गुरूके पास बैठ कर अच्छी तालीम पाये हुए गायक आज कल बहुत थोड़े इने गिने ही रह गये हैं।" इस पर मैंने धीरेसे दबी ज़बानसे उत्तर दिया,—"मैंने अभी जो पूरिया धनाश्री का किस्सा सुनाया, वह सत्यकथा नहीं है। तीन महीने पहले मैं आपसे मिला था, उस समय आपने मुझे ख़ाली हाथ लौटा दिया था। लेकिन आज जब मैंने आकर मनगढन्त कहानी कहकर आपसे कहा कि आपने जो लिखा है, सो सब ग़लत है; तब आप तैशमें आगये और उस ताव में आप इतनी कुछ बातें कह गये, कि मुझे जिस ज्ञानकी ज़रूरत थी, वह तो मिलही गया और ऊपर से यह भी मालूम हुआ, कि संगीत कलामें संशोधन या आविष्कार करने वाले व्यक्तिको किस मार्गसे होते हुए जाना पड़ता है।" इस पर वे बोले,—"जान पडता है, तुम बड़े उस्ताद हो। तुमने हमें खूब बनाया। फिर भी यह जानकर मुझे बहुत ख़ुशी हुई, कि संगीत-शास्त्र का अभ्यास करनेके सम्बन्धमें काफ़ी आस्था तुममें है। अब कभी फ़ुरसत मिले तो मेरे घर पर आया करो।

इसके बाद दो साल तक पंडितजीसे भेंट न हुई। इस अरसे

में वे लखनऊ में मॉरिस कॉलेजकी स्थापनाके कार्यमें लगे हुए थे। वे बार बार ग्वालियर, बडौदा वगैरह स्थानोंपर परीक्षाओंके लिये आया करते थे।

बादमें, एकबार पंडितजी बम्बई में हैं, यह खबर मिलतेही मैं एक दिन सवेरे. करीब ९ बजे उनसे मिलनेके लिये उनके घर पर गया। उसवक्त अकेले ही अपने कमरेमें बैठे कुछ पढ़ रहे थे। मैंने अब एक नियमसाही बना रखा था, कि किसीकी झूठमूठकीही प्रशंसा करके पंडितजीको खिझाकर उत्तेजित करना। उस दिनभी मैंने उन दिनों महाराष्ट्र में नामवरी पानेवाले दो एक गवैयों की खूब प्रशंसा की और उनके बारेमें पंडितजी की राय जानना चाहा। इस पर पंडितजी बोले,—"तुमने जबतक बम्बई के बाहर कदम रखकर अच्छे-अच्छे गवैयोंके गाने सुने नही हैं, तबतक संगीत वास्तविक रूपमें क्या चीज़ है, इसकी कल्पनाही न कर सकोगे। क्या कभी तुमने अच्छे और पक्के ध्रुपदियोंका गाना सुना है? मैंने इसके जवाबमें कहा,—" बम्बई में अच्छे ध्रुपदिये हैं ही नहीं, इससे ध्रुपदियोंका गाना सुननेका मौका मुझे नहीं मिला है। पर मैं नहीं जानता, कि ध्रुपदियों और ख्यालिये का यहाँ सवालही कहाँ उठता है? यहाँपर उनका सम्बन्धही क्या है?"

इसपर वे कुछ चिढ़कर बोले,—"जबतक तुम्हें हरएक रागके ध्रुपद या धमारका ज्ञान न होगा, तबतक उस रागमें रही हुई बारीकियाँ, खूबियाँ और उसके नियम तुम्हारी समझमें न आयेंगे। क्या तुम्हारे गुरूजीने तुम्हें ध्रुपद धमारों की तालीम दी है?"

मैंने जवाब दिया,—"आजकल हमारे गुरूजी दौरेपर हैं और हम नये छात्रोंकी शिक्षा इन दिनों दूसरे अध्यापको कोही जिम्मे है। फिर इन ध्रुपद धमार के बारेमें हममें कोई विशेष रुचिभी नहीं है। फिरभी मजबूरन हमें पांच पचास ध्रुपद याद करने पड़े हैं।"

इस पर पंडितजीने मुझे एक ध्रुपद गानेके लिये कहा। मैंने एक ध्रुपद गाया, जो मुझे याद था। इस ध्रुपदको सुननेके बाद उन्होंने मुझे एक के बाद एक प्रश्न पूछना शुरू किया।

पंडितजीका ध्रुपद

मुझे जान पडा कि ध्रुपद गानेकी मेरी पद्धति उन्हें विशेष पसंद नहीं आई। वे बोले,—"तुम्हारा यह ध्रुपद गायन मुझे ध्रुपदी-पद्धतिका मालूम नहीं होता। कविता पाठ की तरह तुम उसे खडे सुरोंमें गा रहे हो। तुम्हारे ध्रुपद में इस रागके लिये आवश्यक कण तो कहीं सुनाई ही नहीं देते। अच्छा तो अब लो सुनो, ध्रुपद गायन क्या चीज है, सो अब मैं तुम्हें गाकर सुनाता हूं।" यह कह कर उन्होंने एक ध्रुपद गाना शुरू किया। अब तक तो उनके बारेमें यही एक आलोचना जहाँ-तहाँ से मैंने सुनी थी, कि पंडितजीको गानेका इल्म नहीं है। लेकिन उस वक्त गानेके लिये जरूरी तम्बूरे, पखवाज वगैरह साजो सामानके न होते हुए भी उन्होंने वह ध्रुपद बहुत अच्छी तरह गाकर सुनाया। पंडितजीकी आवाज काफी बुलंद थी। पर उसमें विशेष मिठास न थी। गानेका तरीका अलबत्ता बहुतही अच्छा था। हरएक शब्दके अर्थको समझ कर, गानेमें वे उसका उच्चारण करते थे और हिंदुस्तानी रागोंमें खास महत्त्व रखनेवाले कणोंका उपयोग बडी खूबीसे साथ वे करते थे। इससे मानों उस रागकी साकार मूर्तिही आंखोंके सामने साक्षात् खडी सी हो जाती थी। हर एक मींड और ध्रुपद गायन में बहुत जरूरी गमक बिल्कुल साफ और जिगरके जोरसे पैदा हो रही थी। मुझे याद हो आयी, कि हमारे गुरू पं. विष्णु दिगम्बरजीसे जब कभी किसी मृदंग बजाने वालेसे भेंट होती, तब वे अक्सर ध्रुपद-धमार ही गाया करते। साथ साथ पंडितजी के इस ध्रुपद गायनसे मुझे इस बातका भी ज्ञान हुआ, कि हमारे गुरूजीने हमारे पाठ्यक्रम में आखिर इतने बहुतसारे ध्रुपद धमार क्यों रखे हैं?

ध्रुपद गा चुकनेके बाद उन्होंने उसकी गायकी में रही हुई कुछ खूबीयाँ और बारीकियाँ समझाना शुरू किया हरएक बातको समझानेके पहले वे मुझसे पूछते, कि क्या यह बात इसके पहले तुमसे किसीने समझाकर कही थी? बादमें उन्होंने हरएक रागमें लिये जानेवाले कण स्वरों के महत्त्वको अच्छी तरह समझाया और फिर पूछा,—"तुमने अभी जो ध्रुपद गाया था, क्या उसका अर्थ भी तुम जानते हो?" मैंने कहा—"नहीं!" इसपर उन्होंने मेरे गाये हुए ध्रुपदके शब्द और उनके अर्थ कहकर समझाये और यह भी दिखा दिया, कि मैंने किन शब्दोंको गलत कहा था। इसपर अपनी राय जाहिर करते हुए कहा—"हिंदी शब्दोका उच्चारण तुम्ही

तो क्या दक्षिणका कोई भी महाराष्ट्रीय गवैया आकर्षक और लुभावने रूपमें करने नहीं पाता !" उन्होंने मुझे हिंदी भाषाका अभ्यास करनेकी सलाह दी और कहा, कि तबतक कोई चीज़ गाना नहीं चाहिये; जबतक उसमें रहे हुए हर शब्दका अर्थ साफ़-साफ़ समझमें न आयें। इसके बाद उन्होंने अपने पास रही हुई फाइलें दिखाकर बतलाया, कि उन्हें मिले हुए गाने कैसे अशुद्ध थे और उन्हें शुद्ध करने के लिये पण्डितजीको किसतरह परिश्रम कराना पड़ा था। साथ साथ यह भी बतलाया, कि अशुद्ध गानोंको शुद्ध करने में क्या क्या करना पडता है ?

गानोंका संशोधन

वे बोले,-"जब कोई गाना हमें मिल जाता है, तब उसे ज्योंका त्यों लिख लेना चाहिये। इसके बाद किसी ऐसे पंडितको दिखाना चाहिये, जिसे ब्रज भाषाका इल्म हो। गानेका अर्थ ठीक ठीक लगाया जा सकता हो, तो गानेको वैसाही रहने देना चाहिये। उसमें कोई उलटफेर नहीं करना चाहिये। पुराने खानदानी गाने कई गवैयोंको याद रहा करते हैं और काफी पूछता करने पर सम्भवतः और भी कई गवैयोंके पासभी मिल सकते हैं। इस तरह अलग अलग गवैयोंसे किसी एक गानेके जितनेभी पाठभेद इकट्ठा किये जा सकते हो, उन्हें इकठ्ठा कर लेना चाहिये। इन अलग अलग पाठभेदोंका मिलान कर देखनेपर असली गानेका ठीक ठीक पता लगजाता है और गलत शब्दोंके सुधारनेमें भी विशेष सहूलियतसी होती है। हम महाराष्ट्रियोंको हिंदी भाषा का इल्म न होनेसे हिंदीके गानोंमें पाठभेद होना अपरिहार्य है। इसी तरह मुसलमान लोगोंको संस्कृतका इल्म नही रहता, इसलिये संस्कृतके शब्द प्रयोगोंमें वेभी गलतियाँ करते हैं साधारणतया स्थाईमें विशेष परिवर्तन नहीं होता, लेकिन अंतरेमें कई किस्मके पाठ अलबत्ता पाये जाते हैं। मुझमे रहा हुआ अज्ञान खोलकर मेरी आंखोंके सामने खड़ा करनेके लिये वे कुछ व्यंगात्मक रूपसे बोल रहे थे; फिरभी उनका वह भाषण मुझे ज्ञानका एक भांडारसाही मालूम हुआ। इतना सारा संभाषण समाप्त होनेतक बारह बज गये और वे नहानेके लिये उठ खडे हुए।

उन्होंने उस दिन मुझे जिन बातोंकी जानकारी कराई, उनकी तरफ ध्यान देनेपर मुझे प्रतीत होने लगा, कि संगीत शास्त्रके साथ इतने सालों तक सम्बन्ध रखने पर भी मैं उसमें अबतक बिल्कुल कोराका कोराही रह गया हूं। बादमें मुझे कई स्थानोंपर जानेका मौका मिला और उसवक्त मैंने ऐसे बहुतेरे गवैयोंके गाने ध्यानसे सुने, जिनकी प्रशंसा पंडितजीने मेरे पास की थी। मुझे ये गाने बहुतही अच्छे मालूम हुए।

आत्मीयता का प्रथम परिचय

इसकेबाद पंडीतजीसे मिलनेके पांच छ: मौके मुझे मिले। हरबार तानेजनीके रूपमें वे मुझसे पूछा करते,-'क्या यह बात तुम्हें मालूम है? या 'क्या किसीने यह बात तुमसे कभी कही है? यहभी संदेह नहीं की ऐसे, व्यंगपूर्ण प्रश्न पूछकर वे मुझे बहुत महत्वका ज्ञान दिया करते थे। इसी अरसेमें मेरे लिये एक बहुतही अनुकूल घटना घटी। मेरे साथ सेण्टजेवियर कॉलेजमें रहे हुए श्री.प्रभाकरजी बिजूरसे जब मेरा परिचय हुआ, तब उन्होंने मुझसे कहा,—"पं. भातखण्डेजीके एक परम मित्र श्री. शंकररावजी कर्नाड मेरे नजदीकके रिश्तेदार हैं और वे दोनों एकही मकानमें रहते हैं।" मेरे प्रार्थना करनेपर श्री. बिजूरजीने मेरा श्री. कर्नाडजीसे परिचय कराया। श्री. कर्नाडको मेरी ज्ञानलालसा और उसके लिये मैं जो परिश्रम कर रहा था, बहुत पसंद आया और उन्होंने पं. भातखण्डेजीके पास मेरी गाढ़ी सिफारिश की इसके बाद अलबत्ता पंडितजी मेरे साथ आत्मीयतासे पेश आने लगे।

महाराष्ट्रियों की दोषैक दृष्टि

सन् १९३० या शायद उसीके आसपास की घटना है। मैं एक दिन पंडितजीसे मिलने गया। उस दिन वे बहुत खुश थे। अभी अभी उन्हें एक चिठ्ठी मिली थी। पढ़नेके लिये उन्होंने वह चिठ्ठी मेरे हाथमें दी। किसी एक प्रसिद्ध बंगाली विद्वानने वह चिठ्ठी भेजी थी। उसमें उन्होंने पंडितजीकी संगीतमें क्षेत्र की सेवाओंकी बहुत तारीफ की थी और लिखा था, कि शार्ङ्गदेवके संगीत रत्नाकरके बाद भारतीय संगीतके क्षेत्रमें किसीने इतना कार्य नहीं किया है, जितना आपने किया है और न इतने ग्रंथ ही लिखे हैं। पंडितजीने मुझसे चिठ्ठी पढनेपर कहा-"देखो, मेरे कार्यकी कद्र अन्य प्रान्तोंमें की जाती है," महाराष्ट्रीय लोगोंमें अलबत्ता इस सम्बन्धमें पूरी उदासीनता फैली हुई है।" इसपर मैं बोला "--- आप महाराष्ट्रीय लोगोंके साथ घनिष्टता नहीं रखते, इसलिये शायद वे लोग आपके कार्यका मूल्य और महत्त्व नहीं जानते।"

इस पर वे बोले,— "मैंने सद्भावनासे जो कुछ भी किया है, उसकी जड़में रहे हुए सदुद्देशकी ओर ध्यान न देकर महाराष्ट्रीय लोगोंने मेरे कार्य पर विषैली अलोचना की है और लोगोंमें मेरे कार्य के बारे में गलत धारणा पैदा कर दी है। किसी भी कार्य में रहे हुए दोष वे तुरन्त देख सकते हैं और उन दोष भरी गौण बातोंका बतंगड बनाकर उस पर इतना कुछ लिख मारते हैं कि उस कार्य की अच्छाइयोंकी तरफ़ किसीका ध्यान जानेही नहीं पाता। इसी लिये मैं अकेलाही अपनी शक्तिके अनुसार अपना कार्य किये जाता हूं। तुम्हारे दिलमें भी कुछ उपयोगी कार्य करने की आकांक्षा है। करने लायक़ कार्य भी अभी काफ़ी है, जिसके बारेमें मैंने बहुत कुछ लिख रखा है। शास्त्रीय संशोधन या खोज, तलाश करनेके कार्य की एक पद्धति हुआ करती है। मेरी पद्धति कैसी है, यह तुम्हें देखना हो, तो देख सकते हो। मैंने अपने संशोधन कार्य के लिये जो दौरे किये, उनकी एक डाइरी या रोज़ नामा मैंने लिख रखा, है। उसे पढ़कर देखो, तो मेरी कार्य-पद्धति का पता तुम्हें लग जायेगा यह कह कर उन्होंने फूलस्केप कागज़के आकारकी कोई दो तीनसौ पृष्ठकी एक किताब मुझे दी।

रोजनामा

यह किताब उनके दक्षिण भारतके दौरे का रोजनामा था। पहले ही पृष्ठपर उन्होंने अपने लिये जो कुछ नियम बना रखे थे उनका दिग्दर्शन किया गया था, जिनमें तीन नियम अबभी अक्षर-अक्षर मुझे याद हैं। वे इसप्रकार हैं (१) यह दौरा केवल संगीत के संशोधन कार्यहीके लिये है, इस लिये किसीभी गांव या शहरकी पुरानी इमारतें, दर्शनीय स्थान या ऐतिहासिक महत्व रखनेवाले स्थान देखनेमें समय नष्ट न किया जाये। (२) परस्पर आदर सत्कार खानपानके समारोहोंमें वक्त बरबाद न किया जाये (३) किसीसे विद्वान् गायक या संगीत शास्त्र जाननेवाले गुणीजनों का पता मिलनेपर उनके रहनेकी जगह दूर-दूर ही क्यों न हों, वहाँ जाकर उनसे बातचीत करके ज्ञान प्राप्त किया जाय। नियमोंके इस पृष्ठके बादके दो चार पृष्ठोंपर दाक्षिणात्य संगीत पर लिखे गये जिन ग्रंथोंके नाम उन्हें मिल सके थे उनकी सूची लिख रखी थी। साथ साथ इन ग्रंथोंको पढ़नेपर मनमें जो विचार पैदा हुए और जहाँ जो बातें साफ़-साफ़ समझ में आने न पाई उनकी और उनसे निर्माण होनेवाले प्रश्नोंकी सूचीभी थी उन्हीं ने इसकेबाद क्रमशः वे जहाँ-जहाँ गये और जिन जिन लोगोंसे उन्हों ने मुलाक़ात की, उनके सम्बन्धमें विवरण था। किसी पंडितसे मुलाक़ात करने पर उनसे जो बातचीत हुआ करती, उसे त्योंका त्यों प्रश्नोत्तरके रूपमें उन्होंने लिख रखा था, इसलिये इस रोजनामेमें कई किस्मके स्वभावाचित्रभी बड़ी खूबीके साथ उतारे गये थे।

लक्ष्य संगीत

'लक्ष्य संगीत' नामक ग्रंथकी कल्पनाका उदय उनके मनमें किसतरह हुआ, इसका उल्लेखभी मैंने इसी रोजनामेमें पाया। उन दिनों दक्खन हैदराबादमें अप्पा तुलसी नामके एक विद्वान संस्कृत पंडित और संगीत शास्त्रज्ञ रहते थे। पंडितजी उनसे मिलने गये। प्रास्ताविक क्षेम कुशलके प्रश्नोत्तर हो लेनेके बाद पंडितजीने उनसे पूछा,—'आजकलका संगीतका स्वरूप पुराने ग्रंथोंमें पाये जानेवाले स्वरूपसे बिल्कुल बदलसा गया है; तो क्या आपने ऐसा कोई ग्रंथ देखा है, जिसमें रागोंके वर्तमान रूपोंका वर्णन किया गया हो?" उसपर पंडित अप्पा तुलसीने संस्कृतके कुछ श्लोक कह सुनाये। इन श्लोकोंमें रागोंके प्रचलित रूपों और नियमोंका वर्णन अच्छीतरह किया गया था। पंडित भातखंडेको रह रहकर इस बातका आश्चर्य हो रहा था, कि मैंने इतने सारे संगीतके ग्रंथोंकी खाक छान डाली; लेकिन फिर भी मुझे ये श्लोक कैसे कहीं न मिले। पंडितजीने अप्पा तुलसीके से वह ग्रंथ मांगा, जिसमें ये श्लोक हों। पर उन्होंने बगले झांकना शुरू किया। कुछ दिनोंके बाद दोनोंमें कुछ अधिक घनिष्ठता हुई, तब जाकर कलई खुली और अप्पा तुलसीने स्वीकार कर लिया, कि वे श्लोक किसी पुराने ग्रंथमें पाये नहीं गये है; बल्कि रागोंके नये रूपोंके बारेमें मैंनेही ये संस्कृत श्लोक बनाये हैं। उस दिन घर लौट आने पर पंडितजीने अपने रोज़नामेमें लिखा,—वर्तमान रागोंके रूप पुराने ग्रंथोंसे मेल नहीं खाते; और जनता पुराने ग्रंथोंके संस्कृतमें लिखे हुए आधार दिखाये बिना उनपर विश्वास नहीं करती। प्रचलित रागोंके रूप अच्छे ऊंचे खानदानी और पक्के जानकार गवैयोंके पाससे हमें प्राप्त हुए हैं। ऐसी दशामें यदि इन राग रूपोंपर संस्कृत श्लोक बनाकर एकाध ग्रंथ लिखा जाये, तो रागरूपोंका आधार संस्कृत भाषामें है यह देखकर जनता को संतोष होगा और संगीत संशो-

धन करके प्रचलित रागोंके स्वरूपों पर नियम बांधने और उसमें सूत्र बद्धता लाने के हमारे उद्देशकी पूर्ति होगी। इन्हीं विचारों का मूर्त–स्वरूप 'लक्ष्य–संगीत' ग्रंथ है।

दो महान व्यक्ति

मुझे रह रह कर इसी एक बातपर आश्चर्य हुआ करता था, कि हमारे गुरुजी पं. विष्णु दिगम्बर तथा पं॰ भातखंडे जी एक साथ मिलजुलकर कार्य क्यों नहीं करते ? सन् १९३० या उसके लग-भग जब पं. विष्णु दिगम्बरजी बम्बई आये थे, उस वक्त मैंने उनके साथ बातचीत करते वक्त यह सवाल उठाया भी था। उस वक्त उस प्रश्न के उत्तर में उन्होंने मुझसे कहा;—'मैं जब बम्बई में आया, तब पं. भातखंडेजी हमारे मदरसे में गानेकी महफ़िलों में आया करते और उन्हें मेरा गाना अक्सर पसंदभी आता। बादमें दो तीन बार उनसे मेरी भेंट भी हुई। सन् १०१३–१४ या उसीके लगभग पं. भातखंडेजी मुझसे कहने लगे, कि आपकी संगीत शाला काफ़ी बडी है और उसमें कई लोग संगीत सीखनेके लिये आते हैं। संगीतके सम्बन्धमें मेरे कार्य और व्यासंगको आप जानतेही हैं। सारे भारत भर में घूमफिरकर पृथक–पृथक घरानोंके मशहूर गवैयोंसे मैंने मुलाक़ात की है और प्रचलित रागोंके स्वरूप कायम करके उनके कायदे भी मैंने लिखे हैं। मैं चाहता हूं, कि आप प्रत्यक्ष गायनकी तालीम दीजिये और मैं संगीत शास्त्रके सम्बन्धमें विवेचनात्मक व्याख्यान दूँ। ग्रंथों और व्याख्यानोंके रूपमें संगीतके प्रसार करने के संबंध में पंडितजीने मेरे सामने एक योजना भी पेशकी थी। गुरूजीके मुंहसे यह लम्बी दास्तान सुनने के बाद मैं समझ गया, कि शायद इसी योजना को लेकर इन दोनों महापुरुषों के बीच में मतभेद की खाई निर्माण हुई और तबसे ये दोनों एक दूसरे से जीवन में मिल न सके।

सन् १९३४–३५ या उसीके लगभग एक दिन शामके वक्त पं. भातखंडे चौपाटीपर एक बेंचपर बैठे हुए मुझे दिखाई दिये उनके पास और एक सज्जन बैठे थे और उनसे संगीतके विषय में एवं ग्रंथ अंग्रेजीमें लिखनेके लिये कह रहे थे। पंडितजीने ऐसा करनेसे साफ़ इन्कार किया और कहा,—'क्या अंग्रेज लोग अपने शास्त्र–ग्रंथ मराठीमें लिखते हैं, जिससे कि महाराष्ट्रके लोग उस विषयको समझलें ? अगर नहीं, तो मैं ऐसा क्यों करूं ? हिंदुस्तानी संगीतके संबधमें जिन्हें विशेष प्रेम और आस्थाहो, और खासकर जो लोग यह उत्कट इच्छा रखते हों, कि सन्गीत के विषयमें मैंने क्या लिखा है उसे समझ लें तो उन्हें चाहिए, कि वे मराठी सीखें और मेरे मराठी ग्रंथ पढ़ें।'

यह जवाब सुनने पर उन सज्जन ने फिर कहा,—'यदि अंग्रेजीमें न हो, तो न सही; मगर कमसे कम हिंदी या उर्दू भाषामें तो आप अपने ग्रंथोंका अनुवाद कराके प्रकाशित करें।' इसपर पन्डितजी मेरी तरफ़ देखकर बोले,—'एक तो हिंदू कलाकारोंके पास रही हुई विद्या और कला सब जाती रही है। आज तो भी कमसे कम यह कला मुसलमानोंके हाथोंमें पड गई है। दर असल यह कला हमलोगोंकी थी और है भी। लेकिन मुसलमानोंकी हर तरहसे खुशामद और सेवाटहल किये बिना उसे फिरसे प्राप्त करना भी हमारे लिये मुश्किलहस्त आज हो गया है। आज हमारे हाथोंमें अगर कुछ बच रहा हो,तो वह संगीत शास्त्रही है। इसीसे मैंने जान बूझकर अपने ग्रन्थ मराठीमें लिखे हैं। अगर कला न हो, तो न सही; शास्त्र तोभी कमसे कम हमारे पास रहे। हिंदू लोग संगीत–शास्त्रके नियम कहने लगें, तो मुसलमान लोग उनका आदर नहीं तो कमसे कम भय तो मानेंगे! गायक के नाते नहीं, तो न सही, पंडितके नाते भी हमारा गौरव बना रहा, तोभी कुछ कम नहीं। आजतक मैंने सिर्फ़ एकही पुस्तक अंग्रेजीमें लिखी है और वह भी ग्रंथ या पुस्तक लिखने के उद्देशसे नहीं लिखी है। बडौदेमें एक बार संगीत परिषद हुई उसके लिये संगीत संबधी ग्रंथोंकी विवेचना करने वाला वह एक निबंध मात्र था।" इसके बाद उन्होंने मेरी तरफ़ मुडकर कहा— "मैंने अभी जो बातें बताईं, उन्हें खूब ध्यानमें रखो और तुम्हें जो कुछ भी लिखना हो, वह जहाँतक बन पाये, अपनी मातृभाषा ही में लिखो।"

इसके बाद पंडितजि से मेरी दो बार भेंट हुई थी। सन् १९३६ के अंतमें वे बीमार हुए और उसके बादकी गणेश–चौथके दिन उनका शरीरान्त हुआ।

श्री. शंकरराव कर्नाड

पं. विष्णु नारायण भातखंडे विद्याव्यासंगी पुरुष थे। भारतके प्रायःसभी ग्रंथ संग्रहालयोंमें जाकर वहाँपर पाये जाने वाले संगीत ग्रंथों को उन्होंने एक एक करके देख डाला था। उर्दू और फ़ारसी ज़बान जानने वाले मुन्शियोंको अपने पास रखकर उन भाषाओंके

लिखे गये ग्रंथोंका मर्म भी उन्होंने समझ लिया था। कई अप्राप्य ग्रंथोंको उन्होंने छपवाकर प्रकाशित भी किया था। पृथक-पृथक घरानोंके नामचीन गवैयोंको बम्बईमें अपने घर पर निमंत्रित कर उनसे उन्होंने कई अच्छे खानदानी गाने इकट्ठा कर रखे थे। अगर कोई खां साहब बगैर गंडा ताबीज बांधे तालीम देनेसे इन्कार कर दें, तो उनका गंडा बँधवा कर विद्या ग्रहण करने में उन्हें कभी किसी तरहकी हिचकिचाहट मालूम नहीं हुई। उनका स्वभाव कुछ संकोची और निस्पृह था। वे न तो व्यर्थ किसीके लिये एक पाई भी खर्च करते और न अपने लिये ही किसीको खर्च करने देते। मुझे पक्का याद है, कि एक बार बम्बईके फोर्ट अहाते में फ्लोरा फाउण्टनके पास हम दोनों एक साथ 'बस' गाड़ीमें चढे और एकही बेंच पर बैठे; लेकिन उन्होंने मुझे अपने लिये टिकट न लेने दिया। वे कुछ एकान्तप्रिय से भी थे। मित्र परिवार भी उनका बहुत बड़ा न था। कुछ खास लोग ही प्रायः उनके साथ दिखाई देते थे। उनमें भी उनका विशेष प्रेम और विश्वास बांदराके रहनेवाले श्री. शंकररावजी कर्नाड पर ही था।

ये दोनों अक्सर एक दूसरे से मिला करते। उस वक्त पं० भातखण्डे जी अपने पुराने और नये इकट्ठा किये हुए गाने श्री. शंकर रावजी कर्नाडको बताते और उनसे उन पर राय भी पूछते। अप्राप्य रागोंके गाने प्राप्त करने पर वे उनकी तीन नकलें उतारते। एक नकल अपने लिये, दूसरी उनके प्रमुख शिष्य प्रिन्सिपाल श्रीकृष्ण रातान्जनकरजी के लिये और तीसरी अपने मित्र श्री. शंकरराव कर्नाडके लिये। दूसरों की व्यर्थ खुशामद या चापलूसी करना उन्हें जरा भी न भाता था। इसी तरह इश्तहार बाजीके भी नाम से उन्हें चिढ थी। रुपये पैसेका लालच उन्हें छू तक नहीं गया था। कहा जाता है, कि बडौदा नरेश स्वर्गीय महाराजा सयाजी-राव की पंडितजी पर विशेष कृपा थी और उन्होंने पंडितजीको संगीत संशोधनके कार्यके लिये सक्रिय सहायता भी की थी। पंडितजी धर्म परायण पुरुष थे। हररोज सवेरे वे स्नानसंध्या वंदन आदि कामोंसे निवृत्त होकर रूप का भी आवर्तन किया करते। उनका रहन सहन बहुतही नियमित था। रातमें देरतक वे कभी जागते नहीं थे। उनका स्वास्थ्य अंत तक बहुत अच्छा था और शरीर सुदृढ था।

मेरे परिचित पं. विष्णु नारायण भातखण्डेजीका जीवन, कार्य और व्यक्तित्व इस तरह था। ग्रंथोंके रूपमें उनका जीवनकार्य लोगों के सामने मौजूद है। मुझे ज़राभी शक नहीं, कि वे इस संगीत कलाके उपासकों को पीढ़ी दर पीढ़ी उनमें रहे हुए ज्ञानके ज़रिये अनुग्रहीत करते रहेंगे।

B. B. Sitar Maker

बाबू बालासाहेब

सितार, तंबोरा, ताउस, दिलरुबा, बीन आदि

तंत साजोंके पुराना कारीगर.

पता— स्टेशन रोड, मिरज (S.M.C.)

स्व. पं. विष्णु दिगंबर संगीत प्रकाशन

संगीत बालप्रकाश—(नया संस्करण) भाग १-२-३

मूल्य ३-०-०

संगीत बालबोध—(पुराना संस्करण) भाग १-२-३-५

राग प्रवेश—(पुराना संस्करण) भाग १-१९

डाकव्यय अलग होगा।

पुस्तकें मिलनेका पता:—

६२८ बुधवार पेठ

पूना. २

सुप्रसिद्ध चित्रपट–संगीत–दिग्दर्शक

के

कुछ विचार

कलाओं का वह सम्मिश्रण, जो वैज्ञानिक साधनों द्वारा एक रुपहरी – पर्देपर, जन–समुदाय को पूर्ण अंधकार मय वातावरण में बैठा कर, प्रदर्शित किया जाता है; हमारे मतानुसार वर्तमान काल में आविष्कृत वह औषधि विशेष है, जो उचित रूप से यदि उपयुक्त उपचारों सहित प्रयोग में लाई गई तो संजीवन–बूटी के समान गुणकारी, अन्यथा एक हलाहल विष, सिद्ध हो सकती है।

हमारा' चल–चित्रपट 'से उसी सीमा तक सम्बन्ध है जहांतक 'संगीत 'का। अस्तु, प्रसिद्ध 'संगीत– दिग्दर्शक ' (music director)' गुलाम हैदर 'साहब से मिलकर जो सामग्री हमारे प्रतिनिधि को प्राप्त हुई है, वह हम ' बिहार 'के पाठकों के समक्ष इसी आशा से निम्न–लेख में दे रहे हैं कि वे उससे पूर्ण लाभ उठावें। —संपादक

★ ★ ★ (लेखक:—रा. कि. भटनागर) ★ ★ ★

परिचय:—

जिसे चित्रपट देखने का शौक है। उसने अवश्य ही कोई वह चित्रपट भी देखा होगा, जिसमें सुप्रसिद्ध गुलाम हैदर सा: ने संगीत–दिग्दर्शन किया है। अपने चातुर्य, गुण, एवं गुरुजनों के आशीर्वाद से उनका कार्य हरबार प्रशंसनीय ही रहा है; अतः चित्रपट प्रेमी पाठक गण ने भी उनकी कला का अनुमान भली प्रकार किया होगा, तथा इस प्रसंग के कारण उन प्रभावशाली गीतोंका साक्षात् गुंजन पाठकों के कानों में अवश्य ही होने लगेगा, ऐसी आशा है। आप लाहौर के रहने वाले हैं; परन्तु कार्य–वश आज कल आपने बम्बई को ही अपना निवास–स्थान बना लिया है। आपका जन्म जैपुर स्टेट के एक कर्मचारी विलास अली खां सा: के घर, हैदराबाद (सिंध) में हुआ था। इस समय आपकी आयु लगभग ३६ वर्ष है।

संगीत–शिक्षण तथा अन्य व्यवसाय:—

लाहौर में आप दन्त–वैद्य (Dentist) का काम करते थे, तथा आपको उस दुकान से पर्याप्त प्राप्ति भी होती थी। इसी समय वहाँ एक नाटक कम्पनी आई। बचपन से ही संगीत से प्रेम होने के कारण मन न माना और आप नाटक देखने आ पहुँचे। मानो, किसी भूखे–प्यासे को रोटी और पानी दोनों मिल गये हों। "गाना और तमाशा बहुत ही अच्छा लगा"। इस आहुति से, वह बचपन से ही सुलगी हुई अग्नि अब प्रज्वलित हो भड़क उठी, तथा आपकी युवा–अवस्थाका विचार करके स्पष्टी के डर से पूज्य पिता ने संगीत सीखने की आज्ञा दे दी। बाबा हरिदासजी के पास आपने नियमानुसार हार्मोनियम–वादन सीखा, तथा योग्य शिक्षक और शिष्य के संगम से वह अविरल–धारा प्रवाहित हुई कि जिसमें, उसके प्रबल बहाव के कारण आपके जमे हुए व्यवसाय का धीरे–धीरे लोप होने लगा। एक म्यान में दो तलवारें कैसे आती? पिछले काम से मन हटने लगा, तथा एक नवयुवक की भाँति आपकी भी इस नवीन कला के प्रति रुचि बढ़ने लगी। अस्तु, भाई महर बख्शसे तबला–वादन सीखा। 'जहाँ चाह, वहाँ राह' की भाँति सौभाग्य–वश शीघ्र ही एक सुअवसर आया और वहाँ आई हुई एक नाटक कम्पनीमें आपने नौकरी भी कर ली और हार्मोनियम मास्टर के पद पर काम करने लगे। अपनी कुशाग्रबुद्धि के प्रभाव से आपने शीघ्र ही यह अनुभव किया कि इस व्यवसाय में उन्नति करने और यश–प्राप्ति के लिये बहुत ही जानकारी की आवश्यकता थी। यौवन और नई उमगों की नदियों की बाढ के सामने कोई भी वस्तु रुकावट बनकर स्थायी न रह सकी और नामी कला कार उस्ताद गामन खां साहब, हैदराबाद (सिंध) के पास संगीत शिक्षा ग्रहण करना आरंभ कर दिया। इस काम में इतना समय

चला जाता कि, दुकान बन्द कर देनी पड़ी और केवल संगीत सीखने में ही तन–मन लगा दिया। इधर उस्ताद गामन खां साहब ने भी भरपूर प्रयत्न किया कि आपको उच्च–कोटि के शास्त्रीय संगीत का स्पष्ट–ज्ञान हो जाय।

इन्हीं दिनों एक गुजराती महाशय, सेठ त्रिंबक लालने "श्री॰ वाकानेर समाज" नामक संस्था स्थापित की और उसमें आपको नौकरी मिल गई। धीरे–धीरे "नाटक की तर्जें बनाने का शौक पैदा हुआ" तथा आपकी बनाई हुई तर्जों (ध्वनियों) ने लोगों में बड़ा सन्मान पाया। वे इतनी प्रचलित हुई कि, उनके साथही साथ आप भी प्रसिद्ध हो गये और जो देखो वही आपको नौकरी इत्यादि के प्रलोभन देने लगा। अन्त में हबीब सेठ के यहाँ आपने गायन–मास्टर की नौकरी करली। यहाँ आपको दो सहायक (assistants) मिल गये और यदि मनमें आया तो हार्मोनियम भी बजाया; क्योंकि विशेष काम तो तर्ज बनाना ही था।

गवैयों की संगति और उसका प्रभावः—

पहिले सब लोग आपको डाक्टर गुलाम हैदर के नाम से पुकारते थे; परन्तु नाटक कम्पनियों में जो कीर्ति मिली, उससे लोगों ने डाइरेक्टर अथवा मास्टर की उपाधि लगा कर पुकारना आरंभ कर दिया। जब आपने इस कला को अपनाया, तो मानों आपसे कोई बड़ा भारी अधर्म तथा अपराध हुआ हो; सारे सम्बंधी, मित्र तथा अन्य परिचित लोग घृणा की दृष्टि से देखने और दूर रहने लगे। किन्तु आपने इसकी तनिक भी चिन्ता नहीं की, क्योंकि आपके पूज्य पिताजी का मत था कि, "जिस तरह बच्चे की तबीयत (इच्छा) चाहे, उसे वहीं और उसी तरह करना चाहिये। यह इन्सान (मनुष्य) का फ़र्ज़ (कर्तव्य) है कि वह जिस काम को भी हाथ में ले उसमें उसे कमाल (निपुणता) करके दिखाना चाहिये। कोई भी पेशा (व्यवसाय) कमतर (नीच) नहीं है। इतना नाम कमाओ कि दुनियां में नाम हो जाये कि फलां शख्स [अमुक–व्यक्ति] यह काम करता था।"

अस्तु, "लोगों की नफ़रत (घृणा) का कुछ असर (प्रभाव) न पड़ा। ज्यों–ज्यों मैं गाने के बारे में ज्यादह समझने लगा, त्यों त्यों गवैयों वगैरह (इत्यादि) लोगों की सोबत (संगति) में ही मज़ा आने लगा। यहाँ तक कि हैदराबाद (सिंध) में सेठ विशन दास, जिनके पास खां साहब प्यारे खां, (अम्मीद अलीके पिता) खां साहब मुबारक अली खां, व खां साहब गामन खां वगैरह, मुलाज़िम (नौकर) थे; शामको ८ बजेसे ११-१२ बजे तक महाफ़िलें होती और आला दर्जे (उचकोटि) के गाने बजाने का समा रहता था। मैं क़रीब – क़रीब [प्रायः] रोज़ ही वहाँ जानेका मौक़ा [अवसर] ढूँढता और इस तरह हरएक गवैये से कुछ न कुछ सीख लेता था। वहाँ एक मेला होता था; जिसमें बड़े अच्छे अच्छे गवैयों की गायकी भी मैंने सुनी। ख़ां साहब अला बख्श जर्नेल [पटियाला], ख़ां साहब मियां जान [पटियाला] व पं. भास्करराव जैसी बड़ी बड़ी हस्तियों [विभूतियों] का गाना सुना और उससे बड़ा फ़ायदा [लाभ] उठाया। ये लोग जितने गुणी, उतने ही नेक [सहृदय] भी थे। जो भी सवाल [प्रश्न] किया उसका खुशीसे जितना (मुमकिन) हुआ जवाब दिया। ये सब लोग मुझे अपने ही बच्चेकी तरह समझते थे। कभी कभी तो मैं धुन बना लेता और जाकर उनकी सलाह लेता, तो वे सुन कर बड़े खुश होते थे।" सारांश यह कि; आपने 'जिसने भी महरबानी (कृपा) की उसी से कुछ सेवा करके पाया।'

प्रिय-गवैयेः—

उपर्युक्त कथन से यह भली प्रकार विदित होता है कि, आपको सेवा–भाव तथा बड़ों के सत्कार का सदा ध्यान रहता था। स्वभाव से ही आप इस बात का प्रयत्न करते थे कि जिसके पास से भी हो सके विद्या प्राप्त की जाय, जो वास्तव में प्रशंसनीय एवं अनुकरणीय है। किसी ने ठीक ही कहा है:—

> "उत्तम विद्या लीजिये यद्यपि नीच पै होय।
> कंचन परो कीच में, 'रहिमन' तजत न कोय॥"

ऐसे उदाहरण आज कल के नवजवानों में बहुत कम मिलेंगे; परन्तु सच पूछें तो किसी भी श्रेणी के विद्यार्थी के लिये यही एक गुरहै, जो सफलता के उच्चतम–शिखर पर पहुँचा सकता है। इतना अच्छा स्वभाव होने के कारण ही आपने बार-बार यही कहा कि आपको शिक्षा तथा विद्यालाभ विशेषतः चुने हुए गुणी जनों की कृपा के कारण ही हुआ। सबसे पहिले आपने उस्ताद गामन खां साहब से विद्या–दान पाया। 'ये बड़े गुणी, बुज़ुर्ग (वृद्ध) और फ़कीर-दिल (सहृदय) थे। इनके मरने के बाद प. भास्कर राव जी से भी मुझे बहुत फ़ायदा (लाभ) पहुँचा।'

इसके बाद, आपको गुलाम अली साहब से जो विद्या-प्राप्ति हुई उसके लिये आपने उनका बहुत ही आभार प्रदर्शन किया और कहा

"गुलाम अली खां साहब में मैंने बहुत सी खूबियाँ (विशेषतायें) पाई। वे बहुत भारी तरीके से गाना गाते-गाते ऐसी जगह आजाते हैं कि सुनने वाले के रोंगटे (रोम) खड़े हो जाते हैं। उन जैसा सुरीलापन मुझे दूसरे में देखने को नहीं मिलता। उनका गाना सुनने से बहुत ही फायदा हुआ।"

प्रिय-वाद्यः—

भारतीय संगीत के लिये सबसे अच्छा वाद्य कौन सा है, तथा क्यों? इस प्रश्न का आपने यह उत्तर दिया, "नये सीखने वाले के लिये मेरी समझ में हार्मोनियम ही फायदेमन्द (लाभ दायक) होता है; क्योंकि इसके स्वर साथ ही बँधे हुए होते हैं, जो तम्बूरे वगैरह में नहीं। तम्बूरे पर रियाज़ करनेवाले को 'सा 'से' ऋषभ 'पर जाने में और उसे सही-सही सीखने में बरसों लगते देखे गये हैं, यह तम्बूरे पर उतना आसान और कोशिश करने से जल्द आने वाला नहीं, जितना कि हार्मोनियम पर।

मैं यह मानता हूँ कि हार्मोनियम में सारी पूरी-श्रुतियाँ नहीं होतीं और न रागों की वह बारीकी ही पाई जाती जो तार के बाजों में है। न उसमें आन्दोलन जैसे स्वर ही होते, फिर भी वही अच्छा है; क्योंकि अच्छे बजाने वाले इन खामियों (दोषों) को महसूस (विदित) नहीं होने देते। इसकी थोड़ी जानकारी के बाद सीखने के लिये वीणा बहुत अच्छा साज़ (वाद्य) है; लेकिन बजाने वाला मरहूम खां साहब अब्दुल अज़ीज़ खां जैसा चाहिये। मैंने उनका बजाना कई बार सुना, जिसमें बड़ा मजा आया।

चित्रपट-संगीत में विदेशी वाद्यों का प्रयोगः—

'चित्रपट-संगीत' की रचना और उसके दिग्दर्शन के लिये, क्या विदेशी वाद्यों का होना आवश्यक है? इस प्रश्न पर आपने बताया कि उनका होना आवश्यक ही है, ऐसी तो कोई बात नहीं; परन्तु अनुभवसे यह ज्ञात हुआ है कि माइक्रोफोन (Microphone) पर जब बहुत ज़ोर की आवाज़ निकलती है, तो उसमें मिठास पैदा करने के लिये विदेशी वाद्य ही अधिक उपयुक्त सिद्ध हुए हैं। विदेशी वाद्यों से देशी-ध्वनियाँ निकाल कर, देशीवाद्यों से उनका सम्मिश्रण कर देते हैं; जैसेः—वायोलिन फ्लूट, पियानो, तबला, कोरोनेट सारंगी तथा सितार इत्यादि।

"फिर यह बात गाने की किस्म (प्रकार) पर भी मुनहसर (निर्भर) है। रन्जीदा (शोक-प्रधान) गानों के लिये अक्सर (प्रायः) वीणा, सारन्गी या हवाइन-गिटार जैसे साज़ को काम में लाते हैं।"

ध्वनियाँ (तर्जें) बनानाः—

आपने नाटक कम्पनियों में ही ध्वनियाँ बनाकर बहुत नाम-कमा लिया था, जिसका यह परिणाम हुआ कि लाहौर-रेडियो पर भी आपको बुलाया जाने लगा। व्यवस्थापक-गण वहाँ सन्गीत सम्मेलन इत्यादि करते थे। इसमें बड़े-बड़े गुणी लोग भाग लेते थे। एक बार 'बागेश्री-सम्मेलन' के नाम से एक विशेष कार्य-क्रम रखा गया; जिसमें खां साहब गुलाम अली खां ने बागेश्री का एक ख्याल, खां साहब बर्कत अली ने बागेश्री की ठुमरी और अख्तरी बेगम ने बागेश्री की गज़ल, इस तरह सब लोगों ने अपनी अपनी चीज़ें सुनाईं। आपने भी बागेश्री की एक ध्वनि बनाकर अपने साज़ों पर जमाईं, जिसे सुनकर श्रोताओं के अतिरिक्त, व्यवस्थापक गण इतने प्रसन्न हुए कि जब भी कोई 'लाईट म्युजिक' की ध्वनि बनाने का काम होता तो वे आपको ही बुलाते। इसी विषय में आपने यह भी बताया, "यह काम इतना आसान नहीं कि जितना लोग समझते हैं और हरएक आदमी धुन (ध्वनि) बनाने के लिये तैयार हो जाता है। किसी ने पहिले क्लासीकल (शास्त्रीय-संगीत) सीख कर, लयकारी की पूरी वकफियत (ज्ञान) हासिल (प्राप्त) करली हो और फिर अच्छे गुणी लोगों की सोबत (संगति) की हो, तभी उसे धुन बनाने की समझ आती है। राग-रागनी, लयकारी, गुणियों का साथ, अच्छे गाने और अच्छी चीजें, इन सब की धुन बनाने में बड़ी ज़रूरत होती है। मेरी सारी धुनों की बुन्याद (नींव) 'क्लासीकल' ही रहा है, चाहे वह राग हो या ताल। ऐसी चीज़ों को पब्लिक भी पसन्द करती है।"

आपके मतानुसार, "लाइट-म्युज़िक के यह माने (अर्थ) नहीं कि उसमें कोई लय या ताल न हो। राग और ताल के बिना तो धुन ही नहीं बन सकती। लाइट-म्युज़िक में इन दोनों का क्लासीकल की तरह ही मेल होता है।" आप प्रायः उन ताल और रागों का प्रयोग करते हैं, जो जनता की समझ में आ सकें। अस्तु ध्वनि में लय (Rhythm) और सम्पूर्ण रागों का होना

अत्यन्त आवश्यक है; क्योंकि इस प्रकार की ध्वनियों को साधारण जनता भी सुगमता से सीख सकती है।

ध्वनि बनाने में किस बात पर विशेष ध्यान रखना पड़ता है? इस प्रश्न के उत्तर में आपने कहा, "कभी–कभी हमें ऐसा करना पड़ता है कि भैरवी में धुन बनाते दफ़ा [समय] किसी जगह, जरूरत के मुताबिक़ [आवश्यकतानुसार] दूसरे राग का भी अंग ले लेते हैं। अन्तरा कहने में 'मालकौंस' की तान लेकर स्वर पर गये तो आगे चलकर उसी से मिलता–जुलता दूसरा राग काम में लाते हैं। कोशिश यह होती है कि पहला राग दिमाग़ से न निकले और अगर [यदि] ज़रूरी हुआ तो फिर पिछले राग पर आजाते हैं, जिससे 'रिदम' न जाने पाये।"

"मैं स्टोरी [कथानक] की सिचुएशन [वातावरण] को पहिले समझ लेता हूँ, कि वहाँ खुशी है या गमी [उदासी]। फिर आर्टिस्ट का मूड (भाव) क्या है? इनके बाद पब्लिक के नज़रिये [पसन्द] को देखता हूँ। तब मूड न बिगड़े, पब्लिक जल्द समझ जाये और उसपर असर पड़े, यह सामने रखकर ट्यून बनाता हूँ और वही राग–रागनियाँ इस्तैमाल (प्रयोग) करता हूँ जो सिचुएशन के मुताबिक़ सही व अच्छी लगने वाली हों। शायर [कवि] के लिखे बोल पहिले मैं सिचुएशन के हिसाब से जमाता हूँ और फिर गाने का जैसा मतलब हो वैसी ही ट्यून निकालता हूँ।"

ध्वनि बनाने के इस कठिन–कार्य को सफलतापूर्वक करने के लिये आप नित्य संगीत–शास्त्र का अध्ययन करते हैं और अपने अनुभवों से लाभ उठाकर हर गाने की उलट–फेर करते रहते हैं। जब बोल ठीक–ठीक बैठ जाते और चीज़ में मिठास तथा लय उत्पन्न हो जाते हैं तब आप उसका नोटेशन कर लेते हैं। आप सदा यह भी ध्यान में रखते हैं कि रचना में "पुराना जैसा कुछ न आजाय। हर बार वह कुछ नया सा ही रहे"। वास्तव में किसी भी कार्य अथवा वस्तु की पुनरावृत्ति से उसका रस किसी न किसी अंश में कम हो ही जाता है।

'Variety is the spice of life.'

'संगीत–दिग्दर्शन' के प्रति:—

ध्वनि बनाने के लिये न तो कोई परीक्षा पास करनी पड़ती है और न कोई लाइसैन्स ही चाहिये। अतः जो देखो वही म्यूज़िक डाईरेक्टर का काम करने लगता है। वह इस बात का कदाचित ही ध्यान रखता है कि उसकी चीज़ों का गवैयों और गुणी लोगों में भी आदर हो। वह तो यह चाहता है कि उसकी ध्वनियाँ साधारण लोग सिनेमा–घर से बाहर निकलने से पहले ही गाने लगें। उनके दिलों में चित्रपट देखते समय ही गाना सुनकर एक विशेष प्रकार की हल–चल मच जाये। वे ज़ोर–ज़ोर से सीटियाँ बजाने लगें और 'मार डाला' इत्यादि अनेक प्रकार के अश्लील–शब्दों से सारा हॉल गूंज उठे। आपको यह बिल्कुल भी पसन्द नहीं है। "धुन ऐसी होनी चाहिये कि जिसे गुणी लोग भी बिल्कुल भद्दी और बेकार न बता सकें।" कई डाइरेक्टर कोमल स्वरों में तर्ज़ बनाते–बनाते एक दम तीव्र स्वरों पर चले जाते हैं। आपका मत है कि, "वे जल्दी सक्सैस [सफल] नहीं होते और पब्लिक भी ऐसी धुन पसन्द नहीं करती। मैं तो जहाँ तक होता है, एकही राग में सारी चीज़ बनाता हूं। कभी–कभी ही मैं पहिले राग से मेल खाने वाला दूसरा राग मिलाता हूँ।"

आपने, अपने अनेकों बार के अनुभवोंका वर्णन किया और इस बात पर विशेष ज़ोर दिया कि उनकी चीज़ों को शास्त्रीय संगीत जानने वाले ही ज्यादह अच्छी, ठीक–ठीक और सुगमता से गा सकते हैं। अपनी सफलता के लिये आपने ईश्वर को धन्यवाद देते हुए कहा, "मेरी ट्यून को गुलाम अली साहब जैसे गुणी कलाकार से लेकर मामूली गवैये तक सभी गाकर खुश होते हैं।" अपने अनेकों बार के विशेष अनुभव का वर्णन करते हुए बताया, "लाहौर के खांसाहब गुलाम अली खांसाहब मेरे बड़े महरबान [दयालु] और बुज़ुर्ग [वृद्ध] दोस्त हैं। मैं उनकी बड़ी इज़्ज़त करता हूँ। उन्होंने अक्सर मेरी बनाई हुई धुनों को मुझे ही सुनाकर उनकी तारीफ़ की, जिससे मेरा हौसला [साहस] बढ़ा और अपने काम में लुत्फ़ [आनंद] आया।" सच्चे संगीत रसिकों का यही कर्तव्य है कि वे दूसरे के गुण की भी सराहना करें, न कि उसके किये हुए काम में अनेकों मीन–मेष निकाल कर उसकी निन्दा यहाँ–वहाँ करते फिरें और सही चीज व ठीक ढंग, इत्यादि किसी को भी न बता कर अपने ही साथ गठरी बांध कर परलोक ले जायें।

पाठकों को यह बताने की कदाचित आवश्यकता नहीं है कि कुछ नये चल–चित्रों में आज कल विदेशी–ढंग की पुट पाई जाती है और वे ट्यून जनता भी गली–कूचों से लेकर भोजन

यह तक, उठते-बैठते, बड़े आनंद से चिल्ला कर गाते हैं। भाग्य से उनकी शब्द-रचना और उनके आर्यों तक का भी वह कुछ विचार नहीं करती। कुछ घरों में तो यह भी देखने में आया है कि बाबू साहब, वे ऐसे असभ्य और भद्दे गाने अपने दुध-मुँहे बच्चों को भी सिखा देते हैं, तथा अच्छी तरह सीख जाने पर, अपने मित्रों इत्यादि आगन्तुकों को उनकी तुतलाती हुई बोली से हू-बहू सुनवा कर महमानों का स्वागत, और बच्चों को इनाम का प्रलोभन देकर उन्हें उत्साहित, करते हैं; कदाचित् उससे भी और अधिक अश्लील चीज़ सीखने के लिये। जब ऐसे विदेशी संगीत के समावेश के सम्बध में आपसे पूछा, तो बड़े गंभीर-भाव से आपने कहा, "मुझे इस तरह का म्यूज़िक बिल्कुल भी पसन्द नहीं। यह हो सकता है कि ऐसा म्यूज़िक रखकर कोई म्यूज़िक-डाइरेक्टर कामयाब [सफल] भले ही हो जाय; पर मैं तो देशी रागों और साज़ों को ही पसन्द करता और काम में लाता हूँ। मुझे हिन्दुस्तानी ढंग (Indianisation) ही पसन्द है; क्योंकि मुझे उसमें बड़ा मज़ा आता है।"

हम आशा करते हैं, कि भारतीय-संगीत-दिग्दर्शक, 'संगीत कला' पर, जिससे उन्हें प्रेम होने का वे दावा करते, तथा जिसकी आराधाना करके ही वे अपनी स्वार्थ-सिद्धि करते हैं, वे 'स्वतंत्र-भारत' की शुद्ध एवं स्वच्छन्द-वायु का सेवन करके अब भी समझ जायेंगे कि वे भारत की इस अनमोल एवं अद्वितीय कला-निधि पर घातक-प्रहार करना छोड़ दें; नहीं, भूल ही जायें। यदि, इन महानुभावों में भारतीयता का अंश-मात्र भी होगा तो आशा है कि वे यही प्रयत्न करेंगे कि भारत में भारतीय-संगीत स्वच्छन्दतापूर्वक स्वतंत्रता का भोग करे और समयानुसार देश-गौरव से युक्त, नन्हे-नन्हे बच्चों को मीठी-लोरियाँ, नव-जवानों को भारतीय-आदर्श और कर्तव्य-परायणता, योद्धाओं को स्वदेश पर मर मिटने का शंख-नाद, वृद्धों को सुखमय शान्त-जीवन, योगियों को अटूट-भक्ति, तथा शेष मानव-जाति को परस्पर निःस्वार्थ एवं निष्कपट प्रेम और सेवा-भाव, इत्यादिक आवश्यक सभी पाठ ही पढ़ायें। यह सब गत इतिहास में हुआ है और अब भी सफल प्रयत्न द्वारा होना संभव है।

भावी संगीत-दिग्दर्शकों को संदेशः—

उन नवयुवकों के लिये; जिनके हृदय में एक संगीत-दिग्दर्शक बनने की प्रबल-उमंगें, पूर्णिमा के दिन विशाल-सागर की गगन-चुंभी लहरों की भांति, उत्ताल हिलोरें ले रही हों; आपने निम्न-सन्देश सहर्ष प्रदान किया है। आपका, इस सब कष्ट के लिये, आभार प्रदर्शन करते हुए, वाचकों से सानुरोध निवदन है, कि वे उसके अनुकूल चलने का व्रत लेकर अवश्य यश-श्री प्राप्त करने के साथ ही 'संगीत' के प्रति अपने सच्चे कर्तव्यों और 'संगीत-कला-विहार' को सदा याद रखेंगे।

"जिन नौ जवानों को म्यूज़िक-डाइरेक्टर बनने का शौक है, मैं उनका इस नेक पसन्द के लिये उनका तहे-दिल से शुक्र गुजार (कृतज्ञ) हूँ। अगर मेरे तजुर्बे (अनुभवों) से उन्हें कुछ फ़ायदा पहुँचा तो मैं बड़ा खुश होऊँगा। मुझे उम्मीद है कि वे नीचे लिखी बातों पर खास ख्याल (ध्यान) रखेंगे"—

१. "लय का माद्दा (ग्रहण-शक्ति) पैदा करें और लयकारी जरूर सीखें।"

२. "अच्छे गाने-बजाने वालों से सीखें और उनके साथ रह कर उनकी बातों में से ही बड़ी-बड़ी चीजें और काम की बातें निकालें।"

३. "क्लासीकल सीखने के बाद हल्की-हल्की जगहें ढूँढ कर और हल्की-हल्की मुर्कियाँ ही चुन कर धुन बनायें।"

४. "खास कर चार रसों को याद रखें—वीर-रस, शृंगार-रस, भक्ति-रस और वैराग्य-रस; क्योंकि यही रस फिल्म में ज्यादह पाये जाते हैं।"

५. "खुद पब्लिक की पसन्द को जानने की कोशिश करें, और उसी के मुताबिक चलें।"

६. "रिदम और मीठे स्वरों के साथ धुन में वे जगहें और तानें जमायें, जो बड़े-बड़े गुणी लोगों से सुनीं और क्लासीकल के ढंग की हों।"

७. "पब्लिक ऐप्रीसिएशन (गुणानुवाद) से ही हौसला बढ़ता और कामयाबी (सफलता) का अन्दाज होता है। लेकिन, यह न भूलना चाहिये कि पब्लिक में मामूली लोगों के साथ ही गुणी लोग भी होते हैं।"

दिग्दर्शक की असफलताः—

इस विषय में जो आपने कहा, वह फिल्म-निर्माताओं तथा

जनता दोनों को अपना-अपना उचित कर्तव्य समझने की ओर बाध्य करने का एक संकेत-मात्र है। वास्तव में इन दोनों पर ही कला का जीवन—मरण निर्भर है। ऊपर यह बताया जा चुका है कि, "मुझे, अपने काम में नाम कमाने में, क्लासीकल ही मदद देता आया है और देता है, फिर भी, कभी-कभी मोर्चा जीतने में कमी रह जाती है। इसकी वजह यह है कि, हर डायरेक्टर, हर नई फिल्म में एक नई चीज व नया ढंग रखने की कोशिश में एक एक्सपेरीमेंट (प्रयोग) कर बैठता है; लेकिन जिसे वह बहुत अच्छा समझता है, वही धुन पब्लिक को बिलकुल भी पसन्द नहीं आती। इस तरह वह एक्सपेरीमेंट फेल हो जाता है। प्रोड्यूसर [निर्माता] के दख़ल (हस्तक्षेप) का भी इस पर बड़ा असर पड़ता है। कभी तो वे अपनी ही पसन्द की धुन चाहते हैं, और अच्छी बनाई हुई चीज़ को भी बुरा कह देते हैं। फिर भी, यह हमेशा ही नहीं होता। हमें मिल-जुल कर ही काम करना पड़ता है।

अन्य बातें:—

पंजाबी, बंगाली और अंग्रेजी संगीत की तुलना करते हुए, आपने अपने विचार प्रकट किये, "अपनी-अपनी जगह पर तीनों ही अच्छे हैं। अंग्रेजी-म्युज़िक में हर्मोनाईजेशन (स्वर की एकता) व बंगाली में सोज (हृदय-स्पर्शी-शक्ति) बहुत अच्छा पाया जाता है। लेकिन, पंजाबी में हर किस्म का मसाला इकट्ठा किया जा सकता है, इसी लिये पंजाबी-म्युज़िक ही मुझे पसन्द है।"

उदार संगीत-रसिक एवं कलाकार के नाते, आपने कई फिल्मी सितारों और तारिकाओं की मुक्त-कंठ से प्रशंसा की। चलती फिरती व फड़कदार चीज़को अच्छे ढंग से गाने के लिये 'नूरजहाँ' व बोलों की दृष्टि से 'शमशाद बेगम' बहुत अच्छी हैं। इनके अतिरिक्त 'मुनव्वर सुलताना' और 'लता मंगेशकर' भी अच्छी कलाकार हैं। चारों में आपने यह विशेषता बताई कि जो भी तथा जैसे भी उन्हें बताया जाय उसे वे शीघ्र ही ग्रहण कर लेती हैं और इच्छित भाव-प्रदर्शन करती हैं। शास्त्रीय-संगीत की दृष्टि से 'जोहरा बाई और रोशन आरा' बहुत ही उपयुक्त हैं। इन्होंने आपके द्वारा दिग्दर्शित चित्रों में काम किया है। पुरुषों में आपने 'दुर्रानी' 'रफी', व 'बातिश' को अच्छा बताया।

अन्त में, आपने स्वर्गीय कुन्दन लाले 'सहगल' की बहुत ही प्रशंसा की और कहा, "उस जैसा गले का मिठास और गाने की कुदरती (ईश्वरीय) देन न किसी और में देखी और न है।" चौधरी, खज़ानची, खानदान, जमींदार, फूल, हुमायूँ, मेंहदी, मझधार, मजबूर, पद्मिनी और शहीद, इत्यादि प्रसिद्ध चित्रपटों में आपने संगीत दिग्दर्शन किया है। इनमें की निम्न-लिखित चीजें आपको बहुत पसन्द हैं। कदाचित् वाचकों को भी वे पसन्द हों:—

हुमायूँ:—'नयना भर आई नींद'।
'मैं तो ओढ़ूँ गुलाबी चुनरिया'।

खानदान:—'तू कौनसी बदली में मेरे चाँद है आजा'।

खज़ानची:—'लौट गई पापन अँधियारी'।

मेंहदी:—'चांद रात आई'।

फूल:—'दिवाली रानी हो तेरे क्या कहने'।

चौधरी:—'सजना तेरे बिना जी नहीं लगता'।
'बस बस रे ढोलना'।

इत्यादि—

आप स्वभाव से बहुत ही प्रसन्नचित्त हैं। एक अट-पट प्रश्न (फिल्म लाइन में आकर लोगों को कभी-कभी अपना नाम क्यों बदलना पड़ता है और आपने अपना नाम क्यों नहीं बदला?) का उत्तर देते हुए आपने हँस कर कहा, "कुछ लोगों के नाम इतने भद्दे होते हैं कि उनमें कोई अट्रेक्शन (आकर्षण) नहीं होता। इस लिये भोली-भाली पब्लिक को ललचाने के लिये वे अपना खूबसूरत सा नाम ढूँढकर रख लेते हैं। मैंने अपना नाम बदलने की कोई जरूरत नहीं समझी; क्योंकि लोगों को मेरे काम से ज्यादा दिलचस्पी [रुचि] होती है, नाम से नहीं।"

यही सत्य तो जनता को याद रखना चाहिये कि 'आमखाने से मतलब कि पेड़ गिनने से।' कलाकार की सच्ची परख उसके रूप-रंग अथवा बड़े लम्बे-चौड़े नाम से नहीं। 'वरन् उसके कला प्रदर्शन से होती है।

('विहार' के विशेष-प्रतिनिधि द्वारा)

नोट:—गुलाम हैदर सा: के कुछ चुने हुए गानों के नोटेशन का वाचक प्रतीक्षा करें।

शिवमत–हनुमन् मत

(ले. श्री. कु. मृगेन्द्र सिंहजी, पटियाला)

(गतांक से आगे)

[शिवमत और हनुमन् मत के भेद] हनुमन् मत में जो खंड मेरु है, वह इस प्रकार से है:—

(खंड-मेरु)

षड्ज की १ तान
ऋषभ की २ तान
गान्धार की ६ तान
मध्यम की २४ तान
पञ्चम की १२० तान
धैवत की ७२० तान
निषाद की ५०४० तान

इन तानों का प्रस्तार गणित–विद्या के अनुसार इस प्रकार मालूम होता है:—

स्वर–१–षड्ज–की–१–तान
स्वर–२–ऋषभ–की–१×२=२–तान
स्वर–३–गान्धार–की–२×३=६–तान
स्वर–४–मध्यम–की–४×६=२४–तान
स्वर–५–पञ्चम–की–५×२४=१२०–तान
स्वर–६–धैवत–की–६×१२०=७२०–तान
स्वर–७–निषाद–की–७×७२०=५०४० तान

यह हनुमन् मत के अनुसार खण्डमेरु है। यह प्रस्तार गणित के अनुसार सर्वथा सही आता है।

अब शिवमत का मेरुखण्ड–प्रस्तार भी लिखते हैं।

(शिवमत का खण्ड–मेरु)

शिवमत में गणित विद्या के अनुसार बहुत प्रकार का खण्डमेरु बनता है। यहाँ उदाहरण रूप से केवल दो प्रकार का ही खण्ड–मेरु दिखलाया जाता है:—

स्वर–१–षड्ज–की–१–तान
,,—२–ऋषभ–,, २×१=२–तान
,,—३–गान्धार–,,–३×२=६–तान
,,—४–मध्यम–,,४×६=२४–तान
,,—५–पञ्चम–,,–५×२४ = १२०–तान
,,—६–धैवत–,,–६×१२०=७२०–तान
,,—७–निषाद–,,–७×७२०=५०४०–तान

यह प्रस्तार तथा हनुमन् मत का प्रस्तार एक समान ही है। आगे कुछ नमूने और भी देखिये:—

१—षड्ज–७×१=७
२—ऋषभ–७×७ = ४९
३—गान्धार–७×४९ = ३४३
४—मध्यम–७×३४३ = २४०१
५—पञ्चम–७×२४०१ = १६८०७
६—धैवत–७×१६८०७ = ११७६४९
७—निषाद–७×११७६४९=८२३५४३

इस प्रकार और बहुत खंड-मेरु हैं, जिनको यहाँ अंकित करने से प्रस्तारों के बहुत विस्तार होजाने का भय है।

अब आगे कुछ अलंकारों का नमूना दोनों मतों के अनुसार यहाँ पर अङ्कित किया जाता है।

(शिवमत और हनुमन् मत में अलंकारों का वर्णन)

दोनों मतों के अनुसार सम्पूर्ण अलंकार तो प्रायः एक समान ही हैं और एक ही प्रकार के हैं।

१— सा, रे, ग, म, प, ध, नी, सा— (अलंकार)

२— सा, ग, रे, म, ग. प, म, प, नी, ध सा– (,,)

इस प्रकार बहुत से अलंकार हैं, जो राग को अलंकृत अर्थात् सुशोभित कर देते हैं। अलंकारों के बिना राग ऐसा रूखा-फीका रहता है, जैसे एक सुरूपवती स्त्री बिना भूषणों के शोभा रहित होती है अथवा जैसे एक सुन्दर पुरुष भी बिना वस्त्र धारण के कुरूप दिखाई देता है।

अब शिवमत और हनुमन् मत के रागों का वर्णन किया जाता है।

प्रथम हनुमन् मत में जो मुख्य बातें हैं, जिनसे राग बनते हैं, वे बातें लिखी जाती हैं:—

१— प्रत्येक राग में प्रथम षड्ज स्वर तो अवश्य ही होता है।
२— प्रत्येक रागमें वादी, अनुवादी तथा संवादी तीन स्वर होते हैं।
३— राग तीन प्रकार के होते हैं–सम्पूर्ण, षाडव, औडव। इससे कम स्वरों का राग कोई नहीं होता।
४—राग में ग्रह स्वर होता है, जहाँ से राग प्रारम्भ और समाप्त होता है।

इस प्रकार इस मत के राग–७९६४० होते हैं।

३२ थाटों के अनुसार और ७२ थाटों के अनुसार–१५०१७२ राग होते हैं; क्योंकि एक थाटमें सम्पूर्ण राग–१०५५, साडव-८५५, औडव– १२१ = (सम्पूर्ण) २०९१ होते हैं।

शिवमत में भी जो मुख्य बातें हैं, जिनसे राग बनते हैं; वे बातें लिखी जाती हैं।

१— प्रत्येक राग में प्रथम षड्ज स्वर तो अवश्य ही होता है।

२— प्रत्येक राग में वादी, अनुवादी तथा संवादी स्वर होते हैं।

३— राग तीन प्रकार के होते हैं–सम्पूर्ण, साडव, औडव इससे कम स्वरोंका राग कोई नहीं होता है।

४— राग में ग्रह स्वर भी होता है जहां से राग प्रारम्भ और समाप्त होता है।

अब शिवमत में हनुमन् मत से जिन बातोंका अन्त है वे सब बातें लिखी जाती हैं।

१— सारे रागों में अंश और न्यास स्वर भी होते हैं।

२—सारे रागों में राग श्रुति का वर्ताव होताहै, यह वर्ताव पहिले लेखमें अच्छी तरह लिखा जाचुकाहै।

३— रागों का स्वरूप केवल वादी, सम्वादी स्वरों से ही नहीं बनता है; अपितु उसका चलन पूरा करनेसे (जैसा कि चला आरहा हो) बनताहै।

इस मतमें सम्पूर्ण राग–१–थाठके	=	१०५५
साडव–	=	८५५
औडव–	=	१२१
	सम्पूर्ण–	२०९१ होते हैं

इस प्रकार–८८३२ शिवमत के थाटों के अनुसार—

८८३२×२०९१=१८४६७७१२ राग होते हैं।

शिवमत और हनुमन् मत के जो प्रचलित राग हैं और किस प्रकारसे वर्त्ताव में आते हैं यह सब लिखा जाता है।

(हनुमन् मत)

हनुमन् मत में–१–वादी स्वर का तात्पर्य्य राजा स्वर अर्थात् प्रधान स्वर से है, जिसपर रागका सम्पूर्ण स्वरूप निर्भर होता है।

२–सवादी स्वर–उसका आधा स्वर होता है, अर्थात् प्रथम स्वर का मंत्री (वज़ीर) है।

३–अनुवादी स्वर—इन सबका सेवक (गुलाम) है।

(ख्याल गायकी)

सदारंग और अदारंग शहनशाह मुहम्मद शाह रंगीला, मुगल बादशाह के ज़मानें में हुए हैं। इन्हांने प्राचीन शिवमत की गायकी धृपद की नई ईजाद करके और धृपद का ख्याल रखते हुए गायकी का ढंग बदल कर इसका नाम ख्याल रखा, अर्थात जो यह चीज़ बनाई वह धृपद का ख्याल करके ही बनाई है।

तराना—अमीर खुसरो का आविष्कार है। यह अमीर खुसरो सलतनते गुलमा बलबनशाह के शासन–काल में हुए हैं, यह फ़ारसी और उर्दू के बड़े योग्य कवि थे परन्तु हिन्दुस्तानी भाषा अच्छी तरह नहीं जानते थे। इन्होंने हिन्दुस्तानी संगीत क आधार पर फ़ारसी की रुबाई(कविता) रखकर बीणा के बोलों सेताल का आवि" ष्कार किया; परन्तु सदारंग और अदारंग ने फिर वेही तानें ओंकार रूप में ही स्थापित करदी। ख्याल, तराना, ठुमरी टप्पा–ये सब आदि से ताल में ही गाई जाती हैं और बिलंपत, मध्य, द्रुत इन तीनों लयों में भी गाई जाती हैं।

इसी प्रकार मसीत खां जी और फ़िरोज़ खां जी इन दोनों ने सितार पर इनके बजाने का ढंग बदल दिया था।

(शिवमत)

शिवमतमें—

१—वादी स्वर–का अर्थ राजा या प्रधान स्वर है, इसी पर राग का सर्वस्व निर्भर है।

२—अनुवादी–अनु का तात्पर्य $\frac{1}{2}$ है, सो अनुवादी क अर्थ हुआ–वादी का आधा विभाग अर्थात् वादी स्वर का मंत्री स्वर।

३—समवादी–का अर्थ जो अपना स्वरूप सम के अनुसार दिखलाए और बदलता रहे।

४—विवादीस्वर–जो रागको खराब करे और न लगे।

(शिवमत धृपद)

राजा रामसिंह (जयपुर) नेही इस पद्धति का सबसे पहिले आविष्कार किया है इनसे पहिले। रागोंमें केवल भजन और ओंकार का स्वरूप ताल समेत होता था।

आज कल जो आलाप धृपदिये गायक करते हैं, वे तालमें नहीं करते; क्योंकि वह बहुतही कठिन है। मुसलमानी समयमें अमीर खुसरो ने ओंकार का विस्तार बदलकर फ़ारसी के अक्षर-तादीम, दरादीम, दरतन, आदि रख दिया था। वास्तवमें, यह आदि चीज़ नहीं क्योंकि जब आलापमें सम पर आतेहैं, तब ताल के चक्र बिना सम किस तरह हो सकता है, इसालिये यह संभवहै कि पहिले आलाप तालमें होताथा। परन्तु, अब यह अति कठिन होनेके कारण से लोगों ने छोडदिया हैं। जो आलाप तालमें किया जाता था उसे ही ओंकारके प्रस्तारमें राजारामसिंहजीनें अपनी कविता के बोलों में रखदिया। इस प्रकार यह एक नया अविष्कार होगया। प्रसिद्ध बीणाकार बन्दे अली खांजी और मीर नासर मुहमदनी ये सब बीणा पर आलाप ताल सहितही करते थे और आजकल उस्ताद बुन्दूखां प्रसिद्ध सारंगी नवाज भी आलाप ताल सहित ही करते हैं।

(समाप्त)

* राष्ट्रीय-गीत *

(ताल कहरवा)

सारे जहाँसे अच्छा हिंदोस्ताँ हमारा ।
हम बुलबुलें हैं इसकी यह गुलिस्ताँ हमारा ॥ सारे० ॥
गुरबतमें हों अगर हम, रहता है दिल वतन में ।
समझो वहीं हमें भी, दिल हो जहाँ हमारा ॥ सारे० ॥
परबत वो सबसे ऊँचा, हमसाया आसमाँ का ।
वो संतरी हमारा, वो पासबाँ हमारा ॥ सारे० ॥
गोदी में खेलती हैं, इसके हजारों नदियाँ ।
गुलशन है जिनके दम से रश्के जिनाँ हमारा ॥ सारे० ॥
ऐ आबेरूदे गंगा, वह दिन है याद तुझको ।
उतरा तेरे किनारे, जब कारवाँ हमारा ॥ सारे० ॥
मज़हब नहीं सिखाता आपस में बैर रखना ।
हिंदी हैं हम, वतन है हिंदोस्ताँ हमारा ॥ सारे० ॥

'इक़बाल'

यह स्वदेशी भावना पूर्ण प्रसिद्ध उच्च-कोटि का गीत, बम्बई में निम्न ट्यून से प्रायः गाया जाता है। अतः पाठकों की सेवा में हम वही ट्यून इस आशय से रखते हैं कि, वे इसका सहर्ष स्वागत करें तथा समस्त शालाओं एवं संस्थाओं में इसका इतना प्रचार हो कि शीघ्र ही यह सारे भारतीयों का सर्व-प्रिय गीत बनकर 'इक़बाल' के इन चुने हुए शब्दों में 'सोने की चिड़ियां' इस भारत-वर्ष की विशेषताओं का इक़बाल अजर-अमर करके हरएक भारतवासी के रोम-रोम में प्रत्येक शब्द अपने वास्तविक स्वरूप एवं अर्थ सहित आराधना की अटल मूर्ति बन कर समाजाये। —'संपादक'

			नी ध प				
ग – ग रे	सा रे – नी	सा – सा –	सां नी ध प	ग – ग रे	सा रे – नी	सा – सा –	– – – –
सा ऽ रे ऽ	ज हाँ ऽ से	अ ऽ च्छा ऽ	ऽ ऽ ऽ ऽ	सा ऽ रे ऽ	ज हां ऽ से	अ ऽ च्छा ऽ	ऽ ऽ ऽ ऽ
			ग रे सा				
ध – सा –	रे ग – म	ग – ग –	म ग रे सा				
हिं ऽ दो ऽ	स तां ऽ ह	मा ऽ रा ऽ	ऽ ऽ ऽ ऽ				
		म					नी ध प
ग म प म	प प – ग	म ध प –	– – – –	ग म म ध	प ग – रे	नी सा सा –	सा नी ध प
ह म ऽ बुल	बु लें ऽ हैं	इ स की ऽ	ऽ ऽ ऽ ऽ	य ह गु लि	स ताँ ऽ ह	मा ऽ रा ऽ	ऽ ऽ ऽ ऽ
						रे	ग रे सा
ग – ग रे	सा रे – नी	सा – सा –	– – – –	ध – सा –	रे ग – म	ग – ग ऽ	प ग रे सा
सा ऽ रे ऽ	ज हां ऽ से	अ ऽ च्छा ऽ	ऽ ऽ ऽ ऽ	हिं ऽ दो ऽ	स तां ऽ ह	मा ऽ रा ऽ	ऽ ऽ ऽ ऽ
ग – ग रे	सा रे – नी	सा – सा	– – – – ‖				
सा ऽ रे ऽ	ज हां ऽ से	अ ऽ च्छा	ऽ ऽ ऽ ऽ ‖				

अंतरा १

ग ग ग म	ग ग – ग	रे ग सा –	सारे गरे सानी	प प नी –	नी सा – ग	रे म सा –	– – – –
गु र ब त	में हीं ऽ अ	ग र हम् ऽ	ऽऽ ऽऽ ऽऽ	र ह ता ऽ	है दिल ऽ व	त न में ऽ	ऽ ऽ ऽ ऽ
×	०	×	०	×	०	×	०
ग म म प	प प – ग	म ध प –	– – – –	ग म प ध	प ग – रे	नी सा सा –	सां नी ध प
स म झो ऽ	व हीं ऽ ह	में ऽ भी ऽ	ऽ ऽ ऽ ऽ	दि ल हो ऽ	ज हाँ ऽ ह	मा ऽ रा ऽ	ऽ ऽ ऽ ऽ
×	०	×	०	×	०	×	०

सारे जहांसे अच्छा—(इसे दोहराइये)

अंतरा २

ग ग ग ग	ग – ग म	रे – रे सा	सा नी – –	नी नी सा –	रे ग – म	रे ग ग –	– – – –
प र ब त	वो ऽ स ब	से ऽ ऊं ऽ	चा ऽ ऽ ऽ	ह म सा ऽ	या आ ऽ स	मां ऽ का ऽ	ऽ ऽ ऽ ऽ
×	०	×	०	×	०	×	०
		म					नी ध प
ग म म प	प प ग ग	म ध प –	– – – –	ग – म ध	प ग – रे	नी सा सा –	सां नी ध प
वो ऽ स ऽ	त री ऽ ह	मा ऽ रा ऽ	ऽ ऽ ऽ ऽ	वो ऽ पा ऽ	स बां ऽ ह	मां ऽ रा ऽ	ऽ ऽ ऽ ऽ
×	०	×	०	×	०	×	०

सारे जहांसे अच्छा—(इसे दोहराइये)

अंतरा ३

			रे				रे
प – प –	प प – ध	ग प म ग	ग – – –	प प प –	प प – ध	म प म ग	ग – – –
गो ऽ दी ऽ	में खे ऽ ल	ती ऽ हैं ऽ	ऽ ऽ ऽ ऽ	इ स की ऽ	ह जा ऽ रों	न दि यां ऽ	ऽ ऽ ऽ ऽ
×	०	×	०	×	०	×	०
			सा रे				नी ध प
म म म म	म – म प	ग म ग रे	नी सा ग –	ग म म ध	प ग – रे	नी सा सा –	सां नी ध प
गु ल श न	है ऽ जि न	के ऽ द म	से ऽ ऽ ऽ	र शु के ऽ	जि नां ऽ ह	मा ऽ रा ऽ	ऽ ऽ ऽ ऽ
×	०	×	०	×	०	×	०

सारे जहांसे अच्छा—(इसे दोहराइये)

अंतरा ४

प – प –	प प – मप	ध प म म	म – – –	प – नी नी	नी – – सां	– रें नी रें	सां नी ध प
ऐ ऽ आ ऽ	वे ह ऽ दे ऽ	गं ऽ गा ऽ	ऽ ऽ ऽ ऽ	वो ऽ दि न	है ऽ ऽ या	ऽ द तु झ	को ऽ ऽ ऽ
×	०	×	०	×	०	×	×
			रे				नी ध प
प रें सां –	सां सां प प	ग प म ग	ग – – –	ग म म ध	प ग – रे	नी सा सा –	सां नी ध प
उ त रा ऽ	ते रे ऽ कि	ना ऽ रे ऽ	ऽ ऽ ऽ ऽ	ज ब का ऽ	र वां ऽ ह	मा ऽ रा ऽ	ऽ ऽ ऽ ऽ
×	०	×	०	×	०	×	

सारे जहांसे अच्छा—(इसे दोहराइये)

अंतरा ५

							रे
नी नी नी नी	नी नी – नी	नी सा सा –	– – – –	प – प प	प प – ध	म प म ग	ग – – –
म ज़ ह ब्	न हीं ऽ सि	खा ऽ ता ऽ	ऽ ऽ ऽ ऽ	आ ऽ प स्	में बै ऽ र	र ख ना ऽ	ऽ ऽ ऽ ऽ
×	०	×	०	×	०	×	०
							रे
सां सां – –	सां सां – –	सां – सां –	सां सां – –	सां – सां –	सां सां – ध	म प म म	ग – – –
हिं ऽ दी ऽ	है हम् ऽ ऽ	हिं ऽ दी ऽ	हैं हम् ऽ ऽ	हिं ऽ दी ऽ	हैं हम् ऽ व	त न है ऽ	ऽ ऽ ऽ ऽ
×	०	×	०	×	०	×	०
			नी ध प				
ग – म ध	प ग – रे	नी सा सा –	सां नी ध प				
हाँ ऽ दो ऽ	स तां ऽ ह	मा ऽ रा ऽ	ऽ ऽ ऽ ऽ				
×	०	×	०				

सारे जहांसे अच्छा—(इसे दोहराइये)

(प्रो. बी. आर. देवधर)

संगीत कला विहार

वर्ष–प्रथम] वार्षिक–शुल्क { ६–०–० वी. पी. विना / ६–६–० वी.पी. सहित [अंक ११ वां

★ अनुक्रमणिका ★

मुख–पृष्ठ चित्र... ... बाबा सिंधी खाँ ....'विहार' के विशेष फोटोग्राफर—**श्री. कुमठाकर द्वारा**

बाबा सिंधी ख़ाँ ... ...'प्रो बी. आर. देवधर'

गवयांच्या गोष्टी (कलाकारों के किस्से)

सर्कस की नाड़ी ... मराठी अनुवादक—'सौ. देवधर'
हिन्दी अनुवादक–'राम किशोर'

पूना गायन–समाज ... ... 'श्री भा. द. खांडेकर'

मी ऐकलेल्या मैफली (मेरी सुनी हुई महफ़िलें) ... ...
'श्री. के जी. मजुमदार'

हिन्दुस्तानी गायन–पद्धति के जन्म दाता ... ...
'प. दिलीप चन्द्र जी वेदी'

संगीतकार का जीवन ... ...'श्री. प्राणलाल वी. शाह'

गीत तथा नोटेशन, इत्यादि.

'संगीत कला विहार' के प्रतिनिधि:—

—एजैंटों की आवश्यकता है—
नियमों के लिये पत्र–व्यवहार करें

श्री. एस. एस. बोडस
'संगीत—सदन'
सिविल लाइन्स, कानपुर

श्री. भा. द. खांडेकर
१८७, कसब -पेठ,
पुना २.

निम्नलिखित पते पर पत्र-व्यवहार कीजिये।

परीक्षा और दूसरा काम

प्रो. व. य. राजोपाध्ये,
१४८, हिंदू कॉलौनी,
दादर.

मासिक–पत्रिका

प्रो. बी. आर. देवधर,
स्कूल ऑफ इंडियन म्यूज़िक,
फ्रैंच ब्रिज गिरगाँव,
बम्बई. ४

मिरज के मशहूर फ़रीद साहब सितार-मेकर के नाती का तंतू-वाद्यों का कारखाना—

इस कारख़ाने में सितार, तंबूरा, बीन, सुर-बहार, दिलरुबा वग़ैरह साज़ सुरेल और ख़ूबसूरत बनते हैं; इसीलिये संगीत-तज्ञों की तरफ़ से मेडिल और सर्टीफ़िकेट मिले हैं। ज़्यादह मालूमात के लिये लिखें:—

पता—

प्रो. अब्दुल करीम इस्माईल साहब ॲन्ड सन्स

सितार-मेकर, शनिवार-पेठ; मिरज।

श्री सरस्वती संगीत विद्यालय सतारा के विद्यार्थियों में से:—

[१] कु. इन्दु अनंत आठले 'संगीत-विशारद' का वेस्टर्न इन्डिया हाऊस में ३ घंटे तक गणेश-चतुर्थी के उपलक्ष में गायन का विशेष कार्य-क्रम हुआ।

[२] कु. मालती मालचन्द्र शेकदार 'संगीत-विशारद' का गायन, दि. १५-९-४८ की रात को श्री. लक्ष्मीनारायण के मंदिर में ३ घंटे तक हुआ।

[३] दिनांक १३-९-४८ को विद्यालय के अन्य विद्यार्थियों का गायन-वादन हुआ।

गांधर्व महाविद्यालय अहमदाबाद की ओर से कै. पं. विष्णु दिगंबर जी की पुण्य-तिथि दि. २१ अगस्त को बड़े समारोह के साथ मनाई गई थी। इसके निमित्त गायन-वादन का सुश्राव्य कार्य-क्रम रखा गया था, जिसमें स्थानिक कलाकारों का पूर्ण सहयोग प्राप्त हुआ था।

इस विद्यालय की ओर से कै. पं. विष्णु नारायण भातखण्डे जी की पुण्य-तिथि दि. ६ सितंबर को ४-५ घंटे तक गायन वादन के कार्यक्रम द्वारा मनाई गई थी।

श्रीराम संगीत विद्यालय शोलापुर की ओर से दि. १८-८-४८, बुधवार की रात्रि को गु. पं. विष्णु दिगंबर जी की पुण्य-तिथि के निमित्त एक विशेष कार्यक्रम हुआ, जिसमें श्री. टी. एन. रानडे, श्री. कुंज बिहारी जी व अन्य स्थानिक कलावंतों ने सहर्ष भाग लिया था।

विज्ञापन का शुल्क

कव्हर पेज नं. ४	रु. १२५-०-०
„ नं २ और ३	रु. १००-०-०
संपूर्ण पृष्ठ	रू. ७५-०-०
अर्ध „	रू. ४०-०-०
पाव „	रू. २५-०-०
अर्धपाव पृष्ठ	रू. १५-०-०

प्रतिसमय

मुद्रित पृष्ठ ६" × ८" दो कॉलम में

कव्हर-पेज विज्ञापन के लिए व्यवस्थापक को लिखिये। विज्ञापन हमारे पास प्रति मास की १५ तारीख़ के पहिले पहुँचना चाहिये।

व्यवस्थापक:—संगीत कला विहार कार्यालय
स्कूल ऑफ़ इंडियन म्यूज़िक,
फ्रेंच-ब्रिज-गिरगाँव, बम्बई

लेखकों को सूचनायें

१ लेख कागज़ के एक ही ओर सुवाच्य अक्षरों में, दूर-दूर, केवल ½ फुल-स्केप साईज़ पर लिखकर भेजिये।

२- लेख की पसंदगी या नापसंदगी का जवाब पंद्रह दिन के बाद लेखकों को मिल सकेगा।

३- पसंद किए हुए लेख यथावकाश प्रकाशित किये जायेंगे।

४ नापसंद लेख वापस मंगाने के लिये पोस्ट टिकिट भेजिये।